भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या १

भारतीय शासन

[सर्वोदय विचार सहित]

लेखक

सर्वोदय अर्थशास्त्र, हमारी आदिम जातियाँ, और

अपराध चिकित्सा, आदि के रचयिता

भगवानदास केला

प्रकाशक

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग।

तेरहवाँ संस्करण] सन् १९५५ ई० [मूल्य, तीन रुपये

'भारतीय शासन' के संस्करण

पहला संस्करण	...	सन् १९१५
दूसरा "	...	" १९१९
तीसरा "	...	" १९२२
चौथा "	...	" १९२५
पाँचवा "	...	" १९२७
छठा "	...	" १९२९
सातवाँ "	...	" १९३६
आठवाँ "	...	" १९३८
नवाँ "	...	" १९४४
दसवाँ "	...	" १९४९
ग्यारहवाँ "	...	" १९५१
बारहवाँ "	...	" १९५२
तेरहवाँ "	...	" १९५५

मुद्रक—आर्ट प्रिंटर्स, इलाहाबाद—३

प्रस्तावना

यह पुस्तक मेरी सबसे पहली रचना है, और अब अपने साहित्यिक जीवन के चालीसवें वर्ष में मैं इसका तेरहवां संस्करण पाठकों की सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ। इस पुस्तक के पहले संस्करण (१६१५) में भी जहाँ-तहाँ यह बताया गया था कि शासन में क्या सुधार होना चाहिए। यह बात पीछे के प्रत्येक संस्करण में हमारे सामने रही। जनता की इच्छाएँ आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ राजनैतिक या वैधानिक आदर्श, शासन के दोष या त्रुटियाँ—इन पर बराबर प्रकाश डाला जाता रहा है।

अब भारत स्वतंत्र है। तो भी शासन पद्धति ठीक नहीं। इसकी आलोचना खासकर छबीसवें अध्याय में की गयी है। फिर, हमने विदेशी राज्य की जगह स्वदेशी राज्य अवश्य पाया, पर नग्नरूप में तो यह स्वदेशी नौकरशाही ही है। स्वदेशी प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्री, स्वदेशी राष्ट्रपति और स्वदेशियों की बनी विधान-सभाएँ आदि इनसे कुछ आदमियों का—चाहे उनकी संख्या हजारों तक पहुँच जाये—हित भले ही हो, जनता का, छत्तीस करोड़ भारत-संतान का, कल्याण नहीं होगा, स्वराज्य नहीं होगा। केन्द्रित शासन पद्धति और नौकरशाही का अटूट सम्बन्ध है।

नौकरशाही के जाल से मुक्त होने का, वास्तविक स्वराज्य प्राप्त करने का उपाय क्रमशः सर्वोदय राज की दिशा में आगे बढ़ना है। इस विषय में इस पुस्तक के अन्तिम पांच अध्यायों में प्रकाश डाला गया है। पाठक सोचें, विचारें तथा अपना कर्तव्य निर्धारित करें। राजनीति के धुरंधर विद्वानों और पार्लिमेंटरी पद्धति के बड़े-बड़े आचार्यों और आलोचनात्मक ग्रंथों के रचयिताओं से भी शान्ति और गम्भीरता-पूर्वक इन अध्यायों पर विचार करने के लिए मेरा नम्र निवेदन है। इसके लिए और अधिक सामग्री मेरी 'राजव्यवस्था, सर्वोदय दृष्टि से' में दी गयी है।

भगवानदास केला

विषय-सूची

(१) संयुक्त भारत का आदर्श

(२) भारत में अङ्गरेजी शासन

(३) भारत की स्वतन्त्रता

(४) संविधान-निर्माण

(५) संविधान का स्वरूप और विशेषताएँ

(६) भारतीय नागरिकता

(७) मूल अधिकार

(११) मन्त्रिपरिषद

[१२] संसद या पार्लिमेंट

(१३) उच्चतम न्यायालय

(१४) संघ के राज्य

(१५) राज्यों की कार्यपालिकाएँ

[१६] राज्यों के विधान-मंडल

(१७) राज्यों की न्यायपालिकाएँ

पहला अध्याय

संयुक्त भारत का आदर्श

बहुत प्राचीन काल से ठेठ उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्द महासागर तथा लंका तक, और इसी तरह पश्चिम में काबुल-कंधार से लेकर पूर्व में आसाम-बर्मा तक के भू-खंड को हम एक देश मानते और पूजते आये हैं।

वर्तमान भारत कई अंगों से वंचित—इस पुस्तक में भारत की शासनपद्धति का विवेचन करना है, पहिले इसके आकार प्रकार का विचार करलें। बात यह है कि हमारा वर्तमान भारत अपने कई अंगों से वंचित है। यह वह महान् भारत नहीं है जिसकी, सांस्कृतिक दृष्टि से, हम चिरकाल से कल्पना और आराधना करते रहे हैं। अंग्रेजों ने उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ही लङ्का को भारत से जुदा कर दिया था। सन् १९३५ में उन्होंने बर्मा को अलग कर डाला था। अन्त में उन्होंने यहाँ से जाते-जाते, साम्प्रदायिक नेताओं की दुर्भावनाओं से लाभ उठाकर, अगस्त १९४७ में कुछ अन्य प्रदेशों को भारत से अलग करके 'पाकिस्तान' नाम का राज्य बना डाला। इस प्रकार उनकी कूटनीति के फलस्वरूप भारत अब लङ्का, बर्मा और पाकिस्तान से वंचित है, यद्यपि इनके निवासी कई बातों में भारतवासियों के बहुत ही निकट हैं और समान स्वार्थ वाले हैं।

लङ्का—यहाँ अङ्गरेजों का अधिकार अठारहवीं सदी में हुआ। इसका क्षेत्रफल २५,३३२ मील और जन-संख्या लगभग ६४ लाख है। इसका और भारत का बहुत प्राचीन काल से खासकर रामायण के समय से गहरा सम्बन्ध रहा है। दोनों की संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज आदि में बहुत समानता है। यहाँ के अधिकांश निवासी बौद्ध धर्मानुयायी हैं। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८०२ से ही इसे भारत से जुदा कर दिया था। फरवरी १९४८ से यह

स्वतन्त्र है, इसकी अलग सरकार है। यह राज्य राष्ट्रमंडल का सदस्य है और इसका ब्रिटिश सरकार से वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा राष्ट्रमंडल के अन्य स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों का है।* यह सर्व-विदित है कि जब इस प्रदेश के विकास के लिए लङ्का में यथेष्ट श्रमी न मिले थे तो भारत के ही नर-नारियों ने वहाँ जाकर इसे उन्नत किया था। खासकर दक्षिण भारतीयों ने ही वहाँ चाय, रबड़ और नारियल आदि की पैदावार बढ़ाकर इसे इतना सुख-समृद्धि पूर्ण बनाया। इस समय वहाँ आठ लाख भारतीय रहते हैं।

भारतीयों के पुराने सम्बन्ध और सहयोग को कृतज्ञता-पूर्वक यदि रखते हुए लङ्का की सरकार तथा जनता को चाहिए कि वे वहाँ के भारतीयों के सुख-पूर्वक रहने की व्यवस्था करें। लङ्का और भारत का सहयोग दोनों के लिए हितकर है।

बर्मा—उन्नीसवीं सदी के मध्य में, भारत पर अधिकार कर लेने के बाद अङ्गरेजों ने उस सदी के अन्त तक बर्मा प्राप्त करके उसे ब्रिटिश भारत का ही एक प्रान्त बना दिया था। बर्मा को जीतने में भारत के ही जन-धन का उपयोग हुआ था। यह प्रदेश अपनी चावल आदि की पैदावार के कारण, अङ्गरेजों के लिए बहुत लाभदायक रहा। मिट्टी के तेल के कारण, आधुनिक मोटर और हवाई जहाजों के युग में, राजनैतिक दृष्टि से भी ब्रिटिश साम्राज्य के लिए इसका बहुत उपयोगी होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त, सिंगापुर में जल-सेना का केन्द्र बनाने से बर्मा का महत्व और भी बढ़ गया। ब्रिटिश भारत में स्वतन्त्रता-आन्दोलन क्रमशः अधिकाधिक प्रबल होने पर

---

* **राष्ट्रमंडल**—इस संस्था के सदस्यों में ब्रिटिश संयुक्त राज्य के अतिरिक्त निम्नलिखित सात प्रदेश हैं—(क) स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश—(१) केनेडा, (२) दक्षिण अफ्रीका का यूनियन, (३) आस्ट्रेलिया और (४) न्यूजीलैंड। (ख) स्वाधीन राज्य—(५) भारत, (६) पाकिस्तान और (७) लंका। इस संगठन का उद्देश्य सदस्यों का शान्ति, आजादी और उन्नति के लिए स्वतंत्रता-पूर्वक सहयोग करना है। इस संस्था के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हमारी 'राष्ट्रमंडल शासन' पुस्तक में दी गयी है।

अङ्गरेजों को भारत के साथ बर्मा के भी स्वतन्त्र होने की आशङ्का हुई और उन्होंने भारत का मत लिये बिना, तथा बर्मा की कौंसिल के मत के विरुद्ध, सन् १९३५ के शासन-विधान द्वारा उसे भारत से अलग कर दिया और उसके लिए पृथक शासनपद्धति बना दी, यद्यपि वह संस्कृति और धर्म आदि में भारत के बहुत निकट था अङ्गरेजों का इसमें उद्देश्य यह था कि यदि भारत स्वतन्त्र हो जाय तो भी बर्मा उनके अधीन रहे।

अङ्गरेजों की यह सफलता दीर्घ-काल तक न रही। भारत से पृथक होने पर भी बर्मा में स्वतन्त्रता-आन्दोलन चलता रहा, और सन् १९४७ में वह स्वाधीन हो गया; स्वाधीन होने के साथ ही वह ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल से भी पृथक् हो गया।

पाकिस्तान—पाकिस्तान कोई पुराना नाम नहीं है। यह भारत के कुछ प्रदेशों को मिलाकर उन्हें दिया हुआ एक नया नाम है। इस राज्य के दो भाग हैं—पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल का प्रान्त और सिलहट का जिला है। मुख्य पाकिस्तान पश्चिम में है। इसमें पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा इस ओर की रियासतें हैं। कुल पाकिस्तान का क्षेत्रफल ३ लाख ६१ हजार वर्ग मील है। पाकिस्तान बनाने के समय, (सन् १९४१ की गणना के अनुसार) इस राज्य की कुल आबादी लगभग सात करोड़ थी। पर पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दुओं (और खासकर सिक्खों) के प्रति बहुत दुर्व्यवहार हुआ और भारतीय संघ के कुछ मुसलमानों में साम्प्रदायिक भावना ने उग्र रूप धारण किया। यही बात पीछे पूर्वी पाकिस्तान के सम्बन्ध में हुई। इससे इन दोनों राज्यों के लाखों आदमी एक राज्य से दूसरे राज्य में गये। पर पाकिस्तान जाने वालों की अपेक्षा वहाँ से भारत आने वालों की संख्या अधिक रही। फिर, जो मुसलमान यहाँ से पाकिस्तान गये थे, उनमें से कितने ही यहाँ लौट आये। हाँ पिछले वर्षों में जन-संख्या कुछ बढ़ी भी होगी। इस प्रकार पाकिस्तान की आबादी अब लगभग आठ करोड़ होने का अनुमान है।

इस राज्य का नया संविधान अभी (मार्च १९५५) तक नहीं बना है। प्रायः नेताओं का मत है कि यहाँ 'इस्लामी' गणतन्त्र हो और पश्चिमी भाग

को एक इकाई माना जाय। पिछले वर्षों में पाकिस्तान और भारत के आपसी सम्बन्ध में बहुत तनातनी रही। इस समय भी कश्मीर, भारत में आये हुए शरणार्थियों की सम्पत्ति और सिन्ध तथा पञ्जाब की नदियों के पानी आदि के विषय में बहुत उलझनें हैं। आवश्यकता है कि पाकिस्तान अपनी साम्प्रदायिकता हटाकर भारत के साथ एक अच्छे सहयोगी पड़ोसी का व्यवहार करे। आधुनिक जगत में किसी राज्य का एक विशेष सम्प्रदाय के अनुसार संचालित होना अन्ततः अव्यावहारिक और अनिष्टकर होता है।

भारतीय संघ का क्षेत्रफल और जनसंख्या—पाकिस्तान का अलग राज्य बन जाने पर भारतीय संघ का क्षेत्रफल १२,६६,६४० वर्गमील रह गया। भारतीय सङ्घ की जनसंख्या, १९५१ की गणना में ३५,६८,२९,-४८५ थी। पिछले दस वर्षों में चार करोड़ बीस लाख की, अर्थात् १२॥ प्रति सैकड़ा की वृद्धि हुई। इन आँकड़ों में जम्मू-काश्मीर और आसाम के कबायली क्षेत्र शामिल नहीं हैं। जम्मू-काश्मीर में विशेष परिस्थितियों के कारण सन् १९५१ में जन-गणना न हो सकी थी। यहाँ जनसंख्या ४४ लाख १० हजार होने का अनुमान किया गया। आसाम के कबायली क्षेत्रों में कभी नियमित रूप से जन-गणना हुई ही नहीं। स्थानीय अनुमान के अनुसार सन् १९५१ में यहाँ की आबादी ५ लाख ६० हजार थी। इस प्रकार भारतीय संघ की कुल जनसंख्या ३६ करोड़ से ऊपर है। इसमें कौन-कौन से राज्य सम्मिलित हैं, यह आगे बताया जायगा। यहाँ कुछ अन्य बातों का विचार करना है।

नेपाल, भूटान और सिक्कम—ये तीन राज्य ऐसे हैं जो भारत से मिले हुए हैं, पर भारतीय सङ्घ के अंग नहीं हैं। नैपाल राज्य हिमालय के दक्षिण में, अधिकांश में पहाड़ी राज्य है। इसकी लम्बाई पाँच सौ मील से अधिक और चौड़ाई एक सौ चालीस मील है। यहाँ की जनसंख्या साठ लाख है। क्षेत्रफल छप्पन हजार वर्गमील है। नैपाल के छोटे-बड़े कुल ३२ भाग हैं। यहाँ का प्रधान शासक 'महाराजाधिराज श्री पाँच सरकार' कहलाता है। शासन-सत्ता प्रधान मन्त्री के हाथ में रहती आयी है, यह 'महाराज तीन सरकार' कहलाता है। भारत की पराधीनता के समय यहाँ शासन स्वेच्छाचारी

रहा; शासक साम्राज्यवादी अंग्रेजों के समर्थक और सहायक रहे। जनता आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई रही। पर भारत के स्वाधीन हो जाने पर परिस्थिति में क्रमशः परिवर्तन हुआ। इसकी स्वतंत्र भारत से मित्रता की सन्धि होकर वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित हो गया और यहाँ भारत का राजदूत रहने लगा। भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू से परामर्श करके यहाँ लोकतंत्रात्मक शासन स्थापित करने की दिशा में कदम बढ़ाया गया हैं। लोकतंत्रात्मक शासन स्थापित हो जाने से यह राज्य भारत की, उत्तरी पहरेदार के रूप में, एक बलवान इकाई होगा।

भूटान का क्षेत्रफल बीस हजार वर्गमील और जनसंख्या लगभग ढाई लाख है। यहाँ की सरकार बाहरी मामलों में भारत-सरकार की सलाह से काम करती है, भीतरी मामलों में स्वतंत्र है। प्रधान शासक महाराज कहलाता है। भारत-भूटान सन्धि के अनुसार भूटान को पूरी आंतरिक आजादी होगी। लेकिन जहाँ तक विदेश-नीति का ताल्लुक है, वह भारत के अन्तर्गत है। भूटान भारत का एक संरक्षित राज्य है।

सिक्किम भी हिमालय-प्रदेशीय छोटा सा राज्य है। इसकी भारत के साथ जो सन्धि हुई है, उसमें इसे संरक्षित राज्य कहा गया है। इसकी भी विदेश-नीति भारत के अन्तर्गत है।

जैसा कि आगे बताया जायगा, भारतीय सङ्घ के राज्य 'क', 'ख' और 'ग' वर्ग के हैं ,इनके अतिरिक्त 'घ' वर्ग का भी एक राज्य (अंदमान-निकोबार) है, जो सङ्घ की सीमा के बाहर है।

पुर्तगाली बस्तियाँ—सतरहवीं सदी में वहाँ व्यापार करने के लिए कई यूरोपीय जातियों के आदमी आये थे। पीछे समय पाकर इन्होंने यहाँ अधिकार जमाने का यत्न किया। कुछ लड़ाइयों की हार-जीत तथा सन्धियों के बाद अधिकांश भारतवर्ष में अंग्रेजों का अधिकार या प्रभाव हो गया। कुछ स्थान फ्रांसीसी और पुर्तगाली लोगों के पास रह गये। १९४७ से भारत से अंग्रेजी सत्ता हट गयी, फ्रांसीसी बस्तियों में से चन्द्रनगर में अगस्त १९४८ में जनमत लिया गया था। वह प्रचंड रूप से भारत के पक्ष में रहा। इस पर वह नगर भारतीय सङ्घ में मिलाया गया। अन्य चार बस्तियों—पांडेचरी,

आवश्यक भौगोलिक, आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक जानकारी मिल सके। हम यह जानें कि वहाँ कैसी कलाओं और उद्योग-धंधों का प्रचार है, रहन-सहन कैसा है। उनके सुख-दुख, उनके विचार, उनके अभाव आदि को जानते हुए हम उनके साथ प्रेम बढ़ावें और अपने सेवा-भाव द्वारा उन्हें अपना बनावें।

भारत का संसार से सांस्कृतिक सम्बन्ध की व्यवस्था करने के लिए गुरुदेव ने विश्व-भारती की स्थापना का महान कार्य किया। देश के विविध भागों का आपसी सम्बन्ध बढ़ाने के लिए जगह-जगह 'अन्तर्भारती' संस्थाओं की आवश्यकता बनी हुई है। महाराष्ट्र के स्वर्गीय सन्त श्री पांडुरंग सदाशिव साने उर्फ साने गुरू जी ने, जो एक गम्भीर और उच्चकोटि के लोक सेवक थे, ऐसी ही एक संस्था का सपना देखा था, और उस सपने को अमली रूप देने के लिए आपने यथेष्ट उद्योग भी किया था। अब महाराष्ट्र के सज्जनों ने इस कल्याणकारी कार्य का बीड़ा उठाया है। सभी प्रान्त वालों को इसमें सहयोग करना और संयुक्त भारत के आदर्श को चरितार्थ करना चाहिए।

दूसरा अध्याय

भारत में अंग्रेजी शासन

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का रहस्य यही था कि अंग्रेजों ने इस देश के एक भाग के आदमियों तथा यहाँ के धन ही के सहारे दूसरे देश के भाग को प्राप्त किया; यह हमारी राष्ट्रीयता की कमी का स्पष्ट प्रमाण था।

—:❀:—

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों, जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले।...अतः हम शपथ-पूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञाएँ देगी, उनका हम पालन करते रहेंगे।"

—भारतीय स्वाधीनता की घोषणा, सन् १९३०

भारत या इण्डियन यूनियन (भारतीय संघ) का नया संविधान २६ नवम्बर १९४९ को स्वीकार किया गया। वास्तव में यह २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ। इसके अनुसार जो शासनपद्धति यहाँ प्रचलित है उसका ही विवेचन करना इस पुस्तक का मुख्य विषय है। पर उसे समझने के लिए यह जान लेना उपयोगी है कि उसकी पृष्ठभूमि क्या है। उसमें पहले की कौन सी बातें कुछ विकसित या परिवर्तित रूप में सम्मिलित हैं। यों तो वर्तमान पर भूत काल की थोड़ी बहुत छाया हमेशा ही रहती है, हमारे वर्तमान संविधान में तो कितनी ही बातें ऐसी हैं, जिनका सूत्रपात अंग्रेजों के शासन-काल में ही हो गया था, इसलिए भारतीय शासन का क्रमागत परिचय देने के लिए हमें

संक्षेप में यह भी बताना है कि अंग्रेजी राज्य में यहाँ शासन-प्रबन्ध किस प्रकार आरम्भ हुआ, और उसमें समय-समय पर क्या परिवर्तन हुआ, उसके विकास की क्या दिशा रही।

भारत में अंग्रेजों का आगमन—अंग्रेज यहाँ सोलहवीं सदी में आने लगे। आरम्भ में वे व्यापार के लिए ही आये थे। अंग्रेजों के रूप में भारत का ऐसे देश के निवासियों से सम्पर्क हुआ जो अपने वैधानिक विकास के लिए, अपने विधान-मंडल (पार्लियामेंट) की प्राचीनता के लिए बहुत प्रसिद्ध है, जिसकी पार्लियामेंट को 'पार्लियामेंटों की माता' कहा जाता है। हाँ, यह ठीक है कि अंग्रेज पूँजीवादी और साम्राज्यवादी रहे हैं। वे अपने लाभ के लिए यहाँ आये थे। अपने कार्यों में उनकी निगाह खासकर अपने स्वार्थ पर रहती थी। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने इस देश में क्या, नहीं किया, और भारत को उससे क्या हानि नहीं पहुँची ! उसका विचार करने का यहाँ स्थान नहीं है। यहाँ तो पाठकों का ध्यान इसी बात की ओर दिलाना है कि हमने उनकी शासनपद्धति से कई बातें ली हैं। अंग्रेज अब यहाँ से चले गए हैं। पर उनकी चलाई हुई शासन-पद्धति हमारे संविधान को स्पष्ट रूप से प्रभावित किये हुए है। अस्तु, अंग्रेजों का भारत आना भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है।

कम्पनी की राजनैतिक सत्ता का बढ़ना—सन् १६०० में महारानी एलिजबेथ से सनद (चार्टर) लेकर लगभग दो सौ अंग्रेज व्यापारियों ने एक कम्पनी स्थापित की, उसका नाम 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' था। क्रमशः उसके व्यापार की वृद्धि होती गयी। धीरे-धीरे उसके डच (हालैंड वासी), पुर्तगाली और फ्रांसीसी प्रतिद्वन्दियों का ह्रास होता गया। भारत की राजनैतिक दुरावस्था से लाभ उठाकर वह अपनी सत्ता बढ़ाने लगी, सन् १७५७ में उसका बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला से संघर्ष हुआ। नवाब के लोभी सेनापति मीर-जाफर ने उसे ऐन समय पर धोखा दिया तथा अंग्रेज सेनापति क्लाइव और वाटसन ने बड़ी चालाकी और मक्कारी से काम लिया। कूटनीति के बल पर सन् १७५७ की प्लासी की लड़ाई में कम्पनी ने विजय प्राप्त की। उसने मीर-

जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया। पर वह तो नाम मात्र का नवाब था; असली शक्ति कम्पनी के हाथ में थी।

सन् १७६५ में मुगल सम्राट् ने सन्धि के रूप में कम्पनी को बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात् मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दे दिया। इससे कम्पनी को इन स्थानों में कानूनी हक मिल गया। कम्पनी केवल व्यापार करनेवाली संस्था न रही, वह राज्य भी करने लगी। वह मालगुजारी वसूल करती, अपनी सेना रखती, और अपनी रक्षा करने के अलावा अधिक भूमि प्राप्त करने के वास्ते दूसरों पर आक्रमण भी करती थी। अब उसके लिए भारत में राज्य-स्थापना का मार्ग साफ हो गया। उत्तर भारत में एक स्थान के बाद दूसरे स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उसके पास यथेष्ट धन-जन होता गया। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का रहस्य यही था कि अंग्रेजों ने इसी देश के एक भाग के आदमियों तथा यहाँके ही धन के सहारे यहाँ के दूसरे भाग को प्राप्त किया; इसमें हमारी राष्ट्रीयता की कमी का स्पष्ट भाग है।

पार्लियामेंट का नियंत्रण—सन् १७५७ से कंम्पनी के राज्य का विस्तार होता गया। कम्पनी की प्रभुता स्थापित होने तथा उसके कर्मचारियों के अधिकाधिक धनवान होने पर इङ्गलैंड की जनता का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। कम्पनी का राजप्रबन्ध बहुत खराब था। स्वयं अंग्रेज नेता उसकी निन्दा करते थे। इसके अतिरिक्त उसकी माली हालत खराब हो जाने से उसे रुपये की सख्त जरूरत हुई। पार्लियामेंट से ऋण माँगने पर उसे कम्पनी के अधिकारों में खुला हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। इस प्रकार सन् १७७३ में उसने कम्पनी के प्रदेशों के सुशासन के लिए 'रेग्यूलेटिंग एक्ट' नाम का कानून बनाया। भारत के सम्बन्ध में पार्लियामेंट का यह सबसे पहला कानून था। इसके द्वारा कम्पनी पर पार्लियामेंट का नियंत्रण अधिक हो गया।

सन् १७८४ में कम्पनी के शासन प्रबन्ध की देख रेख करने के लिए पार्लियामेंट की ओर से 'बोर्ड-आफ-कंट्रोल' नाम की कमेटी बनायी गयी,

जिसमें ६ सदस्य रखे गये। धीरे-धीरे भारत के अंग्रेजी राज्य पर पार्लियामेंट का नियंत्रण बढ़ता गया। गवर्नर-जनरल की कौंसिल में चार की जगह तीन सदस्य रहने लगे। इस प्रकार केवल एक सदस्य द्वारा समर्थन होने पर भी गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार कार्य करता था। पीछे जाकर यह नियम कर दिया गया कि विशेष दशाओं में वह कौंसिल के मत के विरुद्ध भी कार्य कर सके।

सन् १७७३ के बाद प्रति बीसवें वर्ष कम्पनी को नयी सनद दी जाने लगी। सनद बदलते समय पार्लियामेंट भारतवर्ष के शासन-सुधार के कानून बनाती थी, जिन्हें चार्टर एक्ट कहा जाता था। ये कानून १७९३, १८१३, १८३३, और १८५३ में बने।

सन् १८५७ का संग्राम, कम्पनी का अन्त—भारतीयों को अंग्रेजों की अधीनता अधिकाधिक असह्य होती जा रही थी, उनका आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक असन्तोष बढ़ता जा रहा था। वे समय-समय पर उनसे लड़कर अपने स्वाधीनता-प्रेम का परिचय देते रहे। लार्ड डलहौजी के शासन में ऐसा मालूम पड़ा कि भारत के एक हिस्से के बाद दूसरे हिस्से को किसी-न-किसी बहाने से, तेजी से अंग्रेजों की अधीनता में लाया जा रहा है, इस पर सन् १८५७ में भारतीय स्वतंत्रता का सुप्रसिद्ध संग्राम हुआ। हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर भारत में अंग्रेजी सत्ता को नष्ट करने का प्रयत्न किया; परन्तु संगठन की कमी, उद्देश्य की असमानता और सुयोग्य नेतृत्व के अभाव के कारण वे असफल रहे। कुछ देशद्रोही भारतीयों की सहायता से अंग्रेजों की विजय रही।

सन् १८५८ से कम्पनी का अन्त हो गया, भारत का शासन-प्रबन्ध उसके हाथ से निकलकर पार्लियामेंट के अधीन हो गया। स्मरण रहे कि कम्पनी को अपने अन्तिम समय तक भारत में हुकूमत करने का कानूनी अधिकार प्राप्त न था, उसके बड़े से बड़े अधिकारी अपने आपको मुगल सम्राट् के 'फिदविए खास' अर्थात् विशेष सेवक कहते थे और सनदों और कानूनी कागजों में लिखते थे। १८५७ की राजक्रान्ति तक सब राजकाज यहाँ मुगल-सम्राट् के

नाम से होता था। पीछे अंग्रेजों ने असफल बहादुरशाह को नजरबन्द करके रंगून भेज दिया। तब से इङ्गलैंड का बादशाह भारत-सम्राट् कहा जाने लगा।

कम्पनी के समय की भारतीय शासन-व्यवस्था पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि इस समय इसमें भारतवासियों का कोई हाथ न था; शासक जैसा चाहते थे, प्रबन्ध करते थे; यदि उन्होंने कोई सुधार किया तो उसमें उनकी सुविधा या इच्छा ही प्रधान रही।

पार्लियामेंट का शासन-काल—पार्लियामेंट का शासन लगभग नब्बे वर्ष रहा। भारतीय शासन-नीति की दृष्टि से इसके स्थूल रूप से तीन भाग किये जा सकते हैं—

(क) सन् १८५८ से १९१८ तक। दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना, और शासन-कार्य में भारतीयों के सहयोग की वृद्धि।

(ख) सन् १९१९ से १९४६ तक। क्रमशः उत्तरदायी शासन और प्रांतीय स्वराज्य।

(ग) सन् १९४६ से १५ अगस्त १९४७ तक। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति, परन्तु साथ ही विभाजन; पाकिस्तान राज्य का निर्माण।

सन् १८५८ का कानून : सरकारी नीति—इस वर्ष पार्लियामेंट ने 'भारतवर्ष के बेहतर शासन' का कानून पास किया। इसके अनुसार भारत का शासन प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से हटाकर इङ्गलैंड के शासक को सौंपा गया; जो भारत का सम्राट् (या साम्राज्ञी) कहा जाने लगा। भारतीय शासन-प्रबन्ध की देख-रेख के लिए भारत-मंत्री की नियुक्त की गयी। उसे सहायता देने के लिए १५ सदस्यों की एक इण्डिया-कौंसिल बनायी गयी। भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल को अब वाइसराय (सम्राट्-प्रतिनिधि) भी कहा-जाने लगा। ब्रिटिश पार्लियामेंट की सम्मति से महारानी विक्टोरिया ने भारतीय शासन सम्बन्धी सब अधिकार अपने हाथ में लिये। उनकी घोषणा (नवम्बर १८५८) में पुरानी संधियों को पालन करने, भारतीयों की धार्मिक भावना की रक्षा, उनके साथ समानता का व्यवहार करने और उन्हें योग्यतानुसार सरकारी

पद देने, देश की औद्योगिक उन्नति करने और शासन-कार्य को लोकहित की दृष्टि से संचालित करने का आश्वासन दिया गया। पर इस नीति पर अमल बहुत कम हुआ, और जनता की शिकायतें और असंतोष बढ़ता ही गया।

राष्ट्रीय आन्दोलन और आतंकवाद—सन् १८८५ ई० से भारतीय राष्ट्र-सभा (कांग्रेस) का शासन-सुधार सम्बन्धी वैध और सङ्गठित आन्दोलन आरंभ हुआ। क्रमशः उसकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, यह अंग्रेजों को अच्छा नहीं लगा। वे कांग्रेस को हिन्दुओं की संस्था कहते हुए मुसलमानों को उससे अलग रखने की कोशिश करते रहे। सन् १९०५ में लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिये, जिससे बंगाल के नये प्रान्त में मुसमानों का हिन्दुओं से मेल कम रहे और 'पूर्वी बंगाल और आसाम' प्रांत में मुसलमानों का बहुमत हो। इसका जनता ने बहुत विरोध किया। देशव्यापी स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी वस्तु-बहिष्कार का सूत्रपात हुआ। खासकर श्री अरविन्द और तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रीय दल (गरम दल) का सङ्गठन हुआ। श्री दादाभाई नौरोजी ने बतलाया कि भारत का ध्येय स्वराज्य है। सन् १९०७ के सूरत में होने वाले कांग्रेस-अधिवेशन में गरम और नरम दल का स्पष्ट विवाद सामने आया। सरकार द्वारा घोर दमन होने के बाद कांग्रेस में नरम दल का बोलवाला रह गया।

इधर कुछ लोगों, विशेषतया युवकों का कांग्रेस के वैध आन्दोलन पर से विश्वास उठ गया। उन्होंने आतंक-मार्ग को ग्रहण किया। जगह-जगह गुप्त सभायें संगठित की गयीं। अस्त्र-शस्त्र और धनसंग्रह करने के लिये 'डाके' डाले गये। कहीं एक अंग्रेज अफसर को मार डालने की योजना की गयी, कहीं दूसरे को गोली का निशाना बनाया गया। कहीं-कहीं गवर्नर आदि की रेल उलटने का भी प्रयत्न किया गया।

मार्ले-मिन्टो सुधार और साम्प्रदायिक निर्वाचन—सन् १९०८ से नरम दल वाले ही कांग्रेस का अधिवेशन करने लगे थे। गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टो ने उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये भारत-मन्त्री लार्ड मार्ले से विचार-विनिमय किया। फल-स्वरूप सन् १९०९ में मार्ले-मिन्टो सुधार-कानून बना।

इसके अनुसार जहाँ एक ओर विधान सभाओं में भारतीयों का बल बढ़ाया गया दूसरी ओर उसे घटाने की भी योजना कर ली गयी। स्वयं सरकार के इशारे पर मुसलमानों का डेप्यूटेशन लार्ड मिन्टो से मिला था। नये सुधारों में, मुसलमानों के लिए भारतीय विधान-सभा में, और पंजाब को (जहाँ मुसलमानों की आबादी अधिक थी) छोड़कर अन्य प्रान्तों की विधान परिषदों में पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा जारी कर दी गयी। इस प्रकार जातिगत निर्वाचन के रूप में भारतीय राष्ट्रीयता के लिए एक विष-वृक्ष लगा दिया गया, जो पीछे उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

मुस्लिम लीग—अधिकारियों की भेद-भाव नीति, मेहरबानी या रियायतों से मुसलमान प्रभावित होते रहे। उन्होंने कांग्रेस में विशेष भाग लेना पसन्द न किया। अपने राजनैतिक आन्दोलन की स्वतंत्र व्यवस्था करने के लिए उन्होंने सन् १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना कर ली। उसने बंगाल के दो टुकड़े किये जाने की सराहना की और साम्प्रदायिकता का खूब प्रचार किया।

होम रूल आन्दोलन—सन् १९११ में भारतीय लोकमत से प्रभावित होकर सरकार ने बङ्ग-भङ्ग को रद्द किया। इससे देश में प्रसन्नता और कृतज्ञता की लहर दौड़ती मालूम हुई, पर जनता के असंतोष के कितने ही कारण बने रहे। प्रथम यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) में इंगलैंड और उसके मित्र-राष्ट्रों ने पराधीन देशों के लिए आत्म-निर्णय के सिद्धांत की घोषणा की। इससे भारतीय जनता में स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नयी आशा और उत्साह का उदय हुआ। इसी समय लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबिसेंट ने 'होमरूल-लीग' (स्वशासन संघ) स्थापित की। देश भर में जगह-जगह इसकी शाखाएँ फैल गयीं। लोकमान्य का यह वाक्य आदमी-आदमी की जबान पर चढ़ गया—'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लूँगा।'

सन् १९१७ की घोषणा—पार्लियामेंट कुछ समय से भारत के शासन-कार्य में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की नीति अपना रही थी,

पर उसकी गति बहुत धीमी थी; फिर खासकर अँग्रेजी शिक्षा और राष्ट्रीय साहित्य के प्रचार, यातायात की सुविधाएँ, शासन की एकता, पाश्चात्य देशों की प्रजातंत्रात्मक शासन-पद्धति के ज्ञान, तथा स्वतंत्र देशों के इतिहास से प्रभावित होकर भारतीयों की राष्ट्रीय भावना बढ़ती जा रही थी। कांग्रेस जनता के असंतोष को अधिकाधिक व्यक्त करती जा रही थी। ऐसी दशा में शासन-कार्य में भारतीयों के सहयोग मात्र से काम नहीं चल सकता था। जनता की जोरदार माँग थी कि सरकार अपनी नीति में मौलिक सुधार करे।

अगस्त १९१७ में भारत-मंत्री श्री मांटेग्यू ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारतीय शासन सम्बन्धी नीति की घोषणा की; उसकी मुख्य बात यह थी कि भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाए, और इसके लिए भारतीयों का 'शासन के प्रत्येक विभाग में अधिकाधिक सम्पर्क हो। इस समय भारत का वाइसराय चेम्सफोर्ड था।

सन् १९१९ का शासन-सुधार—मांटफोर्ड (मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड) सुधार-योजना के आधार पर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १९१९ में एक्ट पास किया, उसके अनुसार भारतीय शासन में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये :—

१—विधान-सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी और जनता के प्रतिनिधियों की संख्या नामजद सदस्यों से अधिक की गयी। मताधिकार का क्षेत्र बढ़ाया गया लगभग ७५ लाख व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त हुआ। केन्द्रीय विधान-मंडल में एक की जगह दो सभाएँ की गयीं—भारतीय विधान-सभा और राज-परिषद।

भारतीय विधान सभा के सदस्यों की संख्या १४० निर्धारित की गयी। उसके ४० नामजद सदस्यों में से २६ से अधिक सरकारी नहीं हो सकते थे। कुल सदस्यों में कम-से-कम १०० सदस्य निर्वाचित होने आवश्यक थे। प्रांतों के सदस्यों की संख्या अलग-अलग थी। इस सभा की आयु तीन वर्ष थी, राज-परिषद में ६० सदस्य होने लगे—३३ निर्वाचित और २७ नामजद।

नामजद सदस्यों में सरकारी सदस्यों की संख्या २० से अधिक नहीं होती थी। निर्वाचकों के लिए योग्यता का आर्थिक परिमाण बहुत अधिक निर्धारित किया गया था। इस लिए यह भारतीय विधान-सभा की अपेक्षा बहुत कम निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व करती थी। इस सभा की आयु ५ वर्ष थी।

प्रान्तों की विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या जुदा-जुदा थी। सब से अधिक सदस्य बंगाल में थे; वहाँ १३६ सदस्य थे। विधान परिषदों की आयु तीन वर्ष होती थी। साम्प्रदायिक निर्वाचन अब पहले से भी अधिक था।

२—केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को अलग-अलग करके प्रान्तीय विषय को दो भागों में विभक्त किया गया—हस्तान्तरित और रक्षित। हस्तान्तरित विषय भारतीय मन्त्रियों को सौंपे गये। दूसरे प्रकार के विषय रक्षित कहे गये, इन पर गवर्नर की कार्यकारिणी का अधिकार रहा; इनके लिए कार्यकारिणी के सदस्य विधान-परिषद के अधीन न होकर गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार उत्तरदायी शासन पद्धति आंशिक रूप में, नौ प्रान्तों में आरम्भ की गयी—बंगाल, बम्बई, मद्रास, संयुक्तप्रांत, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त-बरार, बर्मा और आसाम में।

३—इस कानून से केन्द्र में उत्तरदायी शासन आरम्भ नहीं किया गया, भारत सरकार ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रति ही उत्तरदायी रही। हाँ, उसमें तीन सदस्य भारतीय होने लगे।

४—इस कानून से इन्डिया-कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ और १२ के बीच में निश्चित की गयी। कौंसिल की आयु पाँच वर्ष ठहरायी गई। अब तक कौंसिल का खर्च भारतीय खजाने से दिया जाता था; अब यह निश्चित किया कि भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश-कोष से दिया जाया करे। यह इसलिए किया गया कि पार्लियामेन्ट भारत-मंत्री के कार्यों पर नियंत्रण रख सके।

इस कानून में यह बात स्पष्ट की गयी कि दस वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त किया जाएगा, जो इस बात की जाँच करेगा कि सन् १९१९ में जो

उत्तरदायी शासन प्रचलित किया गया, उसे कहाँ तक बढ़ाना, बदलना या घटाना ठीक होगा।

सत्याग्रह और असहयोग—मार्च १९१९ में सरकार ने भारतीय लोकमत की नितान्त उपेक्षा करके 'रौलेट एक्ट' नाम से कुप्रसिद्ध दमनकारी कानून बना दिया। इस पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जगह-जगह हजारों आदमियों ने सत्याग्रह किया। कांग्रेस का सन्देश गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा। कांग्रेस ने १९१९ के शासन-सुधारों को अपूर्ण, असन्तोषप्रद और निराशाजनक ठहराया और उनका बहिष्कार किया। सन् १९२० में कांग्रेस के उद्देश्य में से भारत के ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहने की बात निकाल दी गयी। इस वर्ष नये सुधारों के अनुसार विधान सभाओं का पहला निर्वाचन हुआ, बहुत से योग्य व्यक्तियों ने असहयोगी होने के कारण उसमें भाग नहीं लिया। दिसम्बर १९२१ के अन्त में राजनैतिक कैदी बीस हजार हो गये। पीछे इनकी संख्या और बढ़कर तीस हजार तक पहुँच गयी।

सन् १९२२ में, कांग्रेस में एक ऐसा दल बन गया, जिसने चुनाव में भाग लेकर इन थोथे सुधारों को नष्ट करना उचित समझा। यह 'स्वराज्य दल' था। इसने १९२३ के चुनाव में बङ्गाल और मध्यप्रान्त में बहुमत प्राप्त किया। इससे इन प्रान्तों में मन्त्रियों का वेतन अस्वीकृत या नाममात्र को स्वीकृत हुआ, और सरकार की बार-बार हार हुई पर वह अपना काम चलाती रही।

सन् १९३५ का संविधान—भारतीय शासनपद्धति की जाँच के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने सन् १९२७ ई० में 'साइमन कमीशन' नियुक्त किया। इसके सातों सदस्य अँग्रेज थे, और वे भी अनुदार विचार वाले। इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १९२९ में प्रकाशित हुई। पश्चात् १९३० से १९३२ ई० तक लंदन में तीन बार 'गोलमेज सभा' हुई, इसमें से केवल दूसरी में कांग्रेस ने, महात्मा गांधी द्वारा, भाग लिया। गोलमेज सभाओं तथा विविध कमेटियों की रिपोर्टों के आधार पर पार्लियामेन्ट ने सन् १९३५ का शासन-विधान बनाया। इसकी मुख्य बातें ये थीं—

१—सम्पूर्ण भारत (ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों) के लिए संघ-शासन की योजना बनायी गयी। जब कुछ स्वतन्त्र राज्य आत्म-रक्षा या आर्थिक अथवा राजनैतिक उन्नति के लिए अपनी सेना, व्यापार या राष्ट्रोन्नति आदि विभागों का प्रबन्ध सामूहिक रूप से करना चाहते हैं, और इस उद्देश्य से अपना संगठन करते हैं तो यह कहा जाता है कि उन्होंने अपना संघ (फेडरेशन) बनाया। संघ-शासन में संघान्तरित राज्यों की सरकारें अपने-अपने राज्य सम्बन्धी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में स्वाधीन रहती हैं।

२—प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गयी, परन्तु गवर्नरों को अनेक विशेषाधिकार दिये गये।

बर्मा प्रान्त ब्रिटिश भारत से अलग किया गया। पहले बर्मा के अलावा आठ प्रान्तों में गवर्नर थे—बंगाल, बम्बई, मद्रास, सयुक्तप्रान्त पञ्जाब, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त-बरार और आसाम में। सन् १९३५ के संविधान से इनमें तीन प्रांत और बढ़े। सिंध को बम्बई से और उड़ीसा को बिहार से अलग करके दो नये प्रांत बनाये गये। पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त का शासक पहले चीफ कमिश्नर होता था, वह प्रान्त भी गवर्नर का प्रान्त बनाया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर इस समय गवर्नरों के प्रान्त ग्यारह हो गये।

इन ग्यारह प्रांतों में विधान-मंडलों का पुनः संगठन किया गया। विधान सभा तो इन सभी प्रान्तों में रही। इनमें से छः प्रांतों (बंगाल, बम्बई, मद्रास संयुक्तप्रान्त, बिहार और आसाम में दूसरी सभा (विधान-परिषद) भी स्थापित की गयी।

चीफ कमिश्नरों के प्रांतों में पश्चिमोत्तर प्रांत के न रहने की बात कही जा चुकी है। इस विधान से एक चीफ-कमिश्नरी नयी बढ़ायी गयी—पंथ-पिपलौदा। यह प्रदेश पहले होलकर राज्य का ही अंग था।

३—सारे भारत के प्रमुख न्यायालय के तौर पर संघ न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गयी।

संघ शासन होने की दशा में जब केन्द्रीय सरकार का किसी प्रान्तीय सरकार से, अथवा दो प्रान्तीय सरकारों का परस्पर में किसी विषय में मतभेद हो, या शासन-विधान की किसी धारा का अलग-अलग अर्थ लगाया जाता

हो, तो उसका निर्णय संघ-न्यायालय द्वारा होता है। सन् १९३५ के विधान से यहाँ १९३७ में जो संघ न्यायालय बना, उसके अधिकार विस्तृत न थे। वह न्यायालय यहाँ के किसी केन्द्रीय या प्रान्तीय कानून को, यदि वह संविधान की धाराओं के विरुद्ध होता, गैर-कानूनी नहीं ठहरा सकता था, क्योंकि ब्रिटिश पार्लियामेंट कोई भी ऐसा कानून बना सकती थी, जो १९३५ के संविधान के ही विरुद्ध हो। फिर, भारत का गवर्नर-जनरल किन-किन बातों में अपने विवेकानुसार कार्य करे, इसका निर्णय संघ न्यायालय नहीं वरन् स्वयं गवर्नर-जनरल ही कर सकता था। इसके अतिरिक्त संघ न्यायालय भारत का अंतिम न्यायालय नहीं था, इसके निर्णयों की अपील इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल में हो सकती थी।

संघ-शासन; योजना स्थगित—सन् १९३५ से पहले ब्रिटिश भारत में लोकसत्तात्मक शासन-पद्धति और संस्थाएँ, कुछ अपूर्ण रूप में ही सही, विद्यमान थीं; जब कि अधिकांश देशी राज्यों में अवैध राजसत्तात्मक शासन-पद्धति थी, प्रजा-प्रतिनिधियों का उसमें प्रायः कुछ भी भाग नहीं था। सङ्घ-योजना में इनके अन्तर को घटाने के लिए यह व्यवस्था भी नहीं की गयी कि देशी राज्यों में क्रमशः उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित की जाय। इसके विपरीत, उनका सम्राट से पृथक् और सीधा सम्बन्ध रहने की व्यवस्था करके उन्हें ब्रिटिश भारत से और भी दूर करने की योजना की गयी।

पुनः यह योजना इस देश को न केवल विदेश-नीति और व्यापार के सम्बन्ध में, वरन् अपनी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध में भी परतंत्र बनाये हुए थी। केन्द्रीय कार्यों के संचालन के लिए प्रायः समस्त शक्तियाँ और अधिकार मंत्रिमंडल को न देकर गवर्नर-जनरल को सौंप दिये गये थे, संघीय विधान-मंडल का संगठन और कार्य-पद्धति अत्यन्त दूषित थी, तथा इसके कानून-निर्माण सम्बन्धी एवं आर्थिक अधिकार बहुत कम थे। ऐसे दूषित संविधान का जनता द्वारा प्रबल विरोध होना स्वाभाविक ही था। इसकी योजना कार्य-रूप में परिणत होने से पहले ही स्थगित कर दी गयी।

इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार और विधान मंडल अट्ठाईस वर्ष, सन् १९४७ तक, सन् १९१९ के ही अधिनियम के अनुसार, बना रहा।

हाँ, सन् १९३७ में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना होने पर केन्द्र और प्रान्तों का सम्बन्ध सन् १९३५ में अधिनियम के अनुसार होने लगा।

संविधान के प्रान्तों सम्बन्धी भाग का प्रयोग—सन् १९३५ के संविधान का केवल प्रान्तों सम्बन्धी भाग सन् १९३७ से अमल में आया। इसके अनुसार प्रान्तीय विधान-मण्डलों का प्रथम चुनाव होने पर ६ प्रान्तों (बम्बई, मद्रास, संयुक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा, और मध्य प्रान्त) में कांग्रेस दल का बहुमत था। परन्तु कांग्रेस ने इन प्रान्तों में मन्त्रिपद ग्रहण करना उस समय स्वीकार किया, जब गवर्नर-जनरल ने यह आश्वासन दे दिया कि गवर्नर रोजमर्रा के शासन-कार्य में, वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करेंगे। पश्चात् पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त और आसाम में भी कांग्रेसी मंत्रिमंडल हो जाने से, गवर्नरों के ग्यारह प्रान्तों में से आठ में कांग्रेस-शासन स्थापित हो गया।

कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण किये जाने से कांग्रेसी प्रांतों में नया राजनैतिक वातावरण हो गया। मंत्रियों ने जनता की असुविधाओं को दूर करने के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न किया।

सन् १९३९ ई० में यूरोप में (दूसरा) महायुद्ध छिड़ा। इङ्गलैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो उसने भारतवर्ष का मत लिये बिना ही इसे अपने साथ युद्ध-संलग्न घोषित कर दिया और केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को प्रांतों में कई प्रकार के काम करवाने के लिए विशेष अधिकार दे दिये। कांग्रेसी सरकारों ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य पूछा, और यह माँग उपस्थित की कि युद्ध समाप्त होने पर भारतवासियों को अपनी संविधान-सभा द्वारा स्वयं ही अपनी शासनपद्धति निश्चित करने का अधिकार रहे। ब्रिटिश सरकार का उत्तर सर्वथा असन्तोषप्रद रहा। इस पर कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया और नया संविधान प्रायः स्थगित हो गया।

क्रिप्स-योजना—जब कि भारतवर्ष पर जापान के आक्रमण की आशंका थी, फरवरी सन् १९४२ में, ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमंडल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के भावी शासन की एक योजना लेकर यहाँ आये; साधारण बोलचाल में उसे 'क्रिप्स योजना' कहते हैं। इसकी मुख्य बातें युद्ध के बाद अमल में आनेवाली थीं; वे इस प्रकार थीं :—

(१) भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेशों का पद दिया जाए।

(२) भारतीय 'यूनियन' (संघ) की संविधान-सभा को यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि भारतीय यूनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहे या बाहर।

(३) जो प्रान्त या राज्य भारतीय यूनियन में सम्मिलित न होना चाहें वे अपना यूनियन अलग बना सकते हैं; उनका ब्रिटिश साम्राज्य से सीधा सम्बन्ध होगा।

युद्ध-काल के बारे में बताया गया कि भारतवर्ष की रक्षा के कार्य पर अधिकार और उसके संचालन की जिम्मेदारी ब्रिटिश जङ्गी लाट पर होगी, जो ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल के प्रति जिम्मेवार होगा। रक्षा को छोड़कर शेष सब विषय भारतवर्ष के प्रमुख दलों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों से बनायी हुई राष्ट्रीय सरकार को सौंपे जाएँगे।

वास्तव में यह योजना एक ऐसी हुन्डी की तरह थी, जिस पर आगे की मिति डाली हुई हो, जिसका तत्काल मूल्य न हो। आवश्यक सत्ता के अभाव में कांग्रेस ने क्रिप्स-योजना अस्वीकार कर दी। अन्य दलों ने भी उसे स्वीकार नहीं किया।

सन् १९४२ की जन-क्रान्ति—क्रिप्स-योजना की असफलता पर देश में घोर असन्तोष और क्षोभ का वातावरण हो गया। विदेशी शासन असह्य हो रहा था। लोगों में कोई जोरदार कदम उठाने की भावना बढ़ती गयी। १४ जुलाई १९४२ को कांग्रेस कार्यसमिति ने अंग्रेजों से भारत छोड़ने का आग्रह करनेवाला 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। उस पर ८ अगस्त को बम्बई में विचार होकर जो महत्व-पूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किया गया उसने उस तारीख को भारतीय राजनीति के इतिहास में अमर बना दिया। इसे उपस्थित करते हुए म० गांधी ने कहा "कांग्रेस से मैंने आज यह बाजी लगवायी है कि वह या तो देश को आजाद करेगी अथवा खुद फना हो जाएगी। 'करो या मरो' हमारा मूल मंत्र होगा।"

कांग्रेस कमेटी का कार्य समाप्त होने से पूर्व ९ अगस्त को बहुत सबेरे देश के बड़े-बड़े नेताओं को गिरफ्तार करके सरकार ने बिना चाहे ही जन-संघर्ष को आमन्त्रित कर डाला। जनता पर म० गांधी का जो सौम्य नियंत्रण था, वह न रहा। इधर १० अगस्त को भारतमंत्री श्री एमरी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ कि कांग्रेस का कार्यक्रम रेल की पटरी उखाड़ना, तार तोड़ना, सरकारी इमारतों को नष्ट करना आदि है। बस, जगह-जगह तोड़फोड़ का काम होने लगा। यह जनता का खुला विद्रोह था। इसे दबाने के लिए सरकार ने अंधाधुंध दमन किया। अनेक स्थानों में जन-समूह पर गोलियाँ चलीं, गाँव जलाये गये, सामूहिक जुरमाने हुए, लोगों का सामान नीलाम किया गया, नागरिक स्वतन्त्रता छीन ली गयी। दमन ने आन्दोलन को बाहरी दृष्टि से शान्त कर दिया, पर वह जनता की स्वतंत्रता की भावना को न दबा सका।

इस जनक्रान्ति के ही समय, देश की पूर्वी सीमा पर इसे स्वतंत्र करने के लिए आजाद-हिन्द आन्दोलन, श्री नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में हुआ। आजाद-हिन्द सरकार ने अपने कार्यों से चमत्कार-पूर्ण साहस, त्याग और संगठन का परिचय दिया।

वेवल योजना—मई १९४४ में म० गांधी जेल से छूटे। आपने फिर यह कहा कि देश में राष्ट्रीय सरकार का स्थापित हो जाना आवश्यक है। आपने तथा श्री राजगोपालाचारीजी ने मुस्लिम लीग के कर्ता-धर्ता श्री जिन्ना से बातचीत की। परन्तु जैसी कि आशंका थी, वह सफल नहीं हुई।

जुलाई १९४५ में ब्रिटिश पार्लियामेंट के चुनाव होने वाले थे। श्री चर्चिल की फिर प्रधान मन्त्री बनने की इच्छा थी, अपनी सफलता के उद्देश्य से उसने भारत के राजनैतिक गतिरोध को दूर करने के लिए वायसराय लार्ड वेवल को आदेश दिया। लार्ड वेवल ने एक योजना बनाकर उस पर विचार करने के लिए २५ जून को शिमले में भारतीय नेताओं की कान्फ्रेन्स बुलायी। योजना में कई दोष जानते हुए भी जनता के युद्ध-कालीन सङ्कट दूर करने और देश की आजादी का रास्ता साफ होने की आशा से कांग्रेस ने कान्फ्रेंस में भाग लिया। यह निश्चय किया गया कि वायसराय की नयी कार्यकारिणी के सदस्य इस प्रकार हों—कांग्रेस ५, मुस्लिम लीग ५, सिक्ख १,

भारतीय ईसाई १, और दलित जातियाँ २। पर श्री जिन्ना ने यह हठ की कि पाँचों मुसलमान सदस्यों का चुनाव सिर्फ मुस्लिम लीग ही करे; जिसका अर्थ यह होता था कि कांग्रेस कोई राष्ट्रीय संस्था नहीं है, उसका मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन्ना की यह बात असत्य थी; योजना पर विचार होते समय भी मौलाना अब्दुल कलाम आजाद कांग्रेस के सभापति की हैसियत से कान्फ्रेंस में भाग ले रहे थे। अस्तु, वेवल योजना अमल में नहीं आयी।

राजनैतिक परिस्थिति—१९४६ में प्रांतीय विधान-सभाओं का जो चुनाव हुआ, उसमें कांग्रेस को प्रचंड विजय प्राप्त हुई। आठ प्रांतों में उसके मंत्रिमंडल बन गये। उधर, दूसरे महायुद्ध में यद्यपि इंगलैंड विजयी हुआ था, पर वह अब यूरोप में प्रथम श्रेणी का राष्ट्र न रह कर, दूसरी ही नहीं, तीसरी श्रेणी का राष्ट्र रह गया था। वह भारत जैसे देश के सहयोग की उपेक्षा नहीं कर सकता था। फिर, वहाँ के १९४५ के चुनावों ने अनुदार दल को हटा कर शासन की बागडोर मजदूर दल के नेताओं को सौंप दी थी। ब्रिटिश सरकार भारत पर से अपना नियंत्रण शिथिल करने की आवश्यकता अनुभव कर ही रही थी कि फरवरी १९४६ में बम्बई में नौसैनिक संघर्ष हुआ, जो क्रमशः दूर-दूर तक फैल गया, और जिसे अन्त में श्री सरदार पटेल आदि ने बीच में पड़कर शांत किया। यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश विरोधी भावना अब सेना को भी ग्रस्त कर चुकी है, और उस पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार इङ्गलैंड के सूत्रधारों को यह दिखाई देने लग गया कि भारत पर उनकी हुकूमत चलनी कठिन है। अब से भारतीय स्वतंत्रता की योजना होने लगी।

तीसरा अध्याय

भारत की स्वतन्त्रता

भारत में राष्ट्रीय सरकार—मार्च १९४६ में ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्य (लार्ड पेथिक लारेन्स, सर स्टेफर्ड क्रिप्स, और अलबर्ट एलेग्जेंडर) भावी भारतीय शासन के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने के लिए भारत आये। मन्त्रिमिशन ने नया संविधान बनने तक कांग्रेस और मुस्लिम लीग से सम्मिलित अस्थायी सरकार बनाने को कहा और, उनके द्वारा न बनाये जाने पर १६ जून १९४६ को १४ सदस्यों की अन्तर्कालीन सरकार बनाने की योजना उपस्थित की। उसके अमल में न आ सकने पर जुलाई १९४६ में लार्ड वेवल ने अन्तर्कालीन सरकार बनाने का फिर प्रयत्न किया। उन्होंने कांग्रेस-अध्यक्ष श्री० जवाहरलाल नेहरू, तथा श्री० जिन्ना को क्रमशः ६ और ५ व्यक्तियों की सूची भेजने को कहा और यह आश्वासन दिया कि अल्पसंख्यकों के तीन सदस्य दोनों बड़े दलों के परामर्श से नियुक्त किये जाएँगे। श्री० जिन्ना ने सूची न भेजकर आन्दोलन द्वारा पाकिस्तान प्राप्त करने की धमकी दी। अन्त में २ सितम्बर को लीग के सहयोग के बिना ही १२ सदस्यों की राष्ट्रीय सरकार बनायी गयी; जिसमें देश के अन्य सब प्रमुख हितों के प्रतिनिधि थे।

जब कि राष्ट्रीय सरकार बनाने की बात हो ही रही थी, श्री० जिन्ना ने विरोध-रूप में १६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष संघर्ष' ('डायरेक्ट एक्शन') दिन मनाये जाने की घोषणा कर दी। इससे देश में खूब साम्प्रदायिक उपद्रव हुए; द्वेषाग्नि फैल गयी। लीग-सरकार वाले बङ्गाल प्रान्त के अमानुषिक अत्याचारों की प्रति क्रिया बिहार में हुई। पर म० गांधी की अनशन की घोषणा तथा केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार की तत्परता से स्थिति जल्दी सम्हल गयी।

लीग के अलग रहने और विरोधी कार्य करने के कारण राष्ट्रीय सरकार से न तो कांग्रेस को सन्तोष था, और न वायसराय को। लीग से फिर बात-चीत चली और आखिर, मुस्लिम लीग के पाँच सदस्यों ने अन्तर्कालीन सरकार में आना स्वीकार कर लिया। अब, अन्तर्कालीन सरकार के उपर्युक्त बारह सदस्यों में से तीन को हटाकर लीग के ५ सदस्य ले लिये गये। इस प्रकार १४ सदस्यों की राष्ट्रीय सरकार बन गयी। प्ररन्तु लीग के सदस्य सरकार में शामिल होकर अड़ङ्गा ही लगाते रहे।

भावी संविधान-योजना—मई १९४६ में मन्त्रिमिशन ने भारत का भावी संविधान बनाने के लिए संविधान-सभा के सङ्गठन की योजना बनायी और यह सिफारिश की कि एक अखिल भारतीय यूनियन या सङ्घ होना चाहिए, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों भाग सम्मिलित हों। उसके अधीन ये विषय रहने चाहिएँ—विदेशी मामले, रक्षा और यातायात। इन विषयों को छोड़ कर शेष सब अधिकार प्रान्तों को हों। कोई भी प्रांत अपनी विधान-सभा के बहुमत से प्रथम दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार कर सकेगा।

मंत्रिमिशन ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करके भी भारतवर्ष को तीन समूहों में बाँटने पर जोर दिया। उनमें से पूर्वी और पश्चिमी समूहों में ऐसे प्रान्तों का समावेश किया गया, जिनमें कुल मिलाकर मुस्लिम बहुमत था। उसने 'क' समूह में मद्रास, बम्बई; संयुक्तप्रांत, विहार, मध्यप्रांत और उड़ीसा रखे; 'ख' (पश्चिमी) समूह में पञ्जाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत' और सिंध; और 'ग' पूर्वी समूह में बङ्गाल और आसाम। संविधान सभा के लिए ब्रिटिश भारत के सदस्यों की संख्या २९६ निश्चित की गयी—दस लाख व्यक्तियों पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से। देशी राज्यों के सदस्यों की संख्या ९३ निश्चित हुई।

इस योजना में प्रान्तों का समूहीकरण आदि कई दोष थे। परन्तु अंत में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की आशा से, कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। विधान-सभा में प्रान्तों की ओर से लिये जाने वाले सदस्यों का चुनाव किया गया। मुस्लिम लीग ने भी चुनावों में भाग लिया।

मुस्लिम लीग का विरोध; भारत विभाजन की मांग—जुलाई १९४६ में मंत्रिमिशन की योजना के अनुसार संयुक्त भारत का संविधान बनाने के लिए प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ। उसमें २९६ सदस्यों में से २०८ कांग्रेसी थे, और यदि ३ स्वतंत्र मुसलमान भी उनमें मिला दिये जाएँ तो कांग्रेस समर्थकों की संख्या २११ थी, जब की मुस्लिम लीग को केवल ७३ स्थान मिले थे। यह देखकर जिन्ना साहब बहुत उद्विग्न हो उठे। उन्होंने मुस्लिम लीग के सदस्यों को संविधान सभा से असहयोग करने का आदेश दिया। अब मुस्लिम लीग ने खुले आम यह नीति अपना ली कि हम संयुक्त भारत की संविधान सभा को सफल नहीं होने देंगे, भारत का विभाजन चाहते हैं; पाकिस्तान राज्य अलग होना चाहिए, और उसकी संविधान सभा अलग सङ्गठित हो।

२० फरवरी सन् १९४७ को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री एटली ने यह प्रसिद्ध घोषणा की कि अधिक-से-अधिक जून १९४८ तक भारत से अंग्रेजी सत्ता हटा ली जाएगी।

संविधान-योजना में परिवर्तन, भारतीय संघ और पाकिस्तान—मुस्लिम लीग मंत्रिमिशन योजना का विरोध, और पाकिस्तान के लिए आन्दोलन करती रही। भारतवर्ष के खंडित होने की आशंका देखकर कांग्रेस ने (बङ्गाल, पञ्जाब और आसाम के उन भागों को ध्यान में रखकर जिनमें मुस्लिम बहुमत नहीं था) इस बात पर जोर दिया कि किसी प्रदेश पर उसकी इच्छा के विरुद्ध शासन नहीं लादा जा सकता ! आखिर, तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन ने विधान नेताओं से मिलकर तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल की स्वीकृति से ३ जून ४७ को संविधान सम्बन्धी नयी योजना प्रकट की। इस योजना के अनुसार शासन की दृष्टि से भारतवर्ष के दो अलग-अलग स्वतंत्र राज्य हो गए:—भारतीय सङ्घ और पाकिस्तान।

पाकिस्तान के पूर्वी भाग में पूर्वी बङ्गाल, और आसाम के सिलहट जिले का अधिकांश भाग रहा। पाकिस्तान के पश्चिमी भाग में पश्चिमी पंजाब, सिन्ध तथा बिलोचिस्तान रखे गये, और निश्चय किया गया कि पश्चिमोत्तर

सीमाप्रान्त के लोगों का मत लिया जाए। इस प्रान्त की अधिकांश जनता पाकिस्तान विरोधी थी। पर मुस्लिम लीगियों के सङ्घर्ष से बचने के लिए उसने भारतीय सङ्घ में शामिल होना पसन्द नहीं किया। उसने अपने स्वतंत्र पठानिस्तान की माँग की, लेकिन प्रस्तुत योजना में उसकी गुंजायश नहीं थी। इसलिए पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के बहुत से आदमियों ने अपना मत नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि पाकिस्तान के समर्थक लीगियों की विजय रही। सीमाप्रांत को (वहाँ के निवासियों के न चाहते हुए भी) पाकिस्तान में मिलना पड़ा।

कांग्रेस ने विभाजन क्यों स्वीकार किया ?—३ जून की घोषणा से होने वाले देश के विभाजन से राष्ट्रीय नेता प्रसन्न नहीं थे। पर उनके सामने, तत्कालीन परिस्थितियों में स्वाधीनता प्राप्ति का और कोई उपाय भी नहीं था। महात्मा गांधी ने ४ जून के प्रार्थना-भाषण में कहा था कि 'जनता को यह न भूल जाना चाहिए कि कांग्रेस को इस स्थिति में आने के लिए विवश किया गया है।' कांग्रेस ने अखंड भारत का लक्ष्य सामने रखा था। परन्तु बिना मुस्लिम लीग के सहयोग के उस सिद्धांत पर डटे रहने का मतलब देश में भयानक गृहयुद्ध को आमन्त्रित करना था। अंग्रेजों की कृपा से मुसलमान अस्त्र-शस्त्र से खूब सुसज्जित थे; उनके पीछे ब्रिटिश सत्ता का हाथ था। मुस्लिम लीग वाले जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे ही नहीं, लूट, मार, आगजनी आदि हिंसा कांड कर रहे थे। एक बात यह भी थी कि अस्थायी सरकार के समय लीगी नेताओं ने पद पद पर बाधाएँ उपस्थित कीं, शासन-कार्य ठीक तरह नहीं होने दिया। इस दशा में, कांग्रेस नेताओं को न चाहते हुए भी देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा, जिससे अंग्रेज यहाँ से चले जाएँ और खंडित भारत की ही सही, आजादी मिल जाए।

भारतीय स्वतंत्रता विधान, सन् १९४७—४ जुलाई १९४७ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारतीय स्वतन्त्रता का मसविदा पेश किया गया, और १८ जुलाई को इसे शाही अनुमति से कानून का रूप मिल गया। इसके उद्देश्य इस प्रकार थे—'दो स्वतन्त्र राज्यों (भारत और पाकिस्तान) के निर्माण की

व्यवस्था करना, भारतीय शासन सम्बन्धी सन् १९३५ के संविधान की उन धाराओं के बदले नयी धाराओं को स्थान देना, जिनका सम्बन्ध इन राज्यों के बाहर की बातों से है, और इन राज्यों के निर्माण के फलस्वरूप तथा सम्बन्धित अन्य बातों की व्यवस्था करना।'

इस प्रकार नया संविधान बन कर अमल में आने (२६ जनवरी १९५०) तक इन दोनों राज्यों का तथा इनके प्रान्तों का शासन भारत के सन् १९३५ के विधान के अनुसार हुआ, इन राज्यों के गवर्नर-जनरलों द्वारा संशोधित और परिवर्तित था। गवर्नर जनरल और गवर्नर वैधानिक शासक थे। इनके व्यक्तिगत निर्णय और विवेक सम्बन्धी विशेषाधिकारों की इति श्री हो गयी। इन दोनों राज्यों पर ब्रिटिश सरकार का किसी प्रकार का नियंत्रण न रहा। इनकी विधान सभाओं को पूर्ण अधिकार थे, उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था। उन्हें सर्वोच्च सत्ता प्राप्त थी।

भारतीय रियासतों को एक या दूसरे राज्य में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता दी गयी परन्तु कोई रियासत पूर्ण स्वतन्त्र नहीं रह सकती थी; एक या दूसरे राज्य में मिलने का कानूनी अधिकार भी बहुत कुछ सीमित था, क्योंकि कुछ भौगोलिक अनिवार्यताएँ ऐसी थीं, जिनसे बचा नहीं जा सकता था।

भारत के स्वतन्त्र हो जाने से भारत-मन्त्री और उसके सलाहकार अनावश्यक हो गये; उन्हें हटाने की व्यवस्था की गयी।

विधान को अमल में लाने के कार्य—ऊपर कहा गया है कि भारतीय स्वतन्त्रता विधान का मसविदा ४ जुलाई १९४७ को पार्लियामेंट में पेश किया गया; यह स्पष्ट था कि उसे स्वीकृति जल्दी ही मिल जायगी। इसलिए इसी समय से उसे अमल में लाने के कार्य किये गये।

१—स्वतन्त्रता-विधान में यह व्यवस्था की गयी थी कि भारत और पाकिस्तान दोनों राज्यों के लिए एक-एक गवर्नर-जनरल होगा, (इसमें यह शर्त रखी गयी थी कि जब तक इनमें से किसी राज्य का विधानमंडल विरोधात्मक नियम न बनाये, एक ही व्यक्ति दोनों राज्यों का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जा सके)। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की के दूसरे राज्यों में गवर्नर-जनरल को सम्राट

उस राज्य के मंत्रिमंडल सिफारिश पर नियुक्त करता है, पर भारत और पाकिस्तान में १५ अगस्त १९४७ से पूर्व अलग-अलग मन्त्रिमन्डल ही न थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की सिफारिश के अनुसार पाकिस्तान में श्री जिन्ना को गवर्नर-जनरल बनाया और भारतीय विधान सभा की इच्छानुसार भारत में माउंटबेटन को गवर्नर-जनरल रहने दिया।

२—इस विधान के अनुसार पाकिस्तान के प्रदेश निर्धारित कर दिये गये और ब्रिटिश-भारत के शेष प्रदेशों को भारत का नाम दिया गया। प्रदेश-निर्धारण का आधार निवासियों का साम्प्रदायिक बहुमत था, पर ब्योरेवार अन्तिम निर्णय बंगाल और पंजाब के सीमा-निर्धारण-कमीशनों पर छोड़ दिया गया, जो अपना निर्णय देते समय साम्प्रदायिक बहुमत के अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर भी विचार करने वाले थे। सीमा-निर्धारण-कमीशन सर रेडक्लिफ की अध्यक्षता में नियुक्त हुए। परन्तु उनके एकमत न होने के कारण, उनकी अनुमति से सर रेडक्लिफ ने स्वयं अपना निर्णय दिया।

३— भारतीय संविधान सभा में मुस्लिम लीग और देशी रियासतों के प्रतिनिधि भाग लेने लगे, और यह घोषित कर दिया गया कि १० अगस्त से पाकिस्तान की संविधान सभा कराँची में कार्य आरम्भ करेगी।

४—विभाजन-कौंसिल ने सेना का बंटवारा करना शुरू कर दिया और अंग्रेजी सैनिक भारत से जाने की तैयारी करने लगे।

५—विदेशों में भारतीय राजदूत नियुक्त किये गये।

६—संविधान सभा ने कांग्रेस के तिरंगे झंडे में चरखे की जगह सम्राट अशोक के चक्र को स्थान देकर, उसे भारतवर्ष का सरकारी झंडा स्वीकार किया।

७—प्रान्तों के लिए भारतीय गवर्नरों की नियुक्ति की गयी और आवश्यकतानुसार प्रान्तीय मन्त्रिमंडलों में परिवर्तन किये गये।

८—लार्ड माउंटबेटन ने रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करते हुए उनका स्वतन्त्रता सम्बन्धी भ्रम दूर किया। इस इस प्रकार भारतीय संघ के विविध भागों का सुसंगठन होने लगा।

भारत का शासन-तंत्र; १५ अगस्त १९४७ से पहले

१५ अगस्त १९४७ के बाद
स्वतन्त्र भारत का शासन-तन्त्र
भारतीय-संघ
भारत सरकार
(गवर्नर जनरल और केन्द्रीय मंत्रिमंडल)
केन्द्रीय विधान मंडल
(पार्लियामेंट)
संघ न्यायालय
हाई कोर्ट
(प्रांतों और राज्यों में)
नीचे की अदालतें
गवर्नर
(प्रान्तों में)
राजा
(रियासतों में)
राजप्रमुख
(रियासती संघों में)
चीफ कमिश्नर
(केन्द्र द्वारा शासित
क्षेत्रों में)
मंत्रि परिषद्
विधान-मंडल
मंत्री
विधान-सभा
मंत्री
विधान-सभा
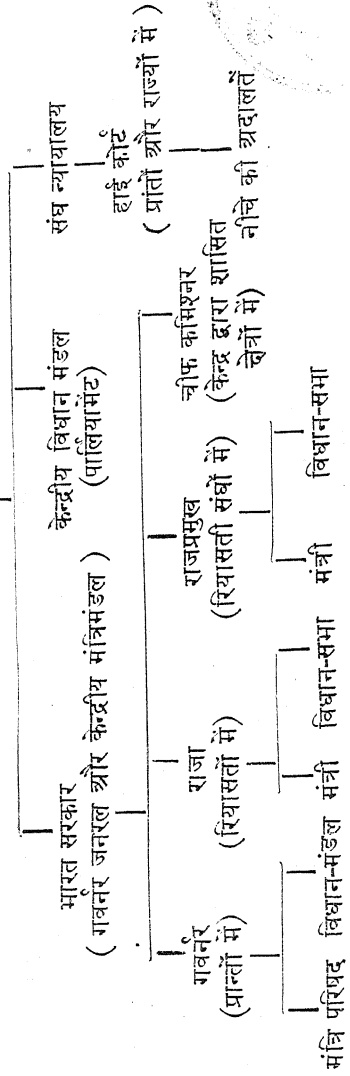
भारत की स्वतन्त्रता; शासनपद्धति में परिवर्तन—भारत स्वतन्त्र होने के साथ ही खंडित भी हो गया। १५ अगस्त हमारी स्वतन्त्रता का दिन है, परन्तु साथ ही विभाजन का भी। इस दिन से दो स्वतन्त्र सरकारों की स्थापना हुई, एक देहली में, दूसरी कराँची में। देश की सारी सार्वजनिक सम्पत्ति रेल, तार, डाक, कारखानों, फौज का सामान तथा रिजर्व बैंक का धन भारत और पाकिस्तान में बांटने की व्यवस्था की गयी। भारत के स्वतन्त्र होने पर यहाँ की शासनपद्धति में जो परिवर्तन हुआ उसका परिचय पाठकों को आगे दिये हुए दो नक्शों की तुलना करने पर सहज ही मिल जाएगा।

१५ अगस्त १९४७ से भारत में किस प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित हुई; भारत सरकार, और भारतीय पार्लियामेंट तथा प्रान्तीय सरकारों और प्रान्तीय विधान मंडलों आदि का रूप क्या हुआ, ये किस प्रकार सम्राट और ब्रिटिश पार्लियामेंट के नियंत्रण से मुक्त हुए और देशी रियासतों की स्थिति में क्या परिवर्तन हुआ इन बातों का अब कुछ ब्योरेवार वर्णन किया जायगा। यह शासनपद्धति भारत का नया संविधान बन कर अमल में आने (२६ जनवरी १९५०) तक के लिए थी। इस प्रकार यहाँ बतायी हुई स्थिति अन्तर्कालीन व्यवस्था के रूप में थी।

(१) केन्द्रीय शासन

भारत के स्वतन्त्र होने से पहले भारत-सरकार का अर्थ था, कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल, (गवर्नर-जनरल और उसकी कार्यकारिणी सभा) अब भारत सरकार का अर्थ होगा गवर्नर-जनरल और मंत्रिमंडल।

गवर्नर-जनरल—पहले गवर्नर-जनरल की नियुक्ति सम्राट, ब्रिटिश प्रधान मन्त्री की सिफारिश से करता था। उसका कार्य-काल प्रायः पांच वर्ष होता था। १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया, अब नये गवर्नर-जनरल की नियुक्ति के लिए सम्राट को ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सिफारिश की आवश्यकता न रही। उसने यहाँ के मन्त्रिमण्डल की इच्छानुसार माउंटबेटन को गवर्नर-जनरल बनाये रखने के लिए स्वीकृति दे दी। अंग्रेज गवर्नर-जनरलों में यह अन्तिम थे। जून सन् १९४८ में लार्ड माउंटबेटन के अवकाश प्राप्त

करने पर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की इच्छानुसार सम्राट द्वारा श्री राजगोपालाचार्य गवर्नर-जनरल नियुक्ति किये गये। यह नियुक्ति नया संविधान स्वीकार होने तक (२६ नवम्बर १६४६ तक) रही। उसके बाद गवर्नर-जनरल का पद समाप्त हो गया।

स्वतंत्रता-विधान से गवर्नर-जनरल की शक्ति बहुत कम हो गयी। वह केवल वैधानिक शासक रह गया। अब उसके लिए प्रत्येक कार्य मंत्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार ही करना आवश्यक हो गया।

मंत्रिमंडल—गवर्नर जनरल की सहायता के लिए एक कौंसिल या कार्यकारिणी सभा उस पद के आरम्भ से ही रहती आयी थी। पहले उसके सब सदस्य अंग्रेज होते थे। पीछे उसमें भारतीयों को भी स्थान मिलने लगा। परन्तु भारतीय सदस्यों को सेना, अर्थ और गृह-विभाग नहीं सौंपे जाते थे। सब सदस्य सम्राट की अनुमति से पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किये जाते थे। और उसी के प्रति उत्तरदायी होते थे। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के जो सदस्य हुए उनका उत्तरदायित्व भारतीय राष्ट्र के प्रति था, वे राष्ट्र-नेता श्री नेहरू (प्रधान मन्त्री) द्वारा चुने हुए थे, श्री नेहरू को विधान-सभा (भारतीय पार्लियामेंट) का यथेष्ट समर्थन प्राप्त था, और वे उसके प्रति उत्तरदायी थे। गवर्नर-जनरल की यह कार्यकारिणी 'मंत्रिमंडल' कहलाती थी। इसमें १४ मंत्री थे। भारत-सरकार के सब विभाग इन मंत्रियों में बंटे हुए थे। मन्त्रियों को नियुक्त करने (और बर्खास्त करने) का अधिकार नियमानुसार तो गवर्नर-जनरल को था। परंतु अब व्यवहार में उसके लिए आवश्यक था कि वह केन्द्रीय विधान मंडल के बहुमत वाले दल के नेता को प्रधान मन्त्री नियुक्त करे और प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर अन्य मंत्रियों को नियुक्त करे।

भारत-सरकार का उत्तरदायित्व—भारत के स्वतंत्र होने तक भारत-सरकार अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी थी। पार्लियामेंट उस पर भारत-मंत्री के द्वारा नियंत्रण रखती थी। भारत-सरकार पर, वैधानिक दृष्टि से भारतीय विधान-मण्डल का कोई नियंत्रण नहीं था।

भारतीय स्वतन्त्रता-विधान से भारतीय शासन में ब्रिटिश पार्लियामेंट का कोई स्थान नहीं रहा। भारतमंत्री और उसके सलाहकारों का पद तोड़ ही दिया गया, केवल सम्राट ही भारतीय शासन विधान का अंग रहा, पर वह भारत के सम्बंध में यहाँ के उत्तदायी मंत्रियों के परामर्श से ही अपने अधिकारों का प्रयोग करने लगा, व्यवहार में उसके भी अधिकार नहीं के बराबर रह गये।

पार्लियामेंट—पहले ब्रिटिश भारत के २९६ और देशी राज्यों के ९३, कुल मिला कर ३८९ सदस्यों से पार्लियामेंट बनायी गयी। पीछे पाकिस्तान का अलग राज्य बनाये जाने की योजना होने पर इनमें से उस क्षेत्र के ६९ सदस्य अलग हो गये, और भारतीय पार्लियामेंट ३२० में सदस्य रह गये। पार्लियामेंट की हैसियत से काम कारने के समय उसका सभापति अलग होने लगा। उसके अधिवेशनों में संविधान सभा के वे सदस्य भाग नहीं लेते थे, जो प्रांतीय विधान मण्डलों के सदस्य थे।

पहले भारतीय विधान-मण्डल के अधिकार बहुत ही सीमित ये। भारतीय स्वतंत्रता-विधान से भारतीय पार्लियामेंट को ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा पास किये हुए कानूनों तथा तत्सम्बंधी नियमों को रद्द करने तथा उनसे असंगत कानून बनाने का भी अधिकार हो गया। इस प्रकार भारतीय पार्लियामेंट एक सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न विधान संस्था हो गयी।

(२) प्रांतीय शासन

स्वतंत्र होने से पहले, शासन की दृष्टि से इस देश के मुख्य दो तरह के भाग थे—प्रांत और राज्य। प्रान्तों के दो भेद थे—गवर्नरों के प्रान्त और चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त। इनमें से चीफ-कमिश्नरों के प्रान्तों का शासन केन्द्रीय सरकार के आदेशों द्वारा होता था। और इनके लिए कानून भी केन्द्रीय विधान-मण्डल ही बनाता था।

चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त ये थे—(१) देहली, (२) अजमेर-मेरवाड़ा, (३) कुर्ग, (४) पंथ-पिपलोदा और (५) अन्दमन-निकोबार। अगस्त १९४७ के बाद इन प्रान्तों में बहुत वृद्धि हुई। देशी राज्यों में से अधिकांश,

भारतीय संघ में विलीन हो गये और इनमें से कुछ राज्यों या उनके समूहों को चीफ कमिश्नर आदि का प्रान्त बनाया गया। इनकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता था और वे उसके प्रति ही उत्तरदायी होते थे।

गवर्नरों के प्रांत—गवर्नरों के प्रान्त बहुत कुछ स्वायत्त या स्वराज्य-प्राप्त थे। भारत के स्वतन्त्र होने (और पाकिस्तान बनने) के बाद प्रान्त निम्नलिखित हुए—(१) मद्रास (२) बम्बई (३) संयुक्त प्रान्त (४) बिहार (५) मध्य-प्रान्त बरार (६) पश्चिमी बंगाल। पहले गवर्नरों की नियुक्तियाँ सम्राट् द्वारा होती थीं। भारत के स्वतंत्र होने के समय अर्थात् १५ अगस्त १९४७ से पूर्व सब गवर्नरों ने त्याग-पत्र दे दिया था। पर मद्रास बम्बई, और आसाम के गवर्नरों को अपने पद पर बने रहने दिया गया। अन्य प्रांतों के लिए नये गवर्नरों को सम्राट् की स्वीकृति से नियुक्त किया गया और यह निश्चय हो गया कि भविष्य में रिक्त होने वाले स्थानों की पूर्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जाएगी।

अब गवर्नर द्वारा प्रान्त का मुख्य मन्त्री तथा अन्य मन्त्री उसी प्रकार नियुक्त होने लगे, जैसे गवर्नर-जनरल द्वारा केन्द्रीय प्रधान मन्त्री और अन्य मन्त्री। भारतीय स्वतन्त्रता विधान, सन् १९४७, से गवर्नर के विशेष अधिकारों का अन्त हो कर वह वैधानिक शासक मात्र रह गया। वह शासन-कार्य मन्त्रि-मण्डल के मतानुसार करने लगा जो प्रान्तीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी हो गया।

प्रान्तीय विधान मंडल—प्रान्तीय विधान मण्डलों के पिछले चुनाव सन् १९४६ में हुए थे। ये चुनाव, १९३५ के विधान के अनुसार पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा के आधार पर हुए थे, और निर्वाचक-संघ १६ प्रकार के माने गये थे। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और उड़ीसा को छोड़कर अन्य प्रत्येक प्रान्त के विधान-मंडल में कुछ स्थान यूरोपियनों को दिये हुए थे। स्वतन्त्रता विधान से ये स्थान समाप्त समझे गये। अब प्रान्तीय विधान सभाओं के सदस्य इस प्रकार रह गये—मद्रास २१२, बम्बई १७२, पश्चिमी बंगाल ९०, संयुक्तप्रान्त २२६, पंजाब ८१, उड़ीसा ६०, बिहार १५०, मध्य-

प्रान्त बरार १११, और आसाम ७५। विधान सभाओं के अधिक से अधिक पाँच वर्ष रहने और इसके बाद भंग हो जाने का नियम था।

सन् १९४६ के चुनावों के समय (१९३५ के शासन-विधान के अनुसार) छः प्रान्तों में दूसरी सभाएँ (विधान-परिषदें) थीं। भारतीय स्वतन्त्रता विधान के अनुसार पश्चिमी बंगाल और आसाम की विधान-परिषदें तोड़ दी गयीं, अब चार प्रान्तों में ही दो-दो सभाएँ रह गयीं। इनके सदस्यों की अधिकतम संख्या इस प्रकार थी :—मद्रास ५५, बम्बई २९, संयुक्तप्रान्त ५९, बिहार २९। विधान परिषदें स्थायी संस्थाएँ थीं, वे कभी भंग नहीं होती थीं। इनके लगभग एक-तिहाई सदस्य निर्धारित रीति से तीन-तीन साल में बदलने (अर्थात् प्रत्येक तीन साल के बाद इसके एक-तिहाई का नया चुनाव होने) का नियम था। कौन-कौन से सदस्य पहले तीन साल बाद और कौन-कौन से पहले छः साल बाद इससे पृथक् हों, इसका निर्णय गवर्नर करता था।

सन् १९३५ के विधान के अनुसार प्रन्तीय विधान-मंडलों के कार्य-सम्पादन के संबंध में अनेक सीमाएँ थीं। सन् १९४७ के भारतीय स्वतंत्रता विधान द्वारा सब रुकावटें हटा दी गयीं। अब प्रान्तीय विधान मंडल अपने क्षेत्र के विषयों के लिए यथेष्ट कानून बना सकते थे।

(३) देशी रियासतें

भारतीय के स्वतंत्र होने से पहले रियासतें दोहरी अधीनता में थीं—राजाओं की तथा अंग्रेजों की। रियासतों की जागीरी जनता तो तेहरी अधीनता में थी, कारण वह जागीरदारों के भी अधीन थी। भारत के स्वतंत्र होने पर रियासतों के शासन-प्रबंध में विलक्षण परिवर्तन हुआ। वे क्रमशः प्रान्तों के स्तर पर आने लगीं।

नयी योजना –नयी योजना ने रियासतों के लिए तीन मार्ग छोड़ दिये (१) वे भारतीय संघ में शामिल हों, (२) पाकिस्तान में शामिल हों, या (३) १५ अगस्त को ब्रिटिश सत्ता का अन्त होने पर वे स्वतंत्र हो जाएँ। हाँ, वायसराय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'अपने हितों की रक्षा करने का भार स्वयं देशी राज्यों पर रहेगा, हम भारतवर्ष की सार्वभौम सत्ता भारतीयों

के हाथ में दे रहे हैं, देशी राज्यों को भारत (या पाकिस्तान) सरकार से बात करनी चाहिए। सम्राट् की सरकार और राजाओं के बीच किसी प्रत्यक्ष समझौते या संधि की बात न हो सकेगी। राजाओं की सहायता के लिए ब्रिटिश सेनाएँ नहीं रहेंगी।' इस प्रकार राजाओं के लिए उपर्युक्त तीन रास्तों में से आखिरी रास्ता कुछ बन्द सा हो गया। तथापि कुछ शासक अपनी 'स्वतंत्रता, का स्वप्न देखने लगे, और वे उसे चरितार्थ करने के लिए कूटनीतिक उपाय काम में लाये।

देशी रियासतें और भारतीय संघ—भारत की लगभग ५६० रियासतों में से एक दर्जन से भी कम पाकिस्तान की भौगोलिक सीमा में थीं। वे पाकिस्तान में सम्मिलित हो गयीं। शेष सब भारतीय सङ्घ के प्रान्तों से मिली हुई या इन प्रान्तों के बीच में थीं। ये क्रमशः प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करके भारतीय संघ में शामिल होती गयीं। केवल भोपाल, इन्दौर और त्रावणकोर ने ढील की, और कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद का कुछ विरोधी रुख रहा। अन्त में ये भी भारतीय संघ में सम्मिलित हो गयीं। सब ने तीन अनिवार्य विषय—रक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और संचार—केन्द्रीय सरकार को सौंप दिये। इन रियासतों के प्रतिनिधियों ने भारत का नया संविधान बनाने के लिए संविधान-सभा में भाग लिया।

कश्मीर पर पाकिस्तान ने अपना दावा किया और उसका कुछ हिस्सा दबा लिया। यह मामला संयुक्तराष्ट्र की सुरक्षा समिति के सामने पेश हुआ, पर उसने निर्णय करने में बहुत ढील की और पाकिस्तान को आक्रमण या हमला करने वाला घोषित नहीं किया। अब कश्मीर की संविधान-सभा ने इस राज्य को भारतीय संघ में मिलाने का निश्चय कर लिया है।

पहले कहा जा चुका है कि अधिकांश रियासतें बहुत ही छोटी-छोटी थीं। उनका क्षेत्रफल, जनसंख्या और आय अच्छे शासन की सुविधा की दृष्टि से काफी नहीं थी। इसलिए उन्हें प्रान्तों में मिलाने या उनके संघ बनाने का विचार किया गया। रियासती विभाग के सुयोग्य अध्यक्ष सरदार पटेल ने रियासती कार्यकर्ताओं तथा राजाओं से इस विषय पर क्रमशः समझौता करके उन्हें प्रान्तों के स्तर पर लाने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार ५५२ रियासतें सम्मिलित हो गयीं। तीन रियासतें—हैदराबाद, मैसूर और जम्मू-कश्मीर अलग-अलग इकाई रहीं। उत्तर पूर्व की खासी पहाड़ी रियासतों को मिलाकर आसाम का एक अलग स्वायत्त जिला बना दिया गया।

राजाओं का निजी खर्च—राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति निश्चित कर दी गयी। खजाने उत्तराधिकारी सरकारों को दे दिये गये। राजाओं को केवल निजी खर्च के लिए निर्धारित धन मिलने की गारंटी दी गयी। उसकी रकम इस दर पर ठहरायी गयी :—राज्य की औसत वार्षिक आय के प्रथम लाख पर १५ प्रतिशत, २ से ५ लाख तक १० प्रतिशत, तथा उसके ऊपर ७॥ प्रतिशत। व्यक्तिगत खर्च के लिए प्रायः अधिक-से-अधिक १० लाख रु० तक दिया गया है। केवल कुछ बड़े राज्यों में धन इससे अधिक निर्धारित किया गया है; वह केवल वर्तमान शासक को दिया जायगा। आगामी पीढ़ी में कोई शासक १० लाख रु० से अधिक व्यक्तिगत खर्च के लिए नहीं पाएगा। इस व्यक्तिगत खर्च के शासक, उसके परिवार के निवास स्थान सम्बंधी और विवाह तथा अन्य संस्कारों के खर्च भी सम्मिलित हैं।

राजाओं को निजी खर्च के लिए जो धन मिल रहा है, इसकी कुल रकम ४, ६६, ७३, ५३५ रु० वार्षिक होगी। क्योंकि भविष्य में किसी राजा के उत्तराधिकारी को दस लाख रु० से अधिक नहीं मिलेगा, अन्त में यह राशि ३, ८६, ६८, ५३५ रु० रह जाएगी। स्मरण रहे कि १५ अगस्त १९४७ से पहले राजाओं का निजी खर्च लगभग २५ करोड़ रु० हो जाता था, जिसमें उनके परिवारों का तथा विवाह शादी आदि का खर्च शामिल नहीं था। अवश्य ही यह कुछ अजीब बात है कि राजाओं को निजी खर्च के लिए लाखों रुपये प्रति वर्ष मिलें और उनके पास कई कई महल, हाथी, मोटर आदि शान-शौकत और विलासिता का सामान रहे, जब कि अनेक साधारण नागरिकों को दिन भर मेहनत करके भी मामूली जरूरतें पूरी करने की नौबत न आए। आशा है, ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होगा, राजाओं को अपनी अजीब और अन्याययुक्त स्थिति का अनुभव होगा, और वे किसी

बाहरी दबाव के बिना ही त्याग, समता और प्रजातंत्रात्मकता का परिचय देंगे।

रियासतों की फौजें—रियासतों के राजप्रमुख रियासती सेनाओं के प्रमुख रहेंगे, परन्तु सेनाएँ भारत-संघ की सेनाओं का भाग होंगी। आन्तरिक व्यवस्था और सुरक्षा की दृष्टि से भारत सरकार उनकी शक्ति और संख्या निर्धारित करेगी। प्रत्येक रियासत अथवा संघ में राजप्रमुख की सलाह से भारत सरकार अपना सैनिक अधिकारी (जनरल आफिसर कमांडिंग) नियुक्त करेगी। रियासती सेनाओं का स्तर भारतीय सेनाओं के समान होगा।

चौथा अध्याय

संविधान-निर्माण

इतिहास में यह पहला अवसर है जब यह सारा देश, काश्मीर से कन्याकुमारी तक और काठियावाड़ और कच्छ से कोकोनाड़ा और कामरूप तक एक संविधान के शासन-सूत्र में बँधकर बत्तीस करोड़ मनुष्यों के सुख-दुःख की जिम्मेदारी अपने हाथों में ले रहा है और उसके सब कारोबार सम्भालने जा रहा है; इस देश में आज से न कोई राजा रहा और न कोई प्रजा, या तो सबके सब राजा हैं, या सब प्रजा हैं।

—डा० राजेन्द्र प्रसाद

इस अध्याय में यह विचार करना है कि भारत का नया संविधान किस प्रकार बना, उसे बनाने वाली सभा का संगठन कैसा था और उसकी कार्य-पद्धति क्या रही। पहिले यह जान लें कि संविधान-सभा वास्तव में किसे कहते हैं और उसका क्या महत्व और उत्तरदायित्व होता है।

संविधान-सभा—संविधान-सभा उस सभा को कहते हैं, जो देश का (लिखित) शासन-विधान बनाने के लिए बुलायी जाती है। उस सभा में प्रायः जनता के चुने हुए प्रतिनिधि रहते हैं। संयुक्तराज्य-अमरीका, फ्रांस, जर्मनी तथा रूस में संविधान-सभा बुलाकर उसी के द्वारा संविधान तैयार कराया गया था। प्रजातंत्र में राजनैतिक सत्ता जनता के हाथ में निहित होती है। वही सब शासन-कार्य का संचालन करती है। उसी पर सब जिम्मे-दारी रहती है। अतः यह उचित समझा जाता है कि वही देश के लिए संविधान भी तैयार करे। जैसे शासन का कार्य प्रजा की ओर से उसके प्रति-निधि करते हैं, उसी तरह संविधान बनाने का कार्य भी प्रतिनिधियों द्वारा सम्पादित होता है। आज के युग में यदि किसी देश की जनता निरंकुशता,

तानाशाही अथवा पराधीनता से मुक्त होने के लिए आंदोलन करती है तो यह माँग भी उपस्थित करती है कि संविधान बनाने के लिए संविधान-सभा की योजना की जाय। भारत की ओर से भी ब्रिटिश अधिकारियों से यह माँग की गयी। उसी का फल है कि भारत को स्वाधीनता देने की तैयारी करने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों ने संविधान-सभा का संगठन कर दिया।

संविधान-सभा का संगठन—ब्रिटिश मंत्रिमिशन की मई १९४६ की योज़ना के अनुसार भारत की संविधान-सभा बनाने का निश्चय किया गया। इसके सदस्यों के चुनाव की पद्धति यह थी :—

१—मोटे तौर पर प्रत्येक प्रान्त का उसकी जनसंख्या के आधार पर दस लाख पीछे १ प्रतिनिधि रहे।

२—सब प्रतिनिधियों के स्थान, प्रान्तों में उनकी मुख्य जातियों की जनसंख्या के अनुपात से बाँट दिये जायँ।

३—प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक जाति के निर्धारित प्रतिनिधि असेम्बली अर्थात् विधान-सभा में उस जाति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हो।

४—इस कार्य के लिए भारत की केवल तीन मुख्य जातियाँ स्वीकार की जायँ :—साधारण, मुस्लिम तथा सिक्ख। असेम्बलियों के इन जातियों के सदस्य सानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर अपने-अपने प्रतिनिधि चुनें।

५—ब्रिटिश भारत के विविध प्रांतों के कुल प्रतिनिधियों की संख्या २९६ हो।

६—रियासतों को सानुपातिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो तथा ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की संख्या के आधार पर उनके ९३ से अधिक प्रतिनिधि न हों।

इस योजना के अनुसार संविधान-सभा के लिये प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ। प्रान्तीय विधान-सभाओं ने इस चुनाव में निर्वाचन-क्षेत्र का काम किया। इस प्रकार चुनाव परोक्ष रहा और उसमें पृथक् निर्वाचन का ही सिद्धान्त माना गया।* प्रत्येक सदस्य को अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र से,

* वास्तव में चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होना चाहिए था, परन्तु संविधान बनने का कार्य जल्दी हो, इसलिए सिद्धान्त की उपेक्षा करके व्यावहारिकता का ध्यान रखा गया।

जितने प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित थी, उतने मत देने का अधिकार था। कांग्रेस की इच्छा के अनुसार संविधान-सभा में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, विधानवेत्ता, इतिहास-ज्ञाता, दार्शनिक, समाजशास्त्री आदि सभी प्रकार के व्यक्ति लिये गये, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सभी आदमी संविधान-निर्माण के लिये यथेष्ट योग्य और कर्त्तव्य-परायण थे। ब्रिटिश भारत में, विविध दलों की दृष्टि से, कुल २९६ प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार रही :—कांग्रेस २०८, मुस्लिम लीग ७३, स्वतंत्र साधारण ८, स्वतंत्र मुसलमान ३, सिक्ख ४।

देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या ९३ ठहरायी गयी थी। ये प्रतिनिधि राजाओं और कार्यकर्ताओं के विचार-विनिमय करके लिये गये। इस प्रकार तत्कालीन योजना के अनुभार भारतीय संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या ३८९ थी।

पीछे पाकिस्तान राज्य का निर्माण होने से उसके प्रांतों के ६९ सदस्य अलग हो गये। उनका हिसाब इस प्रकार था :—मुस्लिम ५० साधारण १७, सिक्ख २।

संविधान सभा का उद्घाटन ९ दिसम्बर १९४६ को हुआ। मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों ने उसमें कोई भाग नहीं लिया। पार्लियामेंटरी पद्धति के सुप्रसिद्ध ज्ञाता डा० सच्चिदानन्द सिन्हा उसके अस्थायी अध्यक्ष चुने गये; पीछे डा० राजेन्द्रप्रसाद स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

उद्देश्य-प्रस्ताव—संविधान-सभा का पहला अधिवेशन २३ दिसम्बर १९४६ को समाप्त हुआ। इसमें कार्यप्रणाली के नियमादि तैयार करने के लिए समिति की नियुक्ति के अतिरिक्त उद्देश्य-प्रस्ताव पर विचार हुआ। इसे उपस्थित करते हुए श्री नेहरू ने कहा था कि इसमें सिद्धांत की बुनियादी बातें बतायी गयी हैं। यह प्रस्ताव होते हुए भी प्रस्ताव से बहुत ज्यादा है। यह एक घोषणा है, एक दृढ़ निश्चय है, एक प्रतिज्ञा और दायित्व है और हम सब के लिए तो यह एक व्रत है। हम इस प्रस्ताव द्वारा संसार को यह बतलाना चाहते हैं कि हमने इतने दिनों से किस बात की अभिलाषा कर रखी

थी, हमारा स्वप्न क्या था। यह प्रस्ताव जिसे हम भारतीय स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र कह सकते हैं, इस प्रकार है :—

यह संविधान-सभा भारत को पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र जनतंत्र घोषित करने और उसके भावी शासन के लिए एक संविधान बनाने का गम्भीर और दृढ़ निश्चय करती है।

इस शासन-विधान में उन सभी प्रदेशों का एक संघ रहेगा, जो अब ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के अन्तर्गत हैं, तथा उनके वाहर भी हैं, और जो आगे स्वतन्त्र भारत में सम्मिलित होना चाहते हैं। और

इस संविधान में उपर्युक्त सभी प्रदेशों को, जिनकी वर्तमान सीमा चाहे कायम रहे या संविधान सभा और पीछे संविधान के नियमानुसार बने या बदले, एक स्वाधीन इकाई या प्रदेश का दर्जा मिलेगा व रहेगा। उन्हें वे सब अवशिष्ट अधिकार प्राप्त होंगे, जो संघ को नहीं सौंपे जायँगे, और वे शासन तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सभी अधिकारों को बरतेंगे, सिवाय उन कार्यों और अधिकारों के जो संघ को सौंपे जाएँ, जो संघ में स्वभावतः निहित या समाविष्ट हों, या जो उससे निकलते हों। और

इस संविधान में पूर्ण सत्ताधारी स्वतन्त्र भारत तथा उसके अंगभूत प्रदेशों और शासन के सभी अङ्गों की सारी शक्ति और सत्ता जनता द्वारा प्राप्त होगी। तथा

इस संविधान द्वारा भारत के सभी लोगों को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, वैयक्तिक स्थिति व सुविधा का, तथा मानवी समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों के प्रकट करने की, विश्वास व धर्म की, काम धंधों की, संघ बनाने व काम करने की स्वतन्त्रता के अधिकार रहेंगे और माने जाएँगे।

इस संविधान में अल्पसंख्यकों के लिए, पिछड़े हुए व कबायली प्रदेशों के लिए तथा दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए काफी संरक्षण रहेंगे। और

इस संविधान के द्वारा इस जनतन्त्र के क्षेत्र की आन्तरिक एकता रक्षित रहेगी और जल, थल और हवा पर उसके सब अधिकार, न्याय और सभ्य राष्ट्रों के नियमों के अनुसार रक्षित होंगे। और

यह देश संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शान्ति तथा मानवजाति का हित-साधन करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।

इस प्रस्ताव का चारों ओर से समर्थन हुआ किंतु लीग वालों का सहयोग प्राप्त होने की दृष्टि से उस समय इस पर विचार करना स्थगित किया गया। पीछे यह २२ जनवरी १९४७ को सर्वसम्मति से पास हुआ। यह प्रस्ताव संविधान का अङ्ग नहीं बना, किंतु इसका सार भाग उसकी प्रस्तावना में रखा गया है, यों सारा संविधान उसी से प्रेरित होकर बनाया गया है।

उपसमितियों की नियुक्ति—संविधान-सभा का दूसरा अधिवेशन २० जनवरी १९४७ ई० से ५ दिन के लिए हुआ। एक कार्य-संचालन-समिति (स्टीयरिंग कमेटी) नियुक्त की गयी। सरदार पटेल की अध्यक्षता में एक सलाहकार-समिति बनायी गयी। यह सबसे बड़ी समिति थी। इसने चार उपसमितियाँ नियुक्त कीं—(१) अल्पसंख्यक-उपसमिति, श्री एच० सी० मुकर्जी की अध्यक्षता में; (२) मूल अधिकार उपसमिति, आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में; (३) उत्तर-पूर्वी सीमा (आसाम) आदिम जाति तथा पृथक् प्रदेश उपसमिति, श्री गोपीनाथ बारदोलोई की अध्यक्षता में, (४) आदिम जाति और पृथक् प्रदेश उपसमिति, श्री ठक्कर बापा की अध्यक्षता में। सभा का तीसरा अधिवेशन २८ अप्रैल १९४७ को प्रारम्भ हुआ। यह भी पाँच दिन तक रहा। इस अधिवेशन में बड़ौदा, बीकानेर, कोचीन, पटियाला, जयपुर, रीवा तथा भावनगर के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए।

संविधान-सभा ने पहले ही अधिवेशन में श्री नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति नरेन्द्रमण्डल की वार्ता-समिति से परामर्श करने के लिए बना दी थी

ताकि यह तय हो जाए कि देशी राज्यों के लिए नियत ६३ जगहों का बँटवारा किस प्रकार हो। उसी का परिणाम था कि संविधान सभा में देशी राज्यों के भी प्रतिनिधि सम्मिलित होने लगे। सङ्घ संविधान के सिद्धांत स्थिर करने के लिए एक समिति नेहरू जी की अध्यक्षता में नियुक्त की गयी। इसी प्रकार एक समिति प्रांतीय विधान के सिद्धांतों के सम्बन्धमें बनायी गयी, जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल नियुक्त किये गये। संविधान-सभा के अध्यक्ष ने यह घोषित किया कि ज्यों-ज्यों संविधान बनता जाएगा, उसका राष्ट्रभाषा में अनुवाद भी होता जाएगा।

स्वतन्त्रता-विधान का प्रभाव—संविधान सभा का अगला (चौथा) अधिवेशन जो १४ जुलाई १९४७ को प्रारम्भ हुआ, बड़ा महत्व-पूर्ण था। विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार किया गया और संविधान की रूप-रेखा स्थिर की गयी। इसी अधिवेशन-काल में भारत स्वाधीन हुआ, संविधान-सभा के हाथ में सर्वोच्च सत्ता आ गयी। उसने अपना राष्ट्रीय झण्डा भी स्थिर किया। यह बात भी उल्लेखनीय है कि १५ अगस्त को जब भारतीय स्वतंत्रता-विधान अमल में आया तो भारत के उन भागों के प्रतिनिधि, जो पाकिस्तान में चले गये, संविधान-सभा से अलग हो गये। इससे संविधान-सभा के अधिकार पर जो बंधन थे, वे सब दूर हो गये। अब संविधान-सभा को भारतीय विधान-मण्डल अर्थात् पार्लियामेंट के रूप में भी काम करने का अधिकार प्राप्त हो गया; कानून बनाने के काम करने के लिए इसका अधिवेशन अलग किया जाता था, उसका अध्यक्ष (स्पीकर) दूसरा व्यक्ति होता था।

प्रारूप (मसविदा) रचना—संविधान-सभा के चौथे अधिवेशन में ही संविधान का मसविदा बनाने के लिए सात सज्जनों की एक कमेटी बनायी गयी। इसके अध्यक्ष डाक्टर भीमराव अम्बेडकर (कानून-मंत्री) निर्वाचित हुए। संविधान का हिंदी अनुवाद करने के लिए श्री घनश्याम सिंह गुप्त (अध्यक्ष, मध्यप्रदेश विधान-सभा) के सभापतित्व में तथा हिंदुस्तानी अनुवाद करने के लिए पंडित सुन्दरलाल जी के सभापतित्व में एक-एक अनुवाद कमेटी नियुक्त की गयी। मसविदा फरवरी १९४८ में संविधान सभा के अध्यक्ष की सेवा में उपस्थित किया गया। यह २५ फरवरी को प्रकाशित हुआ।

भाषावार-प्रांत-कमीशन—प्रारूप समिति ने भाषावार प्रांत कमीशन नियुक्त करने की सिफारिश की। संविधान-सभा में भी इसकी माँग की गयी थी। अतः जुलाई १९४८ में श्री एस० के० दर की अध्यक्षता में यह कमीशन नियुक्त किया गया। डा० पन्नालाल और श्री जगतनारायण लाल इसके सदस्य थे। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट (दिसम्बर १९४८) में स्वीकार किया कि देश में भाषा के आधार पर प्रांतों की पुनर्रचना की जाने की प्रबल माँग है। परन्तु भारतीय राष्ट्र की एकता को शक्तिशाली बनाये रखने की आवश्यकता प्रमुख है; प्रत्येक माँग का इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए। कमीशन का मत है कि भाषाओं के आधार पर प्रांतों की पुनर्रचना होने से देश की एकता को आघात पहुँचेगा।

संविधान-निर्माण की समायाएँ, एकीकरण—अंग्रेजों ने भारत में अपने स्वार्थ के लिए साढ़े पाँच सौ से अधिक जुदा-जुदा रियासतें कायम करके इस देश का बुरी तरह अङ्ग-भङ्ग कर रखा था। इस प्रकार अब से पहले जितने शासन-विधान बने थे वे भारत के केवल 'ब्रिटिश भारत' कहे जाने वाले भाग पर लागू होते थे, रियासतों पर नहीं। भारत से हटते समय भी अंग्रेजों ने इन सैकड़ों 'राज्यों' को नयी भारत सरकार के अधीन न करके केन्द्रीय सरकार को बहुत निर्बल अवस्था में छोड़ा। सरदार पटेल की राजनैतिक कुशलता ने ही इन्हें भारतीय सङ्घ में मिलाया। तो भी संविधान-निर्माताओं के सामने यह समस्या थी कि जल्दी-से-जल्दी इनके शासन-प्रबंध में जनता का यथेष्ट प्रतिनिधित्व हो और ये भाग प्रांतों के स्तर पर आ जाएँ। नया संविधान देश के दोनों प्रांतों और देशी राज्यों पर लागू होगा; दोनों भागों को अब राज्य ही कहा जायगा।

साम्प्रदायिकता—दूसरी महत्वपूर्ण समस्या सांप्रदायिकता की थी। इसी के फल-स्वरूप भारत का विभाजन हुआ था। यद्यपि देश के विभाजन से सांप्रदायिक समस्या का कुछ हल हो गया था, फिर भी ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जिससे कि इस समस्या की वृद्धि न हो। सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचन होना ही इस समस्या का मूलभूत कारण था, जिससे हमारे

सामाजिक जीवन को विषाक्त बना रखा था। इसलिए नये विधान-मंडलों में सांप्रदायिक आधार पर स्थान सुरक्षित रखने की प्रथा का अन्त कर दिया गया; केवल अछूतों और अनुसूचित जातियों के लिए संविधान लागू होने से १० वर्ष तक स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गयी।

अस्पृश्य और उपेक्षित जातियाँ—अश्पृश्यता बहुत समय से भारतीय समाज का कलंक बनी हुई थी। भारत के लाखों नहीं, करोड़ों आदमी अपने ही देश-बन्धुओं की निगाह में अपमानित थे और रोजमर्रा की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति में पग-पग पर बाधाओं का अनुभव करने के कारण विकास के साधनों से वञ्चित थे। संविधान ने अस्पृश्यता का अन्त करके एक महान कार्य कर दिया।

'अस्पृश्य' माने जाने वाले लोगों के अतिरिक्त; भारत में दो ढाई करोड़ व्यक्ति आदिम जातियों के थे। इनकी अंग्रेजी राज्य में घोर उपेक्षा हुई; यहाँ तक कि राष्ट्रीय सुधारकों को भी उनकी सेवा-सहायता करने से रोका गया। नये संविधान ने इनकी उन्नति और विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

संविधान की स्वीकृति और श्रीगणेश—संविधान-सभा के अधिवेशन समय-समय पर होते रहे। आखिर संविधान की एक-एक धारा तथा उसके खंडों पर विशद रूप से विचार तथा आवश्यक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन होकर वह २६ नवम्बर १९४९ को अन्तिम रूप से स्वीकृत हुआ। इसमें ३९५ धाराएँ और ८ परिशिष्ट हैं। संविधान को २६ जनवरी १९५० से अमल में लाने का निश्चय किया गया। यह तारीख इसलिए निश्चित की गयी कि बीस वर्ष पहले इसी तारीख को, महात्मा गांधी के नेतृत्व में, भारत की जनता ने अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प किया था और सन् १९३० से वह प्रति वर्ष २६ जनवरी को ही स्वाधीनता-दिवस मनाती आ रही थी।

अस्तु, यद्यपि व्यवहार-रूप में भारत १५ अगस्त १९४७ को ही अपने भाग्य का विधाता बन गया था, कानूनी रूप में वह २६ जनवरी १९५० ई० से पूर्ण स्वतंत्र हुआ है। यहाँ गण-राज्य की स्थापना हुई है। इस तारीख से

इङ्गलैंड के राजा की सर्वोपरि सत्ता समाप्त हो गयी; उसकी ओर से नियुक्त होने वाले गवर्नर-जनरलों की इतिश्री हो गयी। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति नियुक्त हुए।

विशेष वक्तव्य—संविधान बनाने में संविधान सभा ने ११ अधिवेशनों में भाग लिया; वह कुल १६५ दिन बैठी, जिसमें ११४ दिन संविधान के वाचन और उस पर विवाद में खर्च हुए। कुल ७६३५ संशोधन आये, जिनमें २४७३ विचारार्थ उपस्थित हुए। संविधान-सभा में कुल ३०८ सदस्य थे। भारत का संपूर्ण संविधान बनने में ६४ लाख रुपये और तीन साल का समय लगा।

पाँचवाँ अध्याय

संविधान का स्वरूप और विशेषताएँ

भारत प्रभुत्वपूर्ण होगा, यह स्वधीन होगा और गणतन्त्र होगा।

—जवाहरलाल नेहरू

(१) संविधान का स्वरूप

संविधान का लक्ष्य—संविधान का स्वरूप जानने के लिए पहले उसका लक्ष्य जान लें, इस पर उसकी प्रस्तावना से अच्छा प्रकाश पड़ता है। पहले बताया जा चुका है कि संविधान-निर्माण के समय जो उद्देश्य-प्रस्ताव उपस्थित किया गया था, उसका ही सार-रूप यह प्रस्तावना है। इसमें कहा गया है :—

"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए

"तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए

"तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

"दृढ़ संकल्प होकर अपनी संविधान सभा में ता० २६ नवम्बर १९४९ (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सम्वत् २००६ विक्रमी) के दिन आज की इस कार्रवाई से इस संविधान को अपनाते हैं, कानून बनाते हैं, और स्वयं अपने को देते हैं।"

संविधान भारत को 'सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न', 'लोकतंत्रात्मक' और 'गणराज्य' घोषित करता है। भारत सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न तो इस कारण है कि संविधान

इस के ऊपर किसी भी राष्ट्र का वैधानिक प्रभुत्व स्वीकार नहीं करता। भारत गण-राज्य इसलिए है कि इसका प्रधान, वंशानुगत क्रम से कोई सम्राट् या राजा न होकर निर्वाचन द्वारा राष्ट्रपति होगा, और इसके लोकतन्त्रात्मक होने का प्रमाण यही है कि लोकतन्त्र के आधार-भूत सिद्धान्तों—स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय आदि—का संविधान की प्रस्तावना में प्रमुख स्थान है और किसी भी प्रकार की आर्थिक अथवा सामाजिक व्यवस्था को लादने का प्रयत्न नहीं किया गया है। इन सिद्धान्तों की प्राप्ति राज्य का उद्देश्य बतलाया गया है। लोकतन्त्र के विरोधी तत्वों—सांप्रदायिकता, असमानता, छुआछूत आदि—का अन्त कर दिया है। संविधान में वयस्क मताधिकार, नागरिकों के मूल अधिकारों और स्वतन्त्र न्यायपालिका को स्थान देकर लोकतन्त्रात्मक प्रणाली को सफल और चिरस्थायी बनाने का प्रयास किया गया है।

संविधान एकात्मक है या संघात्मक?—संविधान के विचार से भारत को 'फेडरेशन' (संघात्मक राज्य) कहा जाय या 'यूनियन' (एकात्मक राज्य)? संघात्मक और एकात्मक राज्य में मुख्य भेद यह होता है कि सङ्घात्मक राज्य में शासन तथा कानून-निर्माण सम्बन्धी सब अधिकार केन्द्र और इकाइयों में बँटे होते हैं, और केन्द्र और इकाइयाँ अपने-अपने निर्धारित क्षेत्रों में स्वतन्त्र होती हैं। यदि कभी सङ्घ-सरकार और उसकी किसी इकाई की सरकार में कोई मत-भेद उपस्थित हो तो उसका निपटारा सङ्घ-न्यायालय करता है। इसके विपरीत, एकात्मक शासनपद्धति में सब शासन-कार्य केन्द्र से होता है; प्रांतीय सरकारों या स्थानीय संस्थाओं को जो अधिकार दिये जाते हैं, वे केवल सुभीते की दृष्टि से; केन्द्रीय सरकार जब चाहे, उन्हें वापिस ले सकती है। इस शासनपद्धति में एक केन्द्रीय सरकार, एक केन्द्रीय विधान-मण्डल और एक केन्द्रीय न्यायालय की शक्ति प्रमुख होती है। प्रांतीय या स्थानीय संस्थाएँ इनके अधीन तथा इनके नियंत्रण में काम करती हैं।

वाह्य दृष्टि से संघात्मक—यद्यपि भारतीय संविधान में फेडरेशन शब्द का उपयोग न होकर 'यूनियन' का उपयोग हुआ है,* उस पर विचार

---

* संविधान के हिन्दी के सरकारी प्रकाशन में 'यूनियन' का अनुवाद सङ्घ किया गया है।

करने से उसे वाह्य दृष्टि से सङ्घात्मक ही कहना अधिक उपयुक्त होगा। बात यह है कि यहाँ सङ्घ और राज्यों की सरकारें अलग-अलग हैं। दोनों के अधिकार अलग-अलग बँटे हुए हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में दोनों ही स्वतंत्र हैं। दोनों के अधिकारों को तीन सूचियों के अंतर्गत स्पष्ट रूप से बांट दिया गया है। सङ्घ और राज्यों के अधिकारों का अतिक्रमण करनेवाले कानून अवैध हैं, और सङ्घ तथा राज्यों की अनुमति के बगैर संविधान में परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। उच्चतम न्यायालय की स्थापना भी सङ्घ और राज्यों के विवादों का निर्णय करने के लिए को गयी है।

भारत में संविधान का सङ्घात्मक स्वरूप उपयोगी समझे जाने के कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) देश की विशालता। भारत एक विशाल देश है; जनसंख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से इसे कभी-कभी महाद्वीप कह दिया जाता है। इतने बड़े देश का शासन-प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार द्वारा कुशलता-पूर्वक और सुचारु रूप से होना सम्भव न था।

(२) विभिन्न हितों की रक्षा। भारत में प्रादेशिक विभिन्नता पर्याप्त मात्रा में है। बहुत से राज्यों की अलग-अलग समस्याएँ और अलग-अलग हित हैं। एकात्मक सरकार के द्वारा इतने हितों का सामंजस्य बिठाना और समस्याओं का हल निकालना सम्भव न था। स्थानीय प्रश्नों का हल राज्यों की ही सरकारें सुचारु रूप से कर सकती हैं।

(३) सांस्कृतिक विकास और भाषा की उन्नति। देश के विभिन्न भागों में भाषा, साहित्य, सङ्गीत तथा दूसरी कलाओं की उन्नति और सांस्कृतिक विकास के लिए जितना प्रयत्न और कार्य राज्यों की सरकारें कर सकती हैं, उतना केन्द्र द्वारा नहीं हो सकता; क्योंकि राज्यों की बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें केन्द्र भली भाँति नही समझ सकेगा और समझ भी जाय तो उचित व्यवस्था न कर सकेगा।

(४) लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण। बड़े देश के लिए सङ्घात्मक संविधान, एकात्मक संविधान की तुलना में, अधिक लोकतंत्रात्मक होता है। एकात्मक शासनपद्धति में सम्पूर्ण विषयों का निर्णय करने के लिए केन्द्र के ही प्रति-

निधि होते, अर्थात् समस्त विषयों का निर्णय लोक-सभा के सदस्य करते, जहाँ प्रत्येक सदस्य पाँच लाख से लेकर साढ़े सात लाख जनता का प्रतिनिधित्व करता है। [अब इसमें ऐसा संशोधन हो गया है कि लोकसभा के निर्वाचन-क्षेत्रों में मतदाताओं की न्यूनतम और उच्चतम संख्या क्रमशः साढ़े छः लाख और साढ़े आठ लाख कर दी जाए।] परन्तु सङ्घात्मक शासनपद्धति होने से यहाँ राज्यों की विधान सभाएँ हैं और उनमें राज्य-सूची के विषयों सम्बन्धी कानून बनाने के लिए लगभग एक-एक लाख व्यक्तियों पीछे एक-एक प्रतिनिधि होगा। इससे स्पष्ट है कि सङ्घात्मक संविधान जनता को शासन-प्रबन्ध में भाग लेने का अधिक अवसर प्रदान करता है। इसमें विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाने का अधिक अवसर मिलता है। भारत में ग्राम-पंचायतों को स्थानीय स्वराज्य की इकाई माना गया है।

भारत में संघ की स्थापना एकात्मक राज्य की स्थापना के बाद हुई है, जब कि संसार के अन्य सङ्घ-राज्यों में पहले कई अलग-अलग राज्य थे और उन्होंने मिल कर पीछे सङ्घ-राज्य स्थापित किया।

एकात्मक राज्य के गुणों का समावेश—ऊपर कहा गया है कि भारत की शासनपद्धति का स्वरूप सङ्घात्मक है परन्तु इसमें एकात्मक शासन-पद्धति के गुणों का भी समावेश है।

संघ और राज्यों—दोनों के लिए केवल एक संविधान। संयुक्तराज्य अमरीका आदि में राज्यों को संघ के अन्तर्गत रहते हुए अपना संविधान बनाने की स्वतन्त्रता है। वे उसमें समय-समय पर सुविधानुसार परिवर्तन भी कर सकते हैं। इसके विपरीत, भारत में समस्त राज्यों का संविधान एक ही संविधान-सभा के द्वारा बनाया गया है। राज्यों के विधान-मंडलों को उसमें संशोधन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है।

संघ राज्य की एकरूपता—संसार के संघीय शासनपद्धति वाले देशों की आंतरिक इकाइयों अर्थात् राज्यों अथवा प्रान्तों में कानून, दण्ड-विधि, नागरिक अधिकारों, नौकरियों और आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी विभिन्नताएँ हैं,

परन्तु भारतीय संविधान के इस भेद को निम्नलिखित व्यवस्थाओं द्वारा दूर कर दिया गया है :—

(१) समस्त संघ-राज्य में केवल एक नागरिकता,

[भारतीय संघ की नागरिकता अलग और उसकी विविध इकाइयों अर्थात् राज्यों की नागरिकता अलग न होकर, यहाँ सारे राष्ट्र की नागरिकता एक ही है; कोई राज्य अपने नागरिकों को कोई विशेष राजनैतिक, आर्थिक या व्यापारिक अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। यह स्पष्ट ही है कि इकहरी नागरिकता देश को शक्ति और एकता पदान करनेवाली होती है।]

(२) समस्त संघ राज्य में विधि (कानून), दंड-विधान तथा अर्थ सम्बन्धी मामलों में एकरूपता,

(३) सम्पूर्ण संघ राज्य में एक ही प्रकार की न्याय-व्यवस्था की स्थापना, और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की सब राज्यों में मान्यता।

(४) समस्त भारत के लिए अखिल भारतवर्षीय आधार पर राज्य की नौकरियाँ,

(५) सम्पूर्ण भारत के लिए एक (हिन्दी) ही राजभाषा।

(६) सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही निर्वाचन-आयोग की व्यवस्था जो केन्द्र तथा राज्यों के विधान-मंडलों का प्रबन्ध और देखरेख करे।

(७) सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही महा-लेखापरीक्षक की व्यवस्था, जो केन्द्र तथा राज्यों की अर्थव्यवस्था की देखरेख करे।

कानूनीपन और कठोरता की कमी—संघात्मक संविधान में, संघ-सरकार और राज्यों की सरकारों में अधिकारों का विभाजन होता है। इस विभाजन सम्बन्धी विवादों का निर्णय न्यायपालिका द्वारा किया जाता है (विधान-मंडलों द्वारा नहीं)। इससे संविधान में कानूनीपन बहुत हो जाता है। भारतीय संविधान में इसे कम करने के लिए संघ और राज्यों के कानून बनाये जाने के विषयों की दो सूचियों (संघ-सूची और राज्य-सूची) के अतिरिक्त एक समवर्ती सूची और बनायी गयी है, जिसके विषयों पर संसद भी कानून बना सकेगी, और राज्यों के विधान-मंडल भी। यह सूची काफी बड़ी है, इसमें ४७ विषय हैं।

प्रायः संघ-संविधान बहुत कठोर होता है, उसमें परिवर्तन साधारण रीति से नहीं हो पाता। भारतीय संविधान में संशोधन करने की पद्धति सरल रखी गयी है। इस पर विशेष प्रकाश आगे डाला जायगा।

सांसद (पार्लिमेंटरी) पद्धति—भारतीय संविधान के स्वरूप में, उसके संघात्मक होने के अतिरिक्त, दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ संघ में तथा उसके राज्यों में सांसद पद्धति की सरकारें स्थापित की गयी हैं। इस पद्धति के लक्षण ये होते है :—

(क) शासन सम्बन्धी सब कार्य प्रधान शासक (बादशाह या राष्ट्रपति) आदि के नाम से किया जाता है। वह वैधानिक शासक होता है; वास्तव में राज्य की कार्यकारिणी शक्ति उसमें निहित नहीं होती, उसे सब कार्य अपनी मन्त्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार करना होता है।

(ख) मन्त्री नाममात्र को प्रधान शासक के द्वारा चुने जाते हैं, परन्तु वे ऐसे ही व्यक्ति होते हैं, जिनका विधान-मंडल में बहुमत या सब से अधिक समर्थन होता है। मन्त्रिपरिषद अपने कार्य के लिए विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्री विधान-सभा के सदस्य होते हैं, और उसी समय तक अपने पद पर रह सकते हैं, जब तक उन्हें विधान-सभा का विश्वास प्राप्त हो। यदि किसी समय मन्त्रिपरिषद को यह अनुभव हो कि विधान-सभा का उस पर विश्वास नहीं है तो उसे त्याग-पत्र दे देना होता है।

(ग) मन्त्रिपरिषद का विधान-सभा के प्रति उत्तरदायित्व सामूहिक होता है। यदि किसी मन्त्री की किसी विषय पर विधान-सभा में हार हो जाय तो वह मन्त्रिपरिषद की हार होगी और उस दशा में सम्पूर्ण मन्त्रिपषिद को त्याग-पत्र देना होगा। किसी मन्त्री द्वारा उपस्थित किया हुआ प्रस्ताव समस्त मन्त्रिपरिषद का ही प्रस्ताव समझा जाता है, चाहे उस पर मन्त्रियों में आपस में विचार-विनिमय हुआ हो या न हुआ हो। सामूहिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत यह बात भी है कि यदि मन्त्रिपरिषद ने अपना कोई निश्चय कर लिया है तो समस्त मन्त्रियों को उसका समर्थन करना चाहिए। यदि कोई मन्त्री इस निर्णय से असंतुष्ट है तो उसे त्याग पत्र दे देना चाहिए।

(घ) प्रधान मन्त्री मन्त्रिपरिषद् का नेता होता है। नीति सम्बन्धी मामलों में उसका निर्णय सर्वमान्य होता है। मन्त्रिपरिषद की ओर से उसे कोई भी मत व्यक्त करने की स्वतन्त्रता होती है, और वह मत सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद का ही समझा जाता है।

सांसद सरकार खास कर इन सिद्धान्तों के आधार पर कार्य करती है :— बहुमत दल का शासन सब को मान्य होता है। अल्पमत वालों को बहुमत दल के निर्णय मान्य होते हैं; हाँ, उन्हें अधिकार है कि वे वैधानिक उपायों से बहुमत को अपने मत का समर्थक बनायें और अगले निर्वाचन में विजयी होकर पदारूढ़ हों अर्थात् अपनी सरकार का संगठन करें। नीति-विभिन्नता के आधार पर राज्य में अलग-अलग दलों का निर्माण होता है। शासन-सत्ता सदा किसी एक दल के हाथ न रहकर समय-समय पर हस्तान्तरित होती रहती है; हर समय वह उस दल में निहित रहती है, जिसका विधान-सभा सम्बन्धी अन्तिम निर्वाचन में बहुमत रहा हो।

[सांसद पद्धति के विरुद्ध, अध्यक्षात्मक पद्धति होती है। उसमें कार्य-पालिका पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होती है; वह अपने कार्यों के लिए विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। उसके अनुसार राज्य का प्रधान नाममात्र का शासक नहीं होता, उसके हाथ में वास्तविक शासन-शक्ति होती है।]

भारत में सांसद पद्धति की उपयुक्ता—भारतीय संविधान-निर्माताओं ने कई कारणों से सांसद पद्धति अपनायी। पहले तो यह कि इसी पद्धति से देश काफी परिचित है, उसे अन्य प्रकार की शासन-पद्धतियों का कोई विशेष अनुभव नहीं है। दूसरे सांसद सरकार ही विधान-मंडल और कार्य-पालिका में शान्ति की स्थापना करती है। तीसरे, इस पद्धति में उत्तरदायित्व अधिक है। इस उत्तरदायित्व का पालन सामयिक तथा दैनिक दोनों प्रकार से होता है। दैनिक उत्तरदायित्व का पालन संसद के सदस्यों द्वारा अविश्वास के प्रस्ताव, काम-रोको प्रस्ताव, प्रश्नों, भाषणों और वादविवाद के रूप में होता है। और, सामयिक उत्तरदायित्व का पालन प्रति पाँचवें वर्ष अथवा इससे पहले होता है।

(२) संविधान की विशेषताएँ

भारतीय संविधान-निर्माताओं ने अन्य राज्यों के संविधानों से सांसद पद्धति, संघात्मक संविधान, मूल अधिकार, और समवर्ती सूची आदि कई आवश्यक बातें ली हैं। इसलिए यहाँ के संविधान में अन्य किसी संविधान की अपेक्षा अधिक विशेषताएँ हैं। यहाँ उनमें से मुख्य-मुख्य पर प्रकाश डाला जाता है।

१—संविधान की विशालता—भारत का संविधान संसार के सब लिखित संविधानों से बड़ा है। इसकी विशालता का अनुमान तो इसी से लग सकता है कि जब संयुक्तराज्य अमरीका के संविधान में ७, केनाडा के संविधान में १४७, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८, और दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में १५३ अनुच्छेद (धाराएँ) है, भारतीय संविधान में ३६५ अनुच्छेद और ८ अनुसूची या परिशिष्ट हैं। इसके विशाल होने के कुछ कारण निम्नलिखित हैं—

क—भारतीय संविधान में संघ के शासन-यंत्र के साथ ही साथ राज्यों (इकाइयों) के शासन-यंत्र का भी समावेश है, और ये राज्य, जैसा कि आगे बताया जायगा, एक ही तरह के नहीं हैं।

ख—क़बायली और अनुसूचित दोनों प्रकार के निवासियों तथा पिछड़े लोगों के हित की व्यवस्था की गयी है।

ग—संविधान में नीति-निर्देशक तत्व तथा मूल अधिकारों का विवरण दिया गया है।

घ—कुछ धाराएँ अन्तर्कालीन व्यवस्था के लिए रखी गयी हैं।

च—संविधान द्वारा बनायी हुई विविध संस्थाओं की कार्य-प्रणाली के नियमों का भी संविधान में समावेश कर दिया गया है;-यह इसलिए कि जल्दी ही कुछ कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

तथापि यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान आवश्यकता से अधिक बड़ा है, और उसमें कुछ ऐसी बातों का भी समावेश है, जिनके

सम्बन्ध में संसद साधारण कानून बना सकती थी। फिर, जटिलता के कारण यह संविधान जन-साधारण की समझ के बाहर है।

२—संसद को सर्वोच्चता—संविधान के अनुसार यहाँ संसद को सर्वोच्च अधिकार है। केन्द्रीय कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिपरिषद उसके प्रति जिम्मेदार है, और उसके प्रतिकूल मतदान के कारण पदच्युत हो सकती है। इसके अतिरिक्त वैधानिक अधिकार संसद को ही प्राप्त है। वही संविधान में संशोधन कर सकती है। शासन अधिकारों का जो विभाजन है, उसे बदलने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को नहीं दिया गया। [राज्यों को संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है।]

३—शक्तिशाली केन्द्र—भारतीय संविधान की एक विशेषता यह है कि संघात्मक संविधान होते हुए भी शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गयी है। कुछ लोगों को इससे असन्तोष हो सकता है। पर स्वाधीनता की रक्षा के लिये ऐसा करना आवश्यक था, और एकता के बिना स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती। एकता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि संघ-सरकार का राज्यों पर नियन्त्रण रहे और संसद को राज्यों के विधान-मंडलों की अपेक्षा अधिक अधिकार हों। संविधान में जहाँ यह व्यवस्था है कि संसद अभियोग लगा कर और उसे प्रमाणित कर राष्ट्रपति को हटा सकती है, किसी राज्य की विधान-सभा गवर्नर को नहीं हटा सकती। गवर्नर केन्द्र का आदमी होगा, उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायगी; नियुक्ति (या बरखास्तगी) में लोक-प्रतिनिधियों का कुछ हाथ न होगा, यद्यपि गवर्नर को बहुत अधिकार दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त, केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए तीन अन्य उपाय काम में लाये गये हैं। प्रथम तो सङ्कट-काल में सङ्घ सरकार को राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। दूसरे, अवशिष्ट अधिकार सम्बन्धी विधि बनाने का अधिकार केन्द्रीय विधान मण्डल यानी संसद को है। तीसरे, समवर्ती सूची के अंतर्गत दिये हुए विषयों में प्राथमिकता और प्रधानता सङ्घ सरकार द्वारा निर्मित विधियों की दी गयी है। उपरोक्त तीन उपायों द्वारा केन्द्र को लगभग उतनी ही शक्ति प्रदान की गयी है, जितनी

केन्द्र को एकात्मक पद्धति की शासन-प्रणाली में होती। यही नहीं, संविधान में सङ्घ को अविभाज्य बना दिया है; किसी भी राज्य को सङ्घ से पृथक् हो जाने अथवा अपना संविधान स्वयं बना लेने का अधिकार नहीं है।

(४) **संकट काल में सङ्घ-शासन का एकात्मक रूप**—अन्य देशों के सङ्घीय संविधान सदैव सङ्घीय ही रहते हैं, कभी एकात्मक नहीं होते, परंतु भारतीय संविधान में यह बात नहीं है। यह संविधान आवश्यकतानुसार सङ्घीय तथा एकात्मक हो सकता है। यद्यपि भारतीय संविधान सङ्घ-शासन-पद्धति पर आधारित है, इसकी रचना इस प्रकार की गयी है कि सङ्कट-कालीन स्थिति में सारी सङ्घ-शासन-प्रणाली को एकात्मक किया जा सकता है। उस स्थिति में राष्ट्रपति असाधारण-अधिकार-सम्पन्न होता है, और राज्यों की आंतरिक स्वतंत्रता समाप्त कर सकता है। वह विधि (कानून) निर्माण तथा शासन सम्बंधी सारे कार्य स्वयं कर सकता है।

(५) **संशोधन की सरलता**—संविधान में संशोधन संसद ही कर सकती है। संशोधन की व्यवस्था सरल है, और वह यह है कि संशोधन के विधेयक संसद के किसी भी सदन में उपस्थित किया जा सकेगा। यदि यह विधेयक दोनों सदनों में कुल सदस्य-संख्या के बहुमत से, और उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से, पास हो जाय तो संविधान में संशोधन पास समझा जायगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि क और ख वर्ग के स्वायत्त राज्यों से सम्बंधित निम्नलिखित विषयों में कोई संशोधन करना हो तो ऐसे राज्यों के आधे से अधिक विधान-मण्डलों की स्वीकृति प्राप्त होने पर ही वह संशोधन राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जा सकेगा :—

(१) राष्ट्रपति का निर्वाचन,
(२) राष्ट्रपति के निर्वाचन की रीति,
(३) सङ्घ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार,
(४) क वर्ग के राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार,
(५) ग वर्ग से राज्यों में उच्च न्यायालय की स्थापना,

(६) सङ्घ की न्यायपालिका,
(७) राज्यों के उच्च न्यायालय,
(८) सङ्घ और राज्यों के विधायी सम्बंध,
(९) सङ्घ की, राज्य की, और समवर्ती सूची,
(१०) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व,
(११) संविधान में संशोधन-प्रक्रिया।

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया सङ्घीय शासनपद्धति के सिद्धांत के अनुसार है।

६—धर्म निरपेक्षता—भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गयी है। 'धर्म-निरपेक्ष' शब्द अंग्रेजी के 'सेक्यूलर' शब्द की जगह काम में लाया जाता है, जिसका अर्थ वास्तव में 'धर्म-रहित' या नास्तिक नहीं है, वरन् 'मत-रहित' या 'साम्प्रदायिक विचार रहित' है। अस्तु, धर्म-निरपेक्ष राज्य ऐसा राज्य नहीं है, जिसमें धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों को वहिष्कृत, अछूत या प्रतिगामी समझा जाय। यह सोचना भी ठीक नहीं है कि धर्म-निरपेक्ष राज्य में धर्म का अनादर होता है। ऐसे राज्य का मुख्य लक्षण ही यह है कि उसमें सब धर्मों का आदर होता है। हाँ, यह राज्य स्वयं किसी धर्म विशेष को प्रधानता अथवा सहायता प्रदान नहीं करेगा। उसकी दृष्टि में राज्य के समस्त नागरिक, चाहे वे किसी भी धर्म के मानने वाले हों, बराबर होंगे। धर्म आदि के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा संस्था को कोई सहायता प्रदान नहीं की जायगी।

स्मरण रहे कि धर्म-निरपेक्ष राज्य में अल्पसंख्यकों के लिए राज्य की ओर से कोई असुविधा नहीं होती, और उनसे समानता का व्यवहार होता है। पर इसका यह अर्थ भी नहीं कि उनके हितों के वास्ते बहुसंख्यकों के हितों का बलिदान किया जाय। भारतीय सविधान में पिछड़ी हुई और आदिम जातियों के वास्ते कुछ रियायतें की गयी हैं; यह इसलिए कि वे क्रमशः समाज के अन्य वर्गों के स्तर पर आजाएँ।

७—नागरिकों के मूल अधिकार—आधुनिक संविधानों में, नागरिकों के मूल अधिकारों का वर्णन संविधान का महत्वपूर्ण अङ्ग माना

जाता है। संसार के प्रायः सभी लिखित संविधानों में उनका वर्णन है। भारतीय संविधान में जो मूलाधिकार हैं, उनका आधार श्रेष्ठतर लोकतन्त्र की भावना ही है। उनके बारे में खुलासा एक अलग अध्याय में लिखा जाएगा।

८—राज्य के नीति-निर्देशक तत्व—संविधान में, राज्य की नीति का आधार क्या हो, इस पर प्रकाश डाला गया है। नीति निर्देशक तत्वों के पीछे कोई वैधानिक सत्ता नहीं है, इनको किसी न्यायालय द्वारा पालन नहीं कराया जा सकता; तथापि इनका अपना महत्व है। इनका विवेचन आगे किया जाएगा।

९—स्वतन्त्र न्यायपालिका आदि—भारतीय संविधान के अंतर्गत एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। उसके लिए यह व्यवस्था है :—

१—राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय और न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायपालिका के अधिकारियों के परामर्श से करेगा। कोई न्यायाधीश निर्धारित अवधि के पूर्व, संविधान में दी गयी व्यवस्था के अनुसार दुराचरण सिद्ध होने पर ही, हटाया जा सकेगा।

२—न्यायाधीशों का वेतन संविधान द्वारा निश्चित कर दिया गया है, उनके वेतन, पेन्शन, भत्तों तथा विशेष सुविधाओं को कार्यपालिका या विधान-मंडल द्वारा कम नहीं किया जा सकता।

३—उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को अपने कर्मचारियों की भर्ती तथा तत्सम्बन्धी नियमों के निर्माण करने का अधिकार है।

४—न्यायाधीशों को किसी न्यायालय में वकालत करने का अधिकार नहीं है।

५—उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के उन कार्यों के विषय में, जो उनके कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में होंगे, संसद तथा राज्य-विधान-मंडलों द्वारा विचार न हो सकेगा।

इस प्रकार संविधान ने न्यायपालिका को यिधान-मंडल या कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त रखने की चेष्टा की है।

संविधान के अन्तर्गत न्यायापालिका के अतिरिक्त कुछ अन्य स्वतन्त्र संस्थाएँ भी हैं। इनमें प्रधान तीन हैं :—

१—भारत का नियन्त्रक-महालेखा-परीक्षक

२—निर्वाचन-कमीशन

३—लोकसेवा-कमीशन

नियन्त्रक-महालेखा-परीक्षक का कार्य संघ-सरकार और राज्यों की सरकार की आय-व्यय जाँच करना होगा। निर्वाचन-कमीशन का कार्य निष्पक्ष निर्वाचन संपन्न करना होगा और लोक-सेवा कमीशन का कार्य देश के लिए श्रेष्ठ कर्मचारियों का चुनाव करना होगा। संविधान द्वारा इन तीनों संस्थाओं के स्वतन्त्र और निष्पक्ष रहने की पूर्ण व्यवस्था की गयी है।

विशेष वक्तव्य ; राष्ट्र-मंडल की सदस्यता—भारत सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न और लोकतन्त्रात्मक गणराज्य होते हुए भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य है। यह बात सिद्धांत से ठीक नहीं जचती; कारण गण-राज्य में राजा का कोई स्थान नहीं होता और राष्ट्रमण्डल का प्रधान (इङ्गलैण्ड का) राजा है। हाँ, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के कारण भारत की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। राजा को राष्ट्रमण्डल सम्बन्धी कोई कार्य नहीं करना होता, भारत के संविधान से तो उसका कोई सम्बन्ध ही नही है। भारत के लिए राजा एक चिन्ह मात्र है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में जैसा चाहे अपना स्वतन्त्र मत दे सकता है; वह किसी बात में इङ्गलैण्ड आदि का समर्थन करने को बाध्य नहीं है। उसकी ब्रिटिश मुकुट या ताज के प्रति भक्ति नहीं है। वह जब चाहे राष्ट्रमण्डल की सदस्यता छोड़ सकता है।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के कारण इङ्गलैण्ड में रहने वाले भारतीय नागरिकों की कानूनी स्थिति और सुविधाएँ वही रहेंगी जो उन्हें पहले प्राप्त थीं। यही बात भारत में रहने वाले ब्रिटिश नागरिकों के सम्बन्ध में है। भारत को कुछ राजनैतिक और आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो सकते हैं। पर इन बातों का वास्तव में विशेष महत्व नहीं। अंतर्राष्ट्रीय गुटबन्दी के इस युग में भारत की यह सदस्यता सूचित करती है कि भारत का झुकाव—कुछ थोड़ा सा ही सही—किधर है।

संघ-शासन के स्वरूप का नक्शा—भारतीय शासन का वर्तमान स्वरूप नक्शे में इस प्रकार दिखाया जा सकता है (अगला पृष्ठ देखिए) :—

नये संविधान के अनुसार शासनपद्धति (केन्द्रीय)
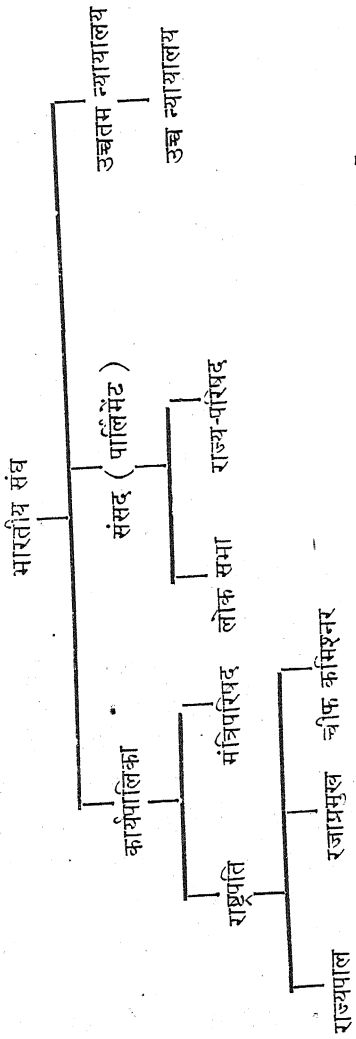
[संघ के राज्यों का शासन-तन्त्र आगे अलग नक्शे में दिखाया गया है ।]

छठा अध्याय

भारतीय नागरिकता

किसी स्वतन्त्र राष्ट्र का नागरिक होना गौरव की बात है। नागरिकता स्वयं एक अधिकार है, जिस पर नागरिक के दूसरे अधिकार निर्भर होते हैं।

—राममूर्ति एम० ए०

अगले अध्याय में हम इस बात का विचार करेंगे कि संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को क्या-क्या मूल अधिकार प्राप्त हैं। उन अधिकारों का आधार भारतीय नागरिकता है। इसलिए पहले यह जान लेना चाहिए कि भारतीय नागरिक कौन-कौन व्यक्ति सकते हैं; तथा कौन-कौन व्यक्ति नहीं हैं, अथवा नहीं हो सकते।

भारतीय नागरिक कौन हैं ?—साधारणतया जो लोग किसी देश में रहते आये हैं, वे वहाँ के नागरिक माने जाते हैं। तथापि देश में कुछ आदमी भिन्न-भिन्न समय से बाहर के आये हुए होते हैं, तथा देश के कुछ आदमी विदेशों में गये हुए होते हैं। राज्य में इन लोगों की स्थिति निर्धारित करने तथा इनकी राज्य के निवासियों से न्यूनाधिक भिन्नता दर्शाने के लिए कुछ नियमों का होना आवश्यक है। भारतीय संविधान में इस विषय पर प्रकाश नहीं डाला गया कि जो व्यक्ति भारतीय नागरिक नहीं है, वह यहाँ की नागरिकता कैसे प्राप्त कर सकता है, अथवा किन दशाओं में भारतीय नागरिक अपनी नागरिकता से वंचित किया जा सकता है। इन विषयों के आवश्यक कानून बनाने का अधिकार संसद या पार्लिमेंट को दिया गया है।

संविधान में केवल यह बताया गया है कि भारतीय नागरिकों के तीन वर्ग होंगे :—

१—भारत के निवासी। संविधान लागू होने के दिन (२६ जनवरी, १९५०) से भारत में निवास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, अगर (क) उसने भारत में जन्म लिया है, या (ख) उसके माता या पिता भारतीय भूमि में पैदा हुए हैं, या (ग) संविधान लागू होने के पाँच वर्ष पहले से वह भारत में रहा हो और उसने किसी विदेशी राष्ट्र की नागरिकता न अपनाली हो, भारत का नागरिक माना जाएगा।

इस प्रकार भारतीय नागरिकता का अधिकार त्रिमुखी अर्थात् जन्म, वंश तथा निवास है। [संयुक्तराज्य अमरीका में नागरिकता का आधार केवल जन्म है।]

वे लोग जो पाकिस्तान से भारत में आये हैं। इन्हें दो श्रेणियों में बाँटा गया है :—(क) वे जो १९ जुलाई १९४८ से पूर्व भारत में आये। (ख) वे जो १९ जुलाई १९४८ के पश्चात् भारत में आये।

जो लोग १९ जुलाई १९४८ से पूर्व भारत में आये, वे संविधान लागू होने के समय नागरिक माने जायँगे, बशर्ते कि—(अ) उनका या उनके माता या पिता अथवा उनके पितामह या पितामही का जन्म अविभाजित भारत में हुआ हो, (जैसा सन् १९३५ के शासन-विधान में दिया है), और (आ) आवास की तिथि से वे साधारणतः भारतीय प्रदेश में रह रहे हों।

जो लोग १९ जुलाई १९४८ के पश्चात् भारत में आये हैं, वे संविधान लागू होने के समय भारत के नागरिक माने जायँगे, बशर्ते कि—(क) उनका या उनके माता या पिता अथवा उनके पितामह या मातामह का जन्म अविभाजित भारत में हुआ हो, और (ख) उनका नाम भारत में २६ जनवरी १९५० से पूर्व भारत सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा रजिस्टर कर लिया गया हो।

३—वे लोग जो भारत से बाहर विदेशों में रह रहे हैं। वे भारत के नागरिक तब समझे जायँगे जब कि वे निम्नलिखित शर्तें पूरी करते हों :—

(अ) उनका या उनके माता या पिता का अथवा उनके पितामह या पितामही का जन्म अविभाजित भारत में हुआ हो। और

(आ) यदि उन्होंने उस देश में भारत के राजदूत को समुचित रीति से आवेदन-पत्र देकर नागरिक बनने की प्रार्थना २६ जनवरी १९५० या इससे बाद में की हो और उन्हें भारतीय नागरिक रजिस्टर कर लिया गया हो—

नागरिकता पर प्रतिबन्ध—निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति भारत के नागरिक नहीं माने जायँगे।

(क) जो व्यक्ति भारतीय प्रदेश से १ मार्च १९४७ के बाद पाकिस्तान के प्रदेश में चले गये हों। किंतु यह शर्त उन व्यक्तियों के लिए लागू नहीं होगी, जो पाकिस्तान के प्रदेश में इस प्रकार चले जाने पर फिर बसने के लिए भारत सरकार द्वारा प्रदान किये हुए पुनर्वास-अनुमति पत्र प्राप्त करके भारत में आये हैं। ऐसे व्यक्तियों को १९ जुलाई १९४८ के बाद आया हुआ ही समझा जाएगा।

(ख) ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त कर ली हो।

उपर्युक्त शर्तों को पूरी करते हुए जो व्यक्ति भारतीय नागरिक हैं, वे संसद द्वारा नागरिकता सम्बंधी अन्य नियमों के निर्माण होने पर इसी प्रकार नागरिक बने रहेंगे।

संसद को संविधान में नागरिकता, उसकी प्राप्ति तथा अन्त कर देने के लिए विधि बनाने की पूर्ण शक्ति प्रदान की गयी है। ऊपर बतायी हुई सारी व्यवस्थाएँ तथा शर्तें संसद की इस शक्ति को तनिक भी मर्यादित नहीं करतीं।

नागरिकता की व्याख्या करते समय भारत के विभाजन के फलस्वरूप जो जनसंख्या की अदला-बदली हुई, उसका पर्याप्त ध्यान रखा गया है। इससे इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है कि पाकिस्तान से जो शरणार्थी यहाँ आये हैं और यहाँ ही बसना चाहते हैं, उन्हें, भारतीय नागरिकता प्राप्त हो जाए। जो मुसलमान यहाँ से एक बार पाकिस्तान जाकर फिर लौटे हैं, उन्हें भी भारतीय नागरिकता प्रदान करने से वंचित नहीं किया गया है।

नागरिकता सम्बन्धी विविध दृष्टिकोण—नागरिकता के सम्बन्ध में विविध विचारकों के अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं। संविधान सभा में नागरिकता सम्बन्धी वाद-विवाद का मुख्य विषय भारत-विभाजन के बाद पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों का तथा समुद्र-पार रहने वाले बहुत से भारतीयों का प्रश्न था। पं० ठाकुरदास भार्गव ने भारतीय नागरिकता सम्बन्धी इन धाराओं की कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने शरणार्थियों का दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा कि "मैं चाहता हूँ कि किसी भी व्यक्ति को, जो शरणार्थी के रूप में यहाँ आया है, भारतीय नागरिकता प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसके विपरीत, जो अपनी इच्छा से यह नारा लगाते हुए भारत छोड़कर पाकिस्तान गये कि 'हँसकर लिया है पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिंदुस्तान' उनको इस देश के नागरिक बनने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।"

डा० पंजाबराव देशमुख का मत था कि संविधान भारत की नागरिकता को अत्यन्त सस्ती कर देगा। भारतीय नागरिक होने के लिए एक शर्त यह है कि नागरिक की जन्मभूमि भारत होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि एक पति और पत्नी अपनी यात्रा के सिलसिले में भारत से गुजरते समय बम्बई रुकते हैं और रुकने के कुछ ही घन्टों के बाद स्त्री एक बच्चे को जन्म देती है, तो वह बालक न केवल अपने माता पिता की नागरिकता का उत्तराधिकारी होगा, वरन् वह भारत का भी नागरिक होगा। एक अन्य धारा के अनुसार भारत में पाँच वर्ष तक निवास करनेवाला व्यक्ति भारतीय नागरिक हो सकता है। किंतु इसके विपरीत, अमरीका में बीस-पचीस वर्ष तक रहने पर भी भारतीयों को नागरिकता नहीं मिल पायी है। दक्षिण अफ्रिका, मलाया, बर्मा, तथा अन्य देशों में भारतीयों की स्थिति के बारे में सबको ज्ञान है। संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ इतनी आसानी से नागरिकता प्राप्त की जा सकती है। श्री देशमुख का मत था कि नागरिकता उसी को प्रदान की जानी चाहिए, जो भारत का निवासी हो, जो भारतीय माता-पिता की सन्तान हो अथवा जो नागरिकता सम्बन्धी विधि के अन्तर्गत अङ्गीकृत किया गया हो; तथा प्रत्येक हिंदू या सिक्ख भारत का नागरिक हो, बशर्ते कि उसने

किसी अन्य देश की नागरिकता न स्वीकार कर ली हो। यह मत स्वीकार नहीं हुआ।

इकहरी नागरिकता—स्मरण रहे कि भारतीय संघ में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था है; अर्थात् यहाँ सङ्घ के विविध राज्यों द्वारा नागरिकों को कुछ अलग-अलग विशेषाधिकार नहीं हैं। संयुक्तराज्य अमरीका आदि में प्रत्येक राज्य का व्यक्ति अपने राज्य का नागरिक अलग होता है, और संघ का अलग। वहाँ अपने राज्य की नागरिकता के आधार पर उसे उस राज्य में कुछ राजनैतिक, आर्थिक, व्यापारिक आदि विषयों में प्राथमिकता तथा प्रधानता मिलती है। भारत में यह बात नहीं है। उदाहरण के लिए यहाँ बम्बई राज्य के निवासियों को उस राज्य में उतने ही अधिकार होंगे, जितने वहाँ रहने वाले मद्रासियों या बिहारियों आदि को। इस प्रकार हमारा नागरिकता सम्बन्धी कानून छत्तीस करोड़ भारतीयों को एक सूत्र में गठित होने में सहायता प्रदान करता है।

सातवाँ अध्याय

मूल अधिकार

मानव अधिकारों की जितनी विशद घोषणा भारतीय संविधान के अन्तर्गत की गयी है, उतनी अब तक के किसी संविधान में नहीं की गयी।

—एस० एन० मुकर्जी

मूल अधिकार किसे कहते हैं?—प्रजातन्त्र राज्य में सारी शक्ति जनता के हाथ में निहित होती है, अतः प्रत्येक नागरिक को बड़े-बड़े अधिकार होते हैं। वह ग्राम-पञ्चायत, जिला-बोर्ड, म्युनिसपल बोर्ड, अपने राज्य (प्रान्त) की विधान-सभा में तथा संसद या पार्लिमेंट में जिसे चाहे, अपना प्रतिनिधि बनाने के लिए, मत दे सकता है। वह स्वयं उक्त संस्थाओं के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता है, पञ्चायत के पञ्च-सरपञ्च से लेकर विधान-सभा या संसद का सदस्य और मंत्री तक हो सकता है। इसी तरह वह बड़े-बड़े वेतन या प्रभाव वाले पदों का अधिकारी हो सकता है। हाँ, इन बातों के लिए निर्धारित योग्यता की आवश्यकता होती है। जिस नागरिक में वह योग्यता नहीं है, उसे ऐसे पद नहीं मिल सकते; किन्तु कुछ अधिकार ऐसे होते हैं, जिनके उपयोग के लिए कोई खास योग्यता आवश्यक नहीं होती; राज्य के सभी नागरिकों को वे अधिकार सुलभ होते हैं। राज्य की ओर से यह गारंटी दी जाती है कि प्रत्येक नागरिक उन अधिकारों से लाभ उठा सकेगा। ऐसे सामान्य अधिकार संविधान की भाषा में मूल अधिकार कहलाते हैं। अनेक प्रजातन्त्री राज्यों के संविधानों में मूल अधिकारों की घोषणा कर दी गयी है। भारत के नये संविधान में भी इनका उल्लेख किया गया है।

भारतीय संविधान में मूल अधिकार—भारतीय संविधान निर्माताओं ने यह प्रयत्न किया है कि मूल अधिकारों द्वारा जनता को लोकतन्त्र के यथेष्ट लाभ पहुँचाए जाएँ; जनता को वे सारी स्वतन्त्रताएँ एवं सुविधाएँ प्रदान की जाएँ, जो उन्हें उच्च और नैतिक जीवन की ओर प्रवृत्त करें। अन्य देशों में यदि मूल अधिकारों का अपहरण किसी विधि या कानून द्वारा होता है तो उच्चतम न्यायालय को वह विधि अवैध करार देनी होती है, परन्तु भारतीय संविधान में यह व्यवस्था है कि यदि संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधि मूल अधिकारों के विपरीत हो तो वह स्वयं ही अवैध होगी।

संविधान में निम्नलिखित मूल अधिकार दिये गये हैं—

(१) समानता का अधिकार।
(२) स्वतन्त्रता का अधिकार।
(३) शोषण के विरुद्ध अधिकार।
(४) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।
(५) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार।
(६) सम्पत्ति का अधिकार।
(७) संविधानिक उपचारों का अधिकार।

अब हम प्रत्येक मूल अधिकार पर पृथक्-पृथक् विचार करते हैं।

समानता का अधिकार—राज्य की ओर से धर्म, जाति, वर्ण या लिंग के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। सबको समान समझा जायगा। धर्म, जाति या वर्ण-विशेष का अनुयायी होने के कारण किसी नागरिक पर कोई अयोग्यता या बन्धन नहीं लगाया जायगा। सार्वजनिक उपयोग के लिए जो होटल या जलपान-गृह या मनबहलाव के स्थान हैं, वहाँ वह बेरोक-टोक जा सकेगा। इसी प्रकार वह कुएँ, तालाब, सड़क, घाट, पार्क आदि का इस्तेमाल भी कर सकेगा, बशर्ते कि ये चीजें जनता के उपयोग के लिए हों। किसी को यह कहने का अधिकार न होगा कि तुम मुसलमान हो या चमार-भङ्गी हो, इसलिए इस कुएँ से पानी नहीं भर सकते।

राज्य की नौकरियों में अथवा राज्य की ओर से चलाये जानेवाले अन्य काम धंधों में लगने के लिए सब को समान सुविधा रहेगी। केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर कोई किसी सरकारी पद के अयोग्य नहीं समझा जायगा।

अस्पृश्यता का अन्त—नये संविधान द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। अब कानून की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य या अछूत नहीं होगा। यह नियम कर दिया गया है कि कोई आदमी किसी दूसरे व्यक्ति से उसे अस्पृश्य मानकर व्यवहार न करे। यदि किसी को अछूत मानकर कोई बन्धन, अयोग्यता या रोक-टोक लगायी जाएगी, तो यह एक अपराध समझा जायगा और ऐसा करनेवाले को दण्ड दिया जायगा। संविधान की यह धारा बहुत ही महत्वपूर्ण है। अस्पृश्यता भारतीय समाज का एक बड़ा अभिशाप रहा है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या लाखों में नहीं, करोड़ों में थी, जो अछूत समझे जाते रहे, और जिनके हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजन और पानी ग्रहण करना पाप समझा गया। महात्मा गांधी ने उनके उद्धार के लिए सम्पूर्ण देश में जो हरिजन-आंदोलन चलाया, उसका व्यापक प्रभाव पड़ा और लोगों में अस्पृश्यता की दूषित प्रथा को समाप्त कर देने की भावना बढ़ती गयी। उसी का फल है कि स्वतन्त्र होने पर हमारे नेताओं ने जहाँ तक कानून का सम्बन्ध है, इसे मिटा दिया। हाँ, व्यवहार में अभी बहुत कुछ करना शेष है।

पदवियों एवं उपाधियों का निषेध—संविधान में पदवियों एवं उपाधियों की प्राप्ति को निषिद्ध ठहराया गया है। ऐसा करने में मुख्य विचार यह है कि विशेष प्रकार की पदवियाँ देना असमानता का द्योतक है। विदेशी शासन में इन पदवियों का कटु अनुभव रहा है, इसलिए भी पदवियों का अंत किया गया। संविधान में कहा गया है कि राज्य सेना या विद्या सम्बन्धी उपाधि के सिवाय, और कोई खिताब प्रदान नहीं करेगा। भारत का कोई भी नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

[स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद अब गणराज्य दिवस पर राष्ट्रपति की ओर से उपाधियाँ दी जाने लगी हैं। इस वर्ष (१९५५), ३० व्यक्तियों को भारत-रत्न,

पद्म-विभूषण, पद्म-श्री आदि उपाधियाँ दी गयी हैं। हाँ, उपाधियाँ प्रदान करने के लिए नया मानदण्ड स्वीकार किया गया है। उपाधियां उन्हीं लोगों को दी जाती हैं, जिन्होंने विज्ञान, इंजीनियरिंग, लेखन, संगीत आदि के क्षेत्र में विशेष कार्य किया होता है; उपाधिदान को देश और समाज की सेवा की स्वीकृति माना गया है। तथापि राजकीय पदवियों के प्रति जनता की अरुचि ही है।

स्वतन्त्रता अधिकार—प्रत्येक राज्य में उसके नागरिकों के उत्कर्ष और उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि नागरिकों को लेखन, भाषण, विचार करने की स्वतन्त्रता हो; उन्हें पूर्ण आश्वासन हो कि उनके प्राण सुरक्षित हैं, और राज्य अकारण ही उनकी शारीरिक स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सकता। जहाँ इस प्रकार की स्वतंत्रता नहीं होती, वहाँ नागरिक अंध-विश्वासी और अल्पज्ञ हो जाते हैं। उन्हें नयी-नयी विचार-धाराओं, आविष्कारों आदि का ज्ञान नहीं होता, और वे अपनी रीति-रस्मों तथा कार्य-प्रणाली आदि में आवश्यक सुधार या प्रगति नहीं कर पाते। इसलिए आधुनिक सभ्य देशों के संविधानों में स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकारों को विशेष महत्व दिया जाता है।

भारतीय संविधान में इस अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गयी हैं :—

(१) भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता।

(२) शांतिपूर्वक, बिना हथियार लिए सभा करने की स्वतन्त्रता।

(३) संस्था, परिषद् या सङ्घ निर्माण करने की स्वतन्त्रता।

(४) भारत के राज्य-क्षेत्र में अबाध आने जाने की स्वतन्त्रता।

(५) भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतन्त्रता।

(६) सम्पत्ति कमाने, रखने और व्यय करने की स्वतन्त्रता।

(७) कोई आजीविका, व्यापार या कारबार करने की स्वतन्त्रता।

(८) अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के विषय में संरक्षण।

(९) प्राण और शारीरिक स्वाधीनता का संरक्षण।

(१०) बन्दीकरण और निरोध से संरक्षण।

भाषण आदि की स्वतन्त्रता—संविधान ने सब नागरिकों को स्वतंत्रता का समान अधिकार प्रदान किया है। सब को अपना विचार प्रकट करने और भाषण देने की स्वतन्त्रता है। नागरिकों को किसी जगह एकत्रित होकर सलाह-मशविरा करने का अधिकार है। वे अपनी सभा, समितियाँ, सङ्घ कायम कर सकते हैं। देश के अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को आ-जा सकते हैं, भारत के किसी भाग में जाकर बस सकते हैं। वे सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं, रख सकते हैं और जब चाहें हस्तान्तरित कर सकते हैं। वे कोई भी काम धन्धा या रोजगार स्वतन्त्रता-पूर्वक कर सकते हैं। हाँ, सार्वजनिक हित में आवश्यक होने पर, राज्य कभी-कभी इन अधिकारों के उपयोग पर कुछ बन्धन लगायेगा।

अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के विषय में संरक्षण—भारतीय सङ्घ में किसी भी व्यक्ति को तब तक दण्ड न दिया जायगा, जब तक वह किसी ऐसे कानून को भङ्ग न करे, जिसे भङ्ग करने से वह दण्ड का भागी होता हो। दण्ड भी उस सीमा तक ही दिया जा सकेगा, जितना कि अपराध करने के समय विधि द्वारा निर्धारित हो। किसी अपराधी पर उसी अपराध के लिए दुबारा मुकदमा नहीं चलाया जायगा और एक अपराध के लिए दो बार दण्डित नहीं किया जा सकेगा। अभियुक्त को अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य न किया जा सकेगा। बहुधा पुलिस किसी व्यक्ति को व्यर्थ ही अपराधी सिद्ध करने के लिए यह प्रयत्न करती है कि वह अपना अपराध स्वयं स्वीकार कर ले। संविधान द्वारा नागरिकों को पुलिस की ज्यादतियों से संरक्षण प्रदान किया गया है। 'प्रत्येक अपराधी पर मुकदमा भी चलाया जायगा और दण्ड भी दिया जाएगा'—यह वाक्यांश संविधान में इस लिए दिया गया है कि यदि किसी अपराधी पर विभागीय कार्यवाही की जा चुकी हो तो वह यह कह कर मुक्त न हो सके

कि उसे दण्ड मिल चुका है। ऐसे अभियुक्त पर विधि के अनुसार मुक़दमा चलाया जायगा और दण्ड भी दिया जायगा।

प्राण और शारीरिक स्वाधीनता की रक्षा; बन्दीकरण और निरोध से संरक्षण—शारीरिक स्वतन्त्रता सम्बधी अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है। इसे स्वतन्त्रता सम्बधी अधिकारों की आत्मा कहा जा सकता है। प्रायः यह आशंका रहा करती है कि यदि कभी शासक वर्ग या राज्य स्वेच्छाचारी हो जाय और दमन-नीति का आश्रय लेले तो वह उन नागरिकों को, जो उसके आलोचक हों अथवा उसकी नीति के विरोधी हों, बन्दीगृह में डलवा देगा और उन्हें प्राणों से भी वंचित कर देगा। नागरिकों को इस प्रकार की स्थिति से बचाने के लिए संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि किसी भी व्यक्ति के प्राण अथवा स्वाधीनता का हरण कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किया जा सकेगा। इससे स्पष्ट है कि इस अधिकार के द्वारा भारत में विधि-विहित शासन की स्थापना की गयी है। इस अधिकार की उद्देश्य-पूर्ति के लिए संविधान में कहा गया है :—

(क) प्रत्येक व्यक्ति जो गिरफ्तार किया जायगा, उसे उसकी गिरफ्तारी का कारण बतलाये बगैर, हवालात में नहीं रखा जायगा और उसे उसकी इच्छा के अनुसार वकील से परामर्श करने एवं उसको अपनी पैरवी के लिए नियुक्त करने का अधिकार होगा।

(ख) प्रत्येक व्यक्ति जिसे गिरफ्तार किया गया है, और हवालात में रखा गया है, उसे हवालात से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक की यात्रा के आवश्यक समय को छोड़कर, ऐसी हवालात से २४ घंटे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित किया जायगा और उसे मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बगैर,इस अवधि (२४ घंटे) से अधिक हवालात में न रखा जायगा।

उपरोक्त उपबन्ध दो प्रकार के व्यक्तियों के सम्बन्ध में लागू नहीं होंगे :—

(१) जो व्यक्ति उस समय भारत के अन्यदेशीय शत्रु हों।

(२) जो व्यक्ति किसी नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत बन्दी हों।

नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत नजरबन्द किया हुआ व्यक्ति भी तीन मास से अधिक बन्दीगृह में न रखा जा सकेगा, बशर्ते कि 'नजरबन्दी कानून

परामर्शदात्री समिति' तीन मास पूर्व ऐसी राय न दे दे कि उसका अधिक समय तक बन्दी रखना आवश्यक है। इस समिति में ऐसे ही व्यक्ति होंगे, जो किसी उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा होने की योग्यता रखते हैं। इस नियम के भी अपवाद हैं। इस सम्बन्ध में संसद विधि द्वारा उन परिस्थितियों का निश्चय कर सकती है, जिनके अन्तर्गत किसी वर्ग विशेष के मामले, जिनमें किसी व्यक्ति को बन्दी किया गया है, उसे तीन से अधिक मास तक नजरबन्द रखा जा सकता है। संसद विधि द्वारा यह भी निर्धारित कर सकती है किसी व्यक्ति को अधिक से अधिक कितनी अवधि के लिए नजरबन्द रखा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को, जिसे नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत बन्दी किया जायगा, जल्दी से जल्दी बताया जायगा कि वह क्यों नजरबन्द रखा गया है और उसे उस आज्ञा के विरुद्ध प्रतिवाद करने को शीघ्र और पूर्ण अवसर दिया जायगा। अधिकारी वर्ग ऐसे तथ्य बताने के लिए बाध्य नहीं होंगे, जो जनहित के विरुद्ध हों।

ऊपर कहा गया है कि संविधान के अनुसार 'किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा शारीरिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायगा।' इन शब्दों ने न्यायालय के अधिकार को बहुत सीमित कर दिया है और संसद के अधिकार को बहुत व्यापक। इसका व्यवहारिक रूप यह होगा कि न्यायालय को किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में जिसे गिरफ्तार अथवा नजरबन्द किया जायगा, केवल यह देखना होगा कि उसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अन्तर्गत गिरफ्तार या नजरबन्द किया गया है या नहीं। न्यायालय को विधि के गुण दोष की परीक्षा करने का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि न्यायालयों को विधि के औचित्य पर विचार करने का अधकार नहीं होगा। हाँ, संविधान के अनुरूप न होने की दशा में वे किसी विधि को अवैध या रद्द करार दे सकते हैं। अस्तु, जहाँ तक शारीरिक स्वाधीनता और नजरबन्दी के सम्बन्ध में न्यायालय की अपेक्षा संसद को प्रधानता की गयी है, उस सीमा तक संविधान प्रजातंत्र के आदर्श के विरुद्ध है, और नागरिक स्वतन्त्रता को अपहरण करता है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार—इस अधिकार द्वारा भारतीय समाज की दो बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है :—

(१) मनुष्यों का क्रय-विक्रय,

(२) बेगार और जबर्दस्ती काम लेना।

भविष्य में कोई भी व्यक्ति मनुष्यों का क्रय-विक्रय न कर सकेगा और बेगार तथा जबर्दस्ती से काम भी न ले सकेगा। यदि वह ऐसा करने का प्रयत्न करेगा तो दण्ड का भागी होगा। हाँ, इस सम्बन्ध में राज्य को सार्वजनिक कार्यों के लिए अनिवार्य सेवा लेने में कोई रुकावट उपस्थित न होगी। भारत में दास-प्रथा और मनुष्यों का क्रय-विक्रय किसी न किसी रूप में आधुनिक युग में विद्यमान रहा है। मद्रास में देवदासी प्रथा तथा राजस्थान में बांदी प्रथा इसी का रुपान्तर है। इस प्रथा से व्यभिचार की मात्रा बढ़ती है, स्त्रियों का क्रय-विक्रय होता है और समाज में नारी का सम्मान घटता है।

संविधान द्वारा मानव क्रय-विक्रय का अन्त करके इस बुराई को निर्मूल करने का प्रयत्न किया गया है। भारत में गाँवों में बेगार की प्रथा बहुत व्यापक है, इसके कारण लाखों व्यक्तियों का आर्थिक शोषण हो रहा है और वे लोग दासता का जीवन बिताने के लिए बाध्य होते हैं। भारत की अछूत जातियों से खेती में जमीदारों एवं जगीरदारों द्वारा बेगार ली जाती रही है। इस मूल अधिकार को स्वीकार करके एक महान कार्य किया गया है, परन्तु अधिकार की स्वीकृति मात्र से इस बुराई का अन्त न होगा, इसके लिए संसद को एवं राज्यों के विधान-मण्डलों को आवश्यक कानून बनाने चाहिएँ। देवदासी-प्रथा नष्ट करने के लिए मद्रास में उचित विधि का निर्माण किया गया है।

चौदह वर्ष से कम अवस्था के बच्चों से किसी कारखाने या खदान में काम नहीं लिया जाएगा और न उन्हें ऐसे कार्यों में लगाया जाएगा, जिन्हें करने में खतरा हो। भारतीय बच्चों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए यह अवस्था १६ वर्ष होती तो अच्छा था। स्त्रियों को भी खानों और कारखानों में

रात्रि के समय काम लेना वर्जित होना चाहिए, क्योंकि इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है, जिसका प्रभाव भावी सन्तति पर पड़ना अवश्यम्भावी है।

धार्मिक स्वतंत्रता—संविधान के द्वारा भारत एक धर्म-निरपेक्ष ('सेक्यूलर') राज्य घोषित कर दिया गया है। राज्य में किसी भी धर्म को प्रधानता नहीं दी जायगी, सब धर्म उसकी दृष्टि में समान होंगे। किसी धर्म विशेष के अनुयायियों के प्रति विशेष उदारता अथवा काठोरता का व्यवहार नहीं किया जायगा। समस्त नागरिकों को सदाचार, स्वास्थ्य एव सार्वजनिक शांति तथा राज्य के अन्य नियमों का पालन करते हुए किसी भी धर्म को मानने, प्रचार करने और उस पर आचारण करने की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। सिक्खों के लिए कृपाण धारण करना उनकी स्वतन्त्रता का ही एक अङ्ग माना जायगा। इसलिए उसको धारण करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायगा। यदि किसी धार्मिक कृत्य के साथ आर्थिक, राजनैतिक अथवा राजस्व सम्बन्धी कोई कार्य शामिल होगा तो राज्य को अधिकार होगा कि विधि (कानून) बनाकर उस कार्य का नियमन करे या उस पर कोई रोक लगाये। राज्य को समाज के कल्याण और सुधार के लिए हिन्दुओं की सार्वजनिक धर्म-सस्थाओं को सब हिन्दुओं के लिए खोलने का अधिकार होगा। सिक्ख, जैन और बौद्ध लोगों पर भी वही नियम लागू होंगे, जो अन्य हिन्दुओं पर हैं। किसी भी धर्म या संप्रदाय को यह अधिकार होगा कि धार्मिक दान आदि सम्बंधी, अथवा धार्मिक कार्यों के लिए, संस्थाएँ स्थापित करे और चलाये, धर्म सम्बन्धी सब मामलों का प्रबन्ध अपने हाथ से करे और चल या अचल सम्पत्ति प्राप्त करे और रखे। विधि (कानून) के अनुसार वह ऐसी सम्पत्ति का प्रबन्ध भी कर सकता है। किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष की उन्नति या हित के लिए लगाये हुए कर को देने के लिए किसी को बाध्य नहीं किया जायगा। सरकारी स्कूल या कालेज में धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था न की जायगी; परन्तु यह व्यवस्था उस स्कूल या कालेज पर लागू न होगी, जिसका प्रबन्ध तो राज्य करता हो परन्तु वह किसी धार्मिक संस्था द्वारा स्थापित किया गया हो। ऐसी शिक्षा संस्था में जिसे सरकार की ओर से कुछ सहायता मिलती हो, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था होगी तो किसी को उसमें भाग

लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। यदि किसी जाति या सम्प्रदाय की अपनी अलग संस्था है, तो उसके निर्धारित घंटों के अतिरिक्त दूसरे समय में धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है।

नागरिकों को धर्म-प्रचार कार्य में सहिष्णुता तथा सद्गुणों का परिचय देना आवश्यक है। अपने धर्म के अनुयायियों को बढ़ाने के लिए पर-धर्म-निंदा या बलात् धर्म-परिवर्तन विधि के अन्तर्गत दण्डनीय होगा। राज्य को हिंदू संस्थाओं तथा मन्दिरों को सब हिंदुओं के लिए खोलने का अधिकार है; यह इसलिए किया गया है कि अस्पृश्य और अनुसूचित जातियों को भी धार्मिक स्वतंत्रता का उपभोग करने का सुयोग हासिल हो सके। इससे जो कानून राज्यों अथवा प्रान्तों ने इस सम्बन्ध से संविधान बनने से पूर्व बनाये थे, उन्हें भी लागू किया जा सकेगा।

संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार—भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत के विविध भागों के निवासियों की प्रतिभा को विकसित होने का अवसर देने का भी ध्यान रखा है। इस प्रकार कठोर एकता नहीं, वरन मधुर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों की शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी हितों की रक्षा की व्यवस्था की गयी है। यदि भारत के किसी भाग में नागरिकों का कोई ऐसा वर्ग है, जिसकी अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति हैं तो उसे अधिकार होगा कि उनकी रक्षा करे। दूसरे शब्दों में, उसकी भाषा या लिपि अथवा संस्कृति को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया जायगा, और न किसी को करने दिया जायगा। कुछ लोगों का मत है और एक दृष्टि से यह अच्छा भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र में एक भाषा और एक संस्कृति का विकास किया जाना चाहिए। दर्जनों प्रकार की भाषाएँ, लिपियों का प्रचलन राष्ट्र की एकता में बाधक होता है, किन्तु अपनी भाषा और संस्कृति का लोगों को इतना अधिक मोह होता है कि वे उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। यदि एकता के विचार से उनसे अपनी भाषा या संस्कृति को छोड़ देने के लिए कहा जाय तो उनमें बड़ा असन्तोष पैदा हो जाता है। अतः प्रजातन्त्री राज्य में यही उचित समझा जाता है कि अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रहने

दिया जाय। किसी सरकारी शिक्षा-संस्था में किसी अल्पसंख्यक जाति के लोगों की भर्ती के सम्बन्ध में भेद-भाव नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए सभी अल्पसंख्यक वर्गों को यह अधिकार होगा कि वे अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करें और उनका प्रबन्ध करें। शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देते समय ऐसे स्कूल कालेजों का भी राज्य की ओर से ध्यान रखा जायगा।

साम्पत्तिक अधिकार—संविधान ने नागरिकों को यह अधिकार दिया है कि वे अपने पास सम्पत्ति रख सकें। उनकी सम्पत्ति की रक्षा की जिम्मेदारी राज्य पर होगी। कोई भी व्यक्ति कानून के अधिकार के बिना, अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा; अर्थात् राज्य किसी की सम्पत्ति को मनमाने तौर से अपने अधिकार में न कर सकेगा। यदि राज्य कभी सार्वजनिक कार्य के लिए किसी की चल या अचल सम्पत्ति को कब्जे में करना चाहेगा तो वह ऐसा किसी विधि के अन्तर्गत करेगा। सार्वजनिक उपयोग के लिए ली गयी ऐसी सम्पत्ति तब तक किसी विधि के द्वारा अधिकार में न ली जा सकेगी, जब तक कि वह विधि उस सम्पत्ति की क्षतिपूर्ति यानी मुआवजे की व्यवस्था न करती हो। इस प्रकार की विधि मुआवजे की रकम निश्चित करेगी ही, वह उन सिद्धांतों का भी निरूपण करेगी, जिनके आधार पर मुआवजा दिया जाने वाला है। यही नहीं, सम्पत्ति लेने का कानून उस समय तक प्रभावी नहीं होगा, जब तक उसे राष्ट्रपति की अनुमति न मिल जाय।

सम्पत्ति लेने या मुआवजा देने सम्बन्धी प्रश्नों पर अन्तिम निर्णय संसद का होगा। मुआवजे के औचित्य या परिमाण के सम्बन्ध में न्यायालय को विचार करने का अधिकार नहीं है। न्यायालय में मुआवजे के कानून के विरुद्ध तभी विचार हो सकता है, जब कि उस कानून से संविधान की उपेक्षा होती हो। संविधान में यह प्रयत्न किया गया है कि ऐसे मामलों के लिए अनावश्यक मुकदमेबाजी न हो। यह व्यवस्था जमींदारी-उन्मूलन को ध्यान में रखकर की गयी थी।

सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार के सम्बन्ध में कई विचार थे। समाजवादी चाहते थे कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और आर्थिक व्यवसाय और उनके उत्तराधिकार को सीमित किये जाने, तथा उसके समाजीकरण किये जाने की व्यवस्था हो। जमींदार तथा पूँजीपतियों का कहना था कि यह व्यवस्था अनुचित है; सम्पत्तिशाली वर्ग को उसकी सम्पत्ति से, पूर्ण मुआविजा दिये वगैर वंचित करना घोर अन्याय है। संविधान-निर्माताओं ने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। एक ओर व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तियों के अधिकार को सुरक्षित रखा और दूसरी ओर सम्पत्ति पर समाज के अधिकार को भी मान्य किया।❀

इस मूल अधिकार के आधार पर ही जमींदारों ने जमींदारी-उन्मूलन विधेयक पास होने में उत्तर प्रदेश तथा बिहार आदि राज्यों में आपत्ति की। इससे वैधानिक दृष्टि से उपरोक्त कानून पास करना कठिन हो गया। इस कठिनाई को हटाने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन किया गया। इस पर विशेष प्रकाश इस अध्याय के अन्त में डाला गया है।

संविधानिक उपचारों का अधिकार—भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि उपर्युक्त मूल अधिकार यथेष्ट रूप में सब को सुलभ हों। उच्चतम न्यायालय ऐसी हिदायतें या आज्ञाएँ जारी करेगा कि मूल अधिकार ठीक-ठीक अमल में लाये जायँ। संविधान ने उच्चतम न्यायालय को हमारे मूल अधिकारों का संरक्षक बनाया है। यदि संसद का बनाया कोई कानून या सरकार का कोई नियम किसी मूल अधिकार के, या संविधान के किसी आदेश के, विरुद्ध पड़ता हो तो उच्चतम न्यायालय को अधिकार है कि वह न्याय के हित में उसे अवैध घोषित कर दे।

❀ आदमी समाज की सहायता बिना कोई भी सम्पत्ति पैदा नहीं कर सकता। इसलिए सम्पत्ति पर समाज का स्वामित्व होना चाहिए। कहा है, 'सब सम्पत्ति रघुपति कै आही' और 'सबै भूमि गोपाल की'। देखिए, हमारी 'राज व्यवस्था; सर्वोदय दृष्टि से'।

संसद को यह अधिकार है कि वह उच्चतम न्यायालय के इस अधिकार को दूसरे स्थानीय न्यायालयों को भी दे दे, जिससे मूल अधिकारों पर आघात होने की दशा में नागरिकों को उच्चतम न्यायालय जाने की आवश्यकता न रहे, वे अपनी सुविधानुसार स्थानीय न्यायालयों की सहायता ले सकें। मूल अधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी दण्ड-विधि की रचना करने का अधिकार संसद को ही है, राज्यों के विधान-मंडलों को नहीं। संसद को यह भी अधिकार है कि मूल अधिकारों की रक्षा के लिए अन्य आवश्यक कानून बनाये।

अस्थायी रोक—मूल अधिकारों की व्यवस्था साधारण अर्थात् शांति के समय के लिए है। युद्ध या विप्लव आदि की स्थिति में नागरिकों को इन अधिकारों का उपयोग नहीं करने दिया जा सकता। ऐसे सङ्कट की स्थिति में, जिसकी घोषणा राष्ट्रपति करेगा, ये अधिकार देश या उसके किसी भाग में निर्धारित समय के लिए अमल में आने से रोक दिये जायँगे; हाँ, सङ्कट दूर होते ही यह रोक हटा ली जाएगी।

सेना और मूल अकिधार—सेना में अनुशासन की बहुत आवश्यकता रहती है। इसलिए संसद को अधिकार है कि सशस्त्र सेना या सार्वजनिक शांति की रक्षक सेना के सम्बन्ध में इन अधिकारों को उस सीमा तक कम या समाप्त कर दे, जहाँ तक ऐसा करना सैनिकों के कर्तव्यों का ठीक तरह पालन किये जाने के लिए आवश्यक हो।

मूल अधिकारों में संशोधन—संविधान-निर्माताओं ने नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान करने में आवश्यकता से अधिक व्यापक दृष्टिकोण रखा। इससे संविधान के लागू होने के वर्ष भर के अन्दर ही शासकों को शासन करने में तथा आवश्यक विधि-निर्माण करने में कठिनाइयों का अनुभव होने लगा। सरकार की इच्छा थी कि शीघ्र से शीघ्र विभिन्न राज्यों जमींदारी तथा मालगुजारी प्रथा का अन्त करने के लिए आवश्यक कानून पास हो जायँ, परन्तु संविधान में मूल अधिकारों की जैसी व्यवस्था थी, उससे वैसा करने में बाधा उपस्थित हुई।

उदाहरण के लिए उत्तरप्रदेश का जमींदारी-उन्मूलन का प्रस्ताव विधान-सभा के संशोधन सहित १६ जनवरी १९५१ को विधान परिषद में भी स्वीकृत हो गया था; २४ जनवरी को राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी थी और २६ जनवरी के सरकारी गजट में वह प्रकाशित भी हो गया था। तो भी जमींदारों ने इसे अवैध घोषित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को दरखास्त दी। अब सरकार को यह मालूम हुआ कि मूल अधिकारों में संशोधन किये बिना इस प्रकार के कानून पास करना सम्भव नहीं है। यह भी अनुभव किया गया कि मूल अधिकारों के वर्तमान स्वरूप के रहते, सरकार ऐसे भाषणों आदि पर प्रतिबंध नहीं लगा सकती जो राज्य की सुरक्षा के लिए घातक हैं या विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बंध रखने में बाधक सिद्ध होते हैं। इन व्यवहारिक कठिनाइयों को निवारण करने के हेतु १२ मई १९५१ को प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद में एक संशोधन पेश किया, जो काफी विरोध और बहस-मुबाहिसे के बाद पास हुआ।

इस संशोधन के फलस्वरूप मूल अधिकारों में खासकर निम्नलिखित परिवर्तन हुए हैं—

(१) राज्य पिछड़ी हुई श्रेणियों की शिक्षा, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को उन्नतिशील बनाने के लिए आवश्यक विधि निर्माण कर सकेंगे।

(२) राज्यों को अधिकार होगा कि वे भाषण स्वातन्त्र्य पर उस दशा में प्रतिबन्ध लगा सकें जब कि वे राज्य की सुरक्षा के लिए घातक हों, अथवा विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने में सार्वजनिक शान्ति आदि में बाधक सिद्ध होते हों। इसके अतिरिक्त राज्य अदालत की मानहानि के सम्बन्ध में भी कानून बना सकेगा।

(३) राज्य द्वारा जमींदारियों पर तत्सम्बन्धी अधिकारों को लेने के लिए कानून बनाने पर किसी भी अदालत में उस पर आपत्ति न की जा सकेगी।

विशेष वक्तव्य—मूल अधिकारों पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि जहाँ एक ओर इनका निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया है, दूसरी ओर उनके उपयोग के सम्बन्ध में काफी बन्धन भी सार्वजनिक हित के नाम पर लगा दिये गये हैं। इससे मूल अधिकारों का महत्व कुछ घटा हुआ मालूम होता है। इस सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि परम्पराओं और प्रथाओं का महत्व बहुत होता है। संविधान में किसी अधिकार के होने से या न होने से लोक-कल्याण पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना इस बात का कि उनका व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। शासक वर्ग और जनता को अपने अधिकारों के साथ कर्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिए।

आठवाँ अध्याय

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि नीति-निर्देशक तत्वों का, कानून में बन्धनकारी बल न होने से, वे व्यर्थ हैं। ये तत्व विधान-मंडल एवं कार्यकारिणी के लिए 'आदेश-पत्र हैं, जिनके आधार पर उन्हें भविष्य में देश का शासन करना है।

—डा० भीमराव अम्बेडकर

मूल अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों में अन्तर—नागरिकों के मूल अधिकारों के विषय में लिख चुकने पर, अब हम राज्य के नीति-निर्देषक तत्वों का विचार करते हैं। पहले यह जान लेना चाहिए कि इन दोनों में क्या अन्तर है। मूल अधिकारों की पीठ पर विधि या कानून का बल होता है; अगर किसी नागरिक के किसी मूल अधिकार पर आघात हो तो वह न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य को उस मूल अधिकार की रक्षा के लिए प्रेरित करे; राज्य इसकी अवहेलना नहीं सकता। इसके विपरीत, नीति-निर्देशक तत्वों के पीछे कानून का बल नहीं होता। यह राज्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह इनमें सूचित आदेशों का पालन करे या न करे। न्यायालय, राष्ट्रपति अथवा अन्य कोई भी शक्ति राज्य को इन आदेशों के अनुसार चलने को बाध्य नहीं कर सकती; हाँ, ये राज्य के लिए मार्ग-दर्शक हैं।

देश की परिस्थिति और साधनों की कमी के कारण संविधान-निर्माता कुछ अधिकारों को मूल अधिकारों में न रख सके, उन्हें 'नीति निर्देशक तत्वों' में स्थान दिया गया है। एक प्रकार से यह उन कर्तव्यों की सूची है जिन्हें राज्यों को नागरिकों के लिए पूरा करना आवश्यक है। भविष्य में तो इनमें से कुछ तत्वों का स्थान मूल अधिकारों में होना चाहिए।

नीति-निर्देशक तत्वों का लक्ष्य—संविधान में कहा गया है कि 'राज्य अपनी शक्ति भर इस प्रकार की प्रभावशाली सामाजिक व्यवस्था की स्थापना एवं रक्षा करने का प्रयत्न करेगा, जिससे सार्वजनिक कल्याण की वृद्धि हो और समस्त नागरिकों एवं राष्ट्रीय संस्थाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त हो सके।' यह धारा अस्पष्ट एवं बहु-अर्थी है। इससे यह पता नहीं लगता कि राज्य किन सिद्धांतों के आधार पर उपरोक्त प्रकार की सामाजिक व्यवस्था करेगा; यह व्यवस्था पूँजीवादी सिद्धांतों पर आधारित होगी अथवा समाजवादी या साम्यवादी सिद्धांतों पर। [अब (सन् १९५५) कांग्रेस ने समाजवादी ढांचे के समाज के निर्माण के कार्यक्रम को अमल में लाने की बात कही है।]

नीति निर्देशक तत्व: आर्थिक व्यवस्था—संविधान में जो नीति-निर्देशक तत्व दिये गये हैं, उन्हें चार वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

१—आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी तत्व।

२—सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति।

३—शासन सुधार।

४—अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नति।

आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी तत्व ये हैं :—

(१) नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन समान रूप से प्राप्त करने का अधिकार हो।

(२) समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार हो कि सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से हो।*

(३) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकर केन्द्रीकरण न हो।

(४) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

---

*भारत सरकार ने आंशिक रूप से उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की नीति घोषित की है। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया है।

(५) श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो, तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न लगना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।

(६) शैशव और किशोर अवस्था का शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक पतन से संरक्षण हो।

(७) राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयत्न करेगा कि सब आदमी अपनी योग्यतानुसार काम पा सकें, शिक्षा प्राप्त कर सकें, एवं बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, तथा अन्य ऐसी अवस्थाओं में, जब वे किसी कारणवश अपनी जीविका कमाने में असमर्थ हों, राज्य की ओर से सहायता प्राप्त कर सकें।

(८) राज्य इस बात का पूर्ण प्रयत्न करेगा और ऐसे नियम निर्माण करेगा, जिनसे व्यक्तियों को मानवोचित दशाओं में ही कार्य करना पड़े। स्त्रियों को प्रसूति अवस्था में सहायता प्राप्त हो सके, इस बात का भी राज्य पूर्ण प्रयत्न करेगा।

(९) राज्य प्रयत्न करेगा कि कृषि और उद्योगों में लगे हुए समस्त श्रमिकों को निर्वाह-योग्य मजदूरी मिल सके, वे अपना जीवन-स्तर ऊँचा रख सकें, अवकाश के समय का पूर्ण उपयोग कर सकें। इसके अतिरिक्त राज्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी उनका जीवन उन्नत करने का प्रयत्न करेगा। राज्य गांवों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा।

(१०) राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से संगठित करने का प्रयत्न करेगा और गायों, बछड़ों तथा दुधारू और वाहक ढोरों की नस्ल की रक्षा तथा सुधार का, और उनके वध को समाप्त करने का प्रयत्न करेगा। [अब उत्तर प्रदेश तथा अन्य राज्यों में गोवध-निषेध का कानून बन रहा है।]

सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति—सामाजिक और शैक्षणिक उन्नति सम्बन्धी नीति-निर्देशक तत्व निम्नलिखित हैं :—

(१) राज्य जनता के दुर्बल भागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

[हमारे ये करोड़ों भाई चिर काल से उपेक्षित रहे हैं, इनकी उन्नति किये बिना राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता।]

(२) राज्य देश भर के नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार-संहिता बनाने का प्रयत्न करेगा।

[इस समय कुछ कानून तो सब नागरिकों के लिए एक समान रूप से हैं, और कुछ में हिन्दू, मुसलमान आदि का विचार है।]

(३) राज्य, संविधान लागू होने से १० वर्ष की अवधि के अन्दर, १४ वर्ष की आयु तक के समस्त बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था करने का प्रयत्न करेगा।

[प्रजातन्त्र राज्य के लिए समस्त नागरिकों की प्रारंभिक शिक्षा होना बहुत ही आवश्यक है।]

(४) राज्य अपने लोगों के आहार-पुष्टितल और जीवनस्तर को ऊँचा करने एवं लोगों के स्वास्थ्य-सुधार के कर्तव्य को अपने प्राथमिक और प्रधान कर्तव्यों में से मानेगा। वह उन मादक द्रव्यों तथा मादक औषधियों के सेवन का निषेध करने का प्रयत्न करेगा, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर हों किन्तु चिकित्सा के उद्देश्य से उनका उपयोग किया जा सकेगा।

[भारत में साधारण नागरिक का खानपान तथा रहन-सहन का दर्जा कितना नीचा है और मद्यपान से खासकर मजदूरों को कितनी हानि पहुँच रही है, यह स्पष्ट ही है।]

(५) राज्य का दायित्व होगा कि वह प्रत्येक स्मारक, कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि के प्रत्येक स्थान या वस्तु को, जिसे संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया हो, दूषित होने, नष्ट होने, स्थानान्तरित किये जाने या बाहर भेजे जाने से बचाये।

[इन स्मारकों व स्थानों तथा वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए कानून बनाने का कार्य संसद करेगी।]

शासन-सुधार—दो नीति-निर्देशक तत्व ऐसे हैं, जिनसे शासन का स्तर ऊँचा होने में सहायता मिलेगी :—

(१) राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि ग्राम-पंचायतों का अधिक से अधिक ग्रामों में सङ्गठन हो और उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान किये जायँ, जिनसे वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

[महात्मा गांधी का मत था कि शासन के सम्बन्ध में अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण नीति बर्ती जानी चाहिये और ग्राम-पंचायतों का सङ्गठन करके ग्रामों को आत्म-निर्भर बना देना चाहिये।]

(२) राज्य न्यायपालिका को कार्यकारिणी से पृथक् करने का प्रयत्न करेगा।

[इसका उद्देश्य यह है कि न्यायाधीश प्रत्येक मामले में सुनवाई स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से कर सके, उस पर न किसी का दबाव हो और न हस्तक्षेप। जिला मजिस्ट्रेट और उसके नीचे के अधिकारियों को शासन और न्याय दोनों प्रकार के अधिकार होने से बहुधा ठीक न्याय नहीं हो पाता।]

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति—राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति के लिए निम्नलिखित बातों का प्रयत्न करेगा :—(क) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मान पूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, (ख) सङ्गठित लोगों के, एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि-बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का, और (ग) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने का।

भारत का आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' रहा है, वह साम्राज्यवाद और शोषण में नहीं, वरन् सहयोग और शांति में विश्वास रखता है और चाहता है कि अंतर्राष्ट्रीय सङ्घर्ष और वैमनस्य के सब कारण दूर हो जायँ। महात्मा गांधी ने अहिंसा का जो मार्ग दिखाया है, उसी पर चलकर संसार सुखी हो सकता है। इसी लिए भारत ने सब गुटबन्दियों से अलग रहने और

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को युद्ध के बजाय मध्यस्थता द्वारा निपटाने के प्रयत्न करने का निश्चय किया है।

विशेष वक्तव्य—जैसा पहले कहा गया है, ये नीति-निर्देशक तत्व राज्य के लिए दिशा-दर्शक हैं। राज्य का कानूनी नहीं, नैतिक कर्तव्य है कि वह इनके अनुसार कार्य करे। जिस सीमा तक सङ्घ के राज्य और स्थानीय संस्थाएँ इनके आदेशों का पालन करेंगी, उसी सीमा तक राज्य नागरिकों की दृष्टि में सफल समझा जाएगा।

यह कहा जा सकता है कि जब इन तत्वों पर न्यायालय के द्वारा अमल नहीं कराया जा सकता तो इनको संविधान में रखने से क्या लाभ है। स्मरण रहे कि इनके रहने से राज्य के सामने एक आदर्श रहता है। लोकतन्त्र में जनमत के अनुसार सरकारें बदलती रहती हैं, कभी एक दल पदारूढ़ होता है, कभी दूसरा। कोई दल बहुत अनुदार भी हो सकता है, और कोई बहुत उग्र भी। प्रत्येक दल की सरकार के सामने एक निश्चित आदर्श रहने से शासन की मर्यादा बनी रहने और एक दम भारी उथल-पुथल न होने में सहायता मिलती है। इस प्रकार नीति-निर्देशक तत्वों का अपना महत्व यथेष्ठ है।

नवाँ अध्याय

निर्वाचन

जिन व्यक्तियों को जनता चुनेगी, यदि वे सुयोग्य और चरित्रवान हुए तो वे इस दोषपूर्ण संविधान से भी भलाई कर सकेंगे; और यदि उनमें ये गुण न हुए तो यह संविधान देश की सहायता न कर सकेगा।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

लोकतंत्रात्मक शासन में निर्वाचन का महत्व—भारत एक लोकतंत्रात्मक गण-राज्य है। लोकतन्त्र का अर्थ है जनता का राज्य। अब देश का का शासन जनता की इच्छा के अनुसार होगा लोकतन्त्र को 'जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का राज्य' कहा गया है। जनता से अभिप्राय कुछ खास व्यक्तियों से नहीं होता, चाहे वे कितने ही उच्च घराने या जाति के हों, या कितने ही धनवान या प्रतिष्ठित क्यों न हों, वह तो राष्ट्र के सब व्यक्तियों की, गाँव वालों की तथा नगर वालों की होती है। जनता की भावनाओं, आवश्यकताओं या आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति किस प्रकार हो? शासन का कार्य निरन्तर चौबीसों घंटे चलता है और यदि समस्त जनता केवल इसी कार्य में अपना सब समय दे दे तो राष्ट्र के अन्य विविध कार्य कैसे चलें! लोगों को अपने भोजन-वस्त्र, निवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति भी तो करनी होती है।

इसलिए यह सोचा गया कि राज्य के प्रत्येक भाग (ग्राम या नगर) के समस्त नागरिक कानून बनाने में योग देने के बजाय अपना यह अधिकार कुछ चुने हुए सज्जनों को दे दें, जो उनकी ओर से आवश्यक कानून बनायें, और शासन-कार्य करें। ऐसे चुने हुए सज्जन 'प्रतिनिधि' कहलाने लगे। इस प्रकार लोकतन्त्रात्मक शासन में चुनाव या निर्वाचन का महत्व स्पष्ट है। इसे

एक प्रकार से उसका प्राण ही कहा जा सकता है। अब लोकतन्त्र या जनतंत्र का अर्थ है, प्रतिनिधि तंत्र।

भारत में मताधिकार का विकास—अंग्रेजी शासन में यहाँ बहुत समय तक निर्वाचन प्रथा की कोई बात ही नहीं थी। यहाँ तक कि सन् १९१९ से पहले साधारण जनता को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा किसी विधान-सभा में कोई प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न था। उक्त वर्ष के शासन-सुधारों से भी कुल जनसंख्या के ३ प्रतिशत भाग को ही मत देने का अधिकार मिला था। सन् १९३५ में जब प्रांतीय स्वराज की योजना बनी, मताधिकार बढ़ा, पर १४ प्रतिशत जनता ही निर्वाचकों की सूची में आयी।

बालिग मताधिकार—स्वतंत्र भारत के नये संविधान ने निर्वाचन के सम्बन्ध में क्रांतिकारी कदम उठाया है। उसमें कहा गया है कि लोक-सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के लिए निर्वाचक वयस्क या बालिग मताधिकार के आधार पर होंगे; अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिक है तथा २१ वर्ष से कम आयु का नहीं है, और अ-निवास, चित्त-विकार, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर अयोग्य नहीं ठहरा दिया गया है, ऐसे किसी भी निर्वाचन के लिए मतदाताओं में अपना नाम लिखाने को हकदार होगा। केवल धर्म, मूलवंश (नस्ल), जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति किसी निर्वाचक-सूची में शामिल किये जाने के लिए अयोग्य न होगा।

संविधान के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों के आधार पर भारतीय संसद ने मतदाताओं के लिए जो अयोग्यताएँ ठहरायी हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(क) जो भारत का नागरिक न हो, अथवा

(ख) जो किसी अधिकार-युक्त न्यायालय द्वारा पागल घोषित कर दिया गया हो, अथवा

(ग) वर्तमान समय के लिए किसी भी विधि द्वारा निर्वाचनों में भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अयोग्य कर दिया गया हो।

यदि निर्वाचक-सूची बन जाने के पश्चात् भी किसी व्यक्ति पर इनमें से कोई अयोग्यता लागू होगी तो उसका नाम निर्वाचक-सूची से निकाल दिया जाएगा।

कुछ और भी नियम हैं, जैसे कोई भी व्यक्ति एक से अधिक निर्वाचक-क्षेत्र की निर्वाचक-सूची में अपना नाम नहीं लिखा सकता, और न एक ही व्यक्ति एक ही क्षेत्र में एक से अधिक बार अपना नाम लिखा सकता है। यह आवश्यक है कि जिस क्षेत्र की निर्वाचक-सूची में उसने अपना नाम लिखाया है, उस क्षेत्र में योग्यता-काल में साधारणतया १८० दिन से कम न रहा हो और योग्यता-तिथि को उसकी आयु २१ वर्ष से कम न हो।

पहले, पराधीनता-काल में, यहाँ मतदाता के लिए सम्पत्ति, शिक्षा, आय, पद, उपाधि आदि योग्यता आवश्यक थी। संविधान द्वारा इस प्रकार के सब अप्रजातांत्रिक बन्धनों को समाप्त कर दिया गया है। भारतीय जनता ने वयस्क मताधिकार, बिना विशेष प्रयत्न पा लिया है, जब की यूरोप अमरीका आदि के उन्नत देशों को इसके लिए अनेक आन्दोलन करने पड़े और इस समय भी वहाँ कई देशों में स्त्रियों को यह अधिकार यथेष्ट प्राप्त नहीं है। इंगलैंड में स्त्रियों को दीर्घकालीन संघर्ष के बाद यह सन् १९२८ में जाकर मिला। भारतीय नारियों ने इसे पुरुषों के साथ ही आसानी से पा लिया है।

संयुक्त निर्वाचन; कुछ अपवाद—नये संविधान में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली भी समाप्त कर दी गयी, जो राष्ट्रीयता की घातक थी। देश के नागरिक अब भारतीय संघ के नागरिक होने के नाते मतदान करेंगे, हिन्दू और मुसलमान होने के नाते नहीं। प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक निर्वाचन-नामावली होगी और सब निर्वाचन संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली के अनुसार होंगे। परन्तु अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा एंग्लो-इन्डियनों आदि अल्प-संख्यकों के लिए कुछ स्थान लोकसभा में, उनकी जनसंख्या के आधार पर, सुरक्षित रखे गये हैं।

एंग्लो-इन्डियनों के लिए यह व्यवस्था की गयी है कि यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि इस समुदाय को लोकसभा में यथेष्ट प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो

सका है तो वह इस समुदाय में से दो सदस्य तक मनोनीत कर सकेगा, इससे अधिक नहीं।

स्वायत्त राज्यों के विधान-मण्डल में अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए स्थान सुरक्षित हैं। राज्यों की विधान-सभाओं में इनका प्रतिनिधित्व उनकी जन-संख्या, तथा राज्यों की विधान-सभाओं की कुल सदस्य-संख्या, के अनुपात से होगा। यदि किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख का यह मत हो कि उस राज्य की विधान-सभा में एंग्लो-इन्डियन समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उचित संख्या में उस समुदाय के सदस्य मनोनीत कर सकेगा।

अनुसूचित जातियों व जनजातियों एवं एंग्लो-इन्डियनों को इस प्रकार के जो विशेष संरक्षण प्रदान किये गये हैं, वे संविधान लागू होने के १० वर्ष तक (२६ जनवरी १९६० तक) ही लागू होंगे।

निर्वाचन-कमीशन—संविधान के अंतर्गत एक निर्वाचन-कमीशन की व्यवस्था की गयी है। इसका कार्य संसद और प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल के लिए, तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पदों के लिए निर्वाचक-नामावली तैयार करना, और सब निर्वाचनों का संचालन करना होगा। निर्वाचनों में जो झगड़े या विवादग्रस्त प्रश्न उपस्थित होंगे, उनका निर्णय करने के लिए यह कमीशन पंच-अदालतों की नियुक्ति करेगा। इस कमीशन में एक मुख्य कमिश्नर और आवश्यकतानुसार अन्य कमिश्नर होंगे। इनकी नियुक्ति, संसद द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, राष्ट्रपति करेगा। राज्यों के विधान-मंडलों के चुनाव में निर्वाचन-कमिश्नरों को सहायता प्रदान करने के लिए प्रादेशिक कमिश्नर होंगे, उनकी नियुक्ति भी राष्ट्रपति करेगा।

निर्वाचन-कमिश्नरों की सेवा आदि के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार राष्ट्रपति को है, परन्तु वह मुख्य निर्वाचन-कमिश्नर को उसी दशा में, तथा उसी रीति से हटा सकेगा, जैसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। अन्य निर्वाचन-कमिश्नर मुख्य निर्वाचन-कमिश्नर के परामर्श बिना, अपने-अपने पद से नहीं हटाये जा सकेंगे।

निर्वाचक-सूची—संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के एक या दोनों सदनों के निर्वाचन के वास्ते प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए एक साधारण निर्वाचक-नामावलि होगी। कोई भी व्यक्ति धर्म, मूलवंश (नस्ल), जाति, लिंग के आधार पर ऐसी नामावलि में सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र न होगा और ऐसे किसी निर्वाचन-क्षेत्र के लिए किसी विशेष निर्वाचक-नामावलि में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।

उपर्युक्त नियमों को ध्यान में रखकर प्रत्येक निर्वाचन के अवसर पर देश में संसद, तथा राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचक सूचियाँ बनायी जाती हैं। प्रत्येक नागरिक को, जो पहले बताये हुए नियमों के अनुसार मतदाता हो सकता है, चाहिए कि वह अपना नाम सूची में देख ले; यदि उसका नाम सूची में न हो तो समुचित समय पर आपत्ति उठा कर उसमें अपना नाम दर्ज करा ले।

निर्वाचन-क्षेत्रों का विभाजन—निर्वाचन-क्षेत्रों के विभाजन सम्बन्धी कानून बनाने का अधिकार संसद को है। प्रत्येक राज्य को भी अपने विधान-मंडल के निर्वाचन के सम्बन्ध में ऐसे विषयों सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार होगा, जिनके सम्बन्ध में संसद ने विधि द्वारा कुछ नियम न बनाये हों। राज्य या संसद द्वारा निर्वाचन सम्बन्धी बनायी हुई विधि के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा निश्चित करना या निर्वाचन क्षेत्रों के स्थान बाँटना है, किसी न्यायलय में कोई आपत्ति न की जा सकेगी।

हमारे देश में आर्थिक, सामाजिक आदि कई प्रकार की विभिन्नताएँ हैं। इसलिए प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा निर्धारित करते हुए इन दृष्टियों से विचार किया जाना जरूरी है :—१—आर्थिक हित, २—देहाती और शहरी हित, ३—भाषा, रहनसहन और संस्कृति की एकता, ४—भौगोलिक एकता ५—शासकीय सुविधाएँ। इन सब बातों का ध्यान रखना बहुत कठिन है। निर्वाचन-क्षेत्र-निर्धारण समिति के यथेष्ट सावधान रहने पर भी इस विषय में कुछ गलतियाँ होनी सम्भव है। इसलिए आवश्यक है कि ये इस सम्बन्ध में सार्वजनिक कार्यकताओं से परामर्श लेते हुए काम करें।

मताधिकार का उपयोग—संविधान द्वारा वयस्क मताधिकार की व्यवस्था होने से सर्व-साधारण जनता को राजनैतिक शक्ति प्राप्त हो गयी है, पर इसका लाभ तभी है, जब इसका यथेष्ट उपयोग हो। प्रत्येक मतदाता को चाहिए कि उसे विधान-सभा के निर्माण में भाग लेने का जो कार्य सौंपा गया है, उसे वह अपना मत देकर पूरा करे। भारत में बहुत से मतदाता या निर्वाचक निर्वाचन के समय मत देने के लिए जाते ही नहीं। जनता की राजनैतिक विषयों में उपेक्षा चिन्तनीय है। मताधिकारियों को मत देकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

निर्वाचन निष्पक्ष हो—मताधिकार के उपयोग होने के समान, वरन् उससे भी अधिक महत्त्व का विषय यह है कि निर्वाचन निष्पक्ष हो, और मत योग्य उम्मेदवार को ही दिये जाएँ। प्रायः जिस दल (पार्टी) का शासन होता है, उसी दल के उम्मेदवारों की ओर सरकारी कर्मचारियों का झुकाव हुआ करता है; वे उनके साथ कुछ रियायतें करने तथा उन्हें कुछ सुविधाएँ देने की सोचा करते हैं। यह अनुचित है। चुनाव-अधिकारियों को चाहिए कि निर्भय होकर अपना कर्तव्य पालन करें। कोई दल जीते या कोई दल हारे, उन्हें इसकी चिन्ता न करनी चाहिए। वे किसी नागरिक को यह कहने का अवसर न दें कि चुनाव में अधिकारियों ने मतदाताओं पर अनुचित प्रभाव या दबाव डाला।

नागरिकों का कर्तव्य—इस प्रसङ्ग में अधिकारियों की तरह, जनता का भी बहुत उत्तरदायित्व है। कुछ राजनैतिक दल, उम्मेदवार या उनके एजेंट निर्वाचकों से जाति, धर्म (सम्प्रदाय) आदि के नाम पर अपील करते हैं, उन्हें आर्थिक या अन्य प्रलोभन देते हैं, और मारपीट करने या अन्य हानि पहुँचाने का डर दिखाते हैं। कुछ लोग तो इन निन्दनीय कामों पर ऐसे उतर आते हैं कि निर्वाचन शांति-पूर्वक नहीं होने पाते। नागरिकों को चाहिये कि मतदाताओं के अपने अधिकार का उपयोग करने में किसी प्रकार बाधक न हों, और उन्हें भरसक सहायता दें।

आजकल राज्यों के बड़े होने के कारण निर्वाचन-क्षेत्र भी बड़े-बड़े होते हैं। भारत के राज्यों की विधान-सभाओं के चुनाव के लिए एक-एक निर्वाचन क्षेत्र में चालीस हजार से पचास हजार तक निर्वाचक होंगे और केंद्रीय विधान सभा (लोकसभा) के लिए तो ४ लाख तक होंगे।* ऐसी दशा में यह आशंका रहती है कि मतदाता, उम्मेदवार की योग्यता को जाने बिना ही, केवल प्रचार से प्रभावित होकर अपना मत दें। प्रचार में ऐसे खर्चीले ढङ्ग काम में आने लगे हैं कि जिन व्यक्तियों तथा राजनैतिक दलों के पास धन तथा आने-जाने के साधन अधिक होते हैं, उनकी ही जीत की आशा अधिक होती है। प्रायः उम्मेदवार और राजनैतिक दल चुनाव के समय जनता के सामने झूठे वायदे करते और 'सब्ज बाग' दिखाया करते हैं। इन बातों में कोई सार नहीं होता, ये तो मतदाताओं को फँसाने की चालें होती हैं। निर्वाचकों को इनसे सतर्क रहना और खूब सोच समझ कर मत देना चाहिए।

मतदाताओं का उत्तरदायित्व—मतदाता की गलती से अयोग्य व्यक्ति विधान-सभा का सदस्य चुना जा सकता है। इसका दुष्परिणाम सब नागरिकों को कई वर्ष (अगले निर्वाचन) तक भुगतना पड़ता है। इस प्रकार मतदाता पर यह उत्तरदायित्व है कि वह योग्य उम्मेदवार को ही मत दे; योग्य का अर्थ यह कि वह विधान-सभा में अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन कर सके, किसी विषय पर विचार करते समय उसका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक या स्वार्थ-मय न हो, उसमें लोकसेवा की भावना हो। बहुत से मतदाता अपने यार-दोस्त, या अपनी जाति।बिरादरी या सम्प्रदाय वाले उम्मेदवार को मत दे देते हैं; केन्द्रीय निर्वाचन में अपने राज्यों के उम्मेदवार की, और राज्य सम्बन्धी निर्वाचन में अपने जिले के उम्मेदवार की, सफलता चाहते हैं। भावों की ऐसी संकीर्णता का परित्याग किया जाना चाहिए।

---

* निर्वाचन क्षेत्र जितना बड़ा होगा, उतनी ही वहाँ गन्दगी, बेईमानी भ्रष्टाचार अधिक होगा। इससे बचने के लिए परोक्ष निर्वाचन अपनाना चाहिए। देखिए हमारी 'राजव्यवस्था, सर्वोदय दृष्टि से'।

मतदाताओं की शिक्षा—लोकतंत्र की सफलता बहुत-कुछ नागरिकों की योग्यता पर निर्भर है। इसके लिए साक्षरता ही काफी नहीं है, हमारे नागरिकों को यथेष्ट राजनैतिक शिक्षा भी मिलनी चाहिए। इस ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। निर्वाचन-सम्बन्धी शिक्षा का कार्य कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं को अपने ऊपर विशेष रूप से लेना चाहिए, वे बारहों महीने लेखों, भाषणों, ट्रेक्टों तथा ग्रन्थों द्वारा इस कार्य को करती रहें। अच्छा हो, प्रत्येक गाँव या ग्राम-समूह में तथा प्रत्येक नगर में एक-एक निर्वाचक-सभा की स्थापना हो। इन सभाओं का उद्देश्य अपने-अपने क्षेत्र के निर्वाचकों में नागरिक समस्याओं और आवश्यकताओं को जातिगत या साम्प्रदायिक दृष्टि से न देखकर, उनके सम्बन्ध में विशुद्ध नागरिक दृष्टिकोण रखने की प्रवृत्ति बढ़ाना, होना चाहिए। यह कार्य बहुत-कुछ मौखिक या जबानी तौर से भी हो सकता है। खासकर जब कि भारतवर्ष में बियासी फीसदी आदमी लिखना-पढ़ना नहीं जानते, यहाँ निर्वाचकों की शिक्षा के लिए व्याख्यान, उपदेश, कथा कहानी, और शिक्षाप्रद प्रहसन, नाटक, सिनेमा आदि का विशेष उपयोग होना चाहिए।

मतदान पद्धति; 'एकल संक्रमणीय मत'—अब मत देने की पद्धति के सम्बन्ध में विचार करें। समय-समय पर कई प्रकार की चुनाव-प्रणालियों का आविष्कार और चलन हुआ। यहाँ हम 'एकल संक्रमणीय मत प्रणाली' का परिचय देते हैं, जो नये संविधान में राष्ट्रपति और राज्यपरिषद् के चुनाव के लिए निर्धारित की गयी है। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक मतदाता को यह सूचित करने का अवसर दिया जाता है कि वह सब उम्मेद-वारों में, सबसे अधिक किसे पसन्द करता है; और उससे कम किसे; और इसी प्रकार तीसरे और चौथे आदि नम्बर पर किसे पसन्द करता है। जिस उम्मेद-वार को वह सबसे अधिक पसन्द करता है, उसके नाम के आगे '१' लिख देता है; जिस उम्मेदवार को वह दूसरे नम्बर पर पसन्द करता है, अर्थात् शेष उम्मेदवारों में से जिसे वह सबसे अधिक पसन्द करता है, उसके नाम के आगे '२' लिख देता है। इसी प्रकार मतदाता '३', '४', संख्या उन उम्मेदवारों के

नाम के सामने लिख देता है, जिन्हें वह इस क्रम से पसन्द करता है। इस प्रकार मतदाता यह सूचित कर सकता है कि सर्व-प्रथम उसके मत का उपयोग किस उम्मेदवार के लिए हो, और यदि उस उम्मेदवार को उसके मत की आवश्यकता न हो (वह उम्मेदवार अन्य मतदाताओं के मतों से ही चुन लिया जाय) तो उस मत का उपयोग किस दूसरे उम्मेदवार के लिए हो और यदि दूसरे उम्मेदवार को भी उस मत की जरूरत न हो तो किस तीसरे या चौथे उम्मेदवार के लिए उसका उपयोग किया जाय।

उम्मेदवारों की सफलता का हिसाब लगाने के लिए पहले यह देखा जाता है कि किसी उम्मेदवार को कम-से-कम कितने मतों की आवश्यकता है। मतों की इस संख्या को 'कोटा', 'पर्याप्त संख्या, या 'आनुपातिक भाग' कहते हैं। इसे समझने के लिए कल्पना करो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र से दो उम्मेदवारों को चुना जाना है और वहाँ सौ मतदाता हैं तो जिन उम्मेदवारों को ३४—३४ मत मिल जाएँगे, वे सफल हो जाएँगे; क्योंकि तीसरे को यदि शेष सब मत भी मिल जाएँ तो उसके प्राप्त मतों की संख्या अधिक-से-अधिक ३२ होगी। इस दशा में पर्याप्त संख्या कुल मतों की तिहाई अर्थात् ३३ से एक अधिक है। निदान, कुल मतों को निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या में एक जोड़ कर, उससे भाग देने से, तथा भजनफल में एक जोड़ देने से 'पर्याप्त संख्या' मालूम हो जाती है।

इस बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह सकते हैं :—

$$\text{पर्याप्त संख्या} = \frac{\text{मत संख्या}}{\text{प्रतिनिधि संख्या} + १} + १$$

जो उम्मेदवार प्रथम पसन्द के इतने मत प्राप्त कर लेते हैं, जो पर्याप्त संख्या के समान या उससे अधिक हों, वे निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं। इन चुने हुए व्यक्तियों के जितने मत पर्याप्त संख्या से अधिक होते हैं, उन्हें 'सरप्लस' अथवा फाजिल या अतिरिक्त मत कहा जाता है। यह मत अपर्याप्त संख्या के मत वाले उम्मेदवारों में, (दूसरी पसन्द के हिसाब से) बाँटे जाते हैं। यदि ऐसा करने पर आवश्यकतानुसार उम्मेदवार निर्वाचित

नहीं होते तो पर्याप्त संख्या से कम मत वाले उम्मेदवारों में से जिसके मत सब से कम होते हैं, उसे असफल घोषित करके, उसके प्राप्त मतों का उपयोग उन उम्मेदवारों के लिए किया जाता है, जिनके लिए वे मत दूसरी पसन्द में रखे गये हों। यह क्रिया उस समय तक होती रहती है, जब तक कि जितने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करना है, उतने निर्वाचित न हो जाएँ।

इस प्रणाली में यह लाभ रहता हैं कि मतदाता का कोई मत व्यर्थ नहीं जाता, अर्थात् ऐसा नहीं होता कि उसका उपयोग न हो; और, वह मत किसी ऐसे व्यक्ति को भी नहीं मिलता, जिसे उसकी आवश्यकता न हो।

उम्मेदवार की योग्यता; डा० भगवानदास का मत—आधुनिक लोकतंत्रों के संविधान में एक बड़ा दोष यह होता है कि उनमें उम्मेदवार की यथेष्ट योग्यता निर्धारित नहीं की जाती। हम यह आशा लगाये हुए थे कि भारत के नये संविधान में यह अभाव नहीं रहेगा। खेद है कि यह आशा पूरी नहीं हुई। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भी इस बात पर दुख प्रगट किया है कि संविधान में विधान-सभा के सदस्यों के लिए किसी भी प्रकार की उच्च योग्यता का आग्रह नहीं किया गया।

सुप्रसिद्ध विचारक डा० भगवानदास का बहुत समय से यह मत रहा है कि—

उम्मेदवार में निम्नलिखित योग्यता (गुण) होनी चाहिए :—

(क) समाज के इन चार मुख्य धर्मों (कार्यों) में से किसी एक का वह विशिष्ट अनुभवी हो—(१) ज्ञान विज्ञान, (२) शासन-कार्य (रक्षा और प्रबन्ध कर्म) (३) धन धान्योत्पादन अर्थात् कृषि, शिल्प, वाणिज्य-व्यापारादि, (४) शरीर-श्रम (मजदूरी)।

(ख) सामाजिक जीवन के किसी विभाग में उसने अच्छा काम किया हो, और सद्बुद्धि (ईमानदारी, नेकनीयती) और लोक-हितैषिता का सुयश कमाया हो।

(ग) उसे इतना अवकाश हो कि धर्म-सभा (विधान-सभा) के काम को अच्छी तरह कर सके और जीविका साधन अथवा धन-संचय के कार्यों से निवृत्त हो चुका हो, पर ऐसी निवृत्ति अनिवार्य न हो।

"धर्म-सभा (विधान-सभा) के किसी सदस्य को कोई नकदी पुरस्कार या वेतन, सभा का काम करने के बदले में न दिया जाय पर उस कार्य के लिए उसका जो कुछ विशेष व्यय हो—यथा सफर-खर्च, मकान का किराया आदि—वह सब उसको सरकारी खजाने से, राष्ट्र-कोष से दिया जाए, और विशेष सम्मान के चिह्न भी उसको दिये जाएँ।"

विशेष वक्तव्य—यही व्यवस्था उत्तम है कि कोई व्यक्ति न तो स्वयं किसी संस्था का सदस्य होने के लिए उम्मेदवर बने, और न अपने पक्ष में मत माँगने के लिए स्वयं अथवा अपने एजंटों द्वारा मतदाताओं के दरवाजे खटखटाए। यदि बहुत से निर्वाचक उससे उम्मेदवार होने की प्रार्थना करें तो वह उम्मेदवार होना स्वीकार कर ले और जनता को यह सूचित कर दे कि यदि मेरा निर्वाचन हो जायगा तो मैं इस कार्य-भार को स्वीकार कर लूँगा। इस प्रकार कार्य होने लगे तो निर्वाचन-आन्दोलन बहुत सुधर जाए और इसकी बहुत सी खराबियाँ दूर हो जाएँ।

× × ×

पहला लोकतन्त्रीय निर्वाचन—सन् १९५१-५२ में भारत का पहला आम चुनाव संसार भर के इतिहास में सबसे बड़ा प्रयोग था। उसमें १७ करोड़ ६० लाख मतदाताओं को, २२ राज्य-विधान सभाओं के लिए १७ हजार उम्मेदवारों में से ३२७८, और लोकसभा के लिए ४८९ प्रतिनिधि चुनने थे। ये चुनाव साढ़े तीन माह में पूरे हुए। इनके संचालन में लगभग ५ लाख ६० हजार कार्यकर्त्ता लगे। देश भर में २४ हजार मतदान-केन्द्र थे।

विधान-सभाओं के चुनाव में लगभग १० करोड़ ३५ लाख ९२ हजार, तथा संसद के चुनाव में १० करोड़ ७५ लाख ७८ हजार निर्वाचकों ने मत दिया। मतदान हिमांचल प्रदेश जैसे यातायात की कठिनाइयों वाले भाग में ३० प्रतिशत से लेकर त्रावणकोर जैसे साक्षर भागों में ७० प्रतिशत तक रहा।

दसवाँ अध्याय

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति

राष्ट्रपति राज्य का प्रधान है, कार्यपालिका का नहीं; वह राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, शासन नहीं।

—डा० भीमराव अम्बेडकर

नये संविधान सम्बन्धी साधारण बातों का विचार कर चुकने पर अब हम शासन सम्बन्धी विषयों का ब्योरेवार वर्णन करते हैं। सङ्घ का सर्वोच्च अधिकारी उसका राष्ट्रपति है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन—राष्ट्रपति निर्वाचित होता है, उसके चुनाव की पद्धति कुछ जटिल है, इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। उसका निर्वाचन एक ऐसा निर्वाचक-मंडल करेगा, जिसमें दो प्रकार के सदस्य होंगे :—

(क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य।

(ख) राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य।

[संसद और विधान-सभाओं के नामजद सदस्यों को निर्वाचन में मत देने का अधिकार नहीं होगा।]

निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार होगा; और मत-गणना में एकल संक्रमणीय मत पद्धति काम में लायी जाएगी। (यह पद्धति पिछले अध्याय में समझायी जा चुकी है) । निर्वाचन में विविध राज्यों के प्रतिनिधित्व में यथा-सम्भव एकरूपता रखने की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार संसद के सदस्यों के कुल मत राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों के कुल मतों के बराबर होंगे। इस बात के लिए एक विशेष रीति निर्धारित की गयी है। उसमें प्रत्येक राज्य की जनसंख्या का

लिहाज रखा गया है; कुछ राज्यों में एक-एक सदस्य निर्वाचक सौ-सौ से भी अधिक मत देगा।

एक उदाहरण—इस प्रणाली के अनुसार किसी राज्य की विधान-सभा का एक-एक सदस्य कितने मत देगा, यह इस प्रकार मालूम होगा—राज्य की जनसंख्या को विधान-सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग दिया जाएगा, और भागफल को १००० से भाग दिया जाएगा। अब जो भागफल आयेगा, उतने ही मत प्रत्येक सदस्य के माने जाएँगे। उदाहरण के लिए उत्तरप्रदेश में जनसंख्या ६,१६,२०,००० है और विधान-सभा के सदस्य ४३० हैं। जनसंख्या में ४३० का, और एक हजार का भाग देने से पूर्ण अंक १४३ आता है (यदि शेष आधे से कम हो तो छोड़ दिया जाता है, और अगर आधा या आधे से अधिक हो तो उसे पूरा गिन लिया जाता है) इस प्रकार उत्तरप्रदेश की विधान-सभा का प्रत्येक सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में १४३ मत देगा। इसी प्रकार अन्य राज्यों के सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। अब राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की जो कुल मत-संख्या होगी, उसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या का भाग दिया जाएगा। जो भागफल होगा, उतने मत संसद का एक-एक सदस्य देगा।

इस जटिल पद्धति के अपनाए जाने के कारण—भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति को इतना जटिल और पेचीदा बना देने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

भारतीय सङ्घ के राज्यों के क्षेत्रफल और जनसंख्या में भारी विभिन्नता है। उदाहरण-स्वरूप उत्तरप्रदेश की जनसंख्या ६ करोड़ से अधिक है तो मध्यभारत की ८० लाख के ही लगभग। ऐसी स्थिति में राज्यों को निर्वाचन में समप्रतिनिधित्व, अथवा. राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों को बराबर मत देने, का अधिकार देना अन्याय-मूलक था। उपरोक्त समस्या को हल करने के लिए दो साधनों का प्रयोग किया गया है। प्रथम तो राष्ट्रपति के निर्वाचन में भिन्न-भिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व एक से मापमान यानी जनसंख्या के आधार पर होगा। इस प्रकार बड़े राज्य की विधान-सभा के सदस्य को

छोटे राज्य की विधान-सभा के सदस्य से अधिक मत देने का अधिकार होगा, क्योंकि वह छोटे राज्य की विधान-सभा के सदस्य के मुकाबले में अधिक जन-संख्या का प्रतिनिधित्व करता है।

दूसरी बात यह है कि समस्त राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों के मतों की संख्या का योग संसद के दोनों सदनों के सदस्यों की मत-संख्या के योग के बराबर होगा। उदाहरण के तौर पर यदि समस्त राज्यों की विधान-सभा के सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में ३००,६०० मत देंगे तो संसद के सदस्यों के मत की संख्या भी इतनी ही होगी। इस भाँति राष्ट्रपति के निर्वाचन में संसद के सदस्यों और राज्यों के विधान-सभाओं के सदस्यों की शक्ति बराबर है; और दोनों प्रकार के निर्वाचकों से प्राप्त मतों को जोड़कर राष्ट्रपति के निर्वाचन का फल निकाला जाता है।

कुछ राजनीतिज्ञों का, जिसमें प्रोफेसर शाह का नाम मुख्य है, मत था कि राष्ट्रपति का निर्वाचन इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से न होकर प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। परन्तु व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण उनका मत स्वीकार न किया जा सका। भारत में प्रौढ़ मताधिकार होने से यहाँ मतदाता लगभग अठारह करोड़ हैं। इतने व्यक्तियों के मतदान की व्यवस्था करना कुछ सरल कार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति केवल वैधानिक प्रधान है, उसका निर्वाचन परोक्ष होने से कोई विशेष सैद्धान्तिक हानि भी नहीं मानी जाती।

[संविधान २६ जनवरी १६५० से प्रयोग में आया। उसके अनुसार संसद के दोनों सदनों और राज्यों की विधान-सभाओं का सङ्गठन सन् १६५२ में हुआ। इस अन्तर्कालीन अवधि यानी नवीन निर्वाचन होने तक के लिए राष्ट्रपति चुनने का अधिकार तत्कालीन संसद को दिया गया था; उसने डा० राजेन्द्रप्रसाद को चुना था। सन् १६५२ के चुनाव से भी ये ही राष्ट्रपति चुने गये।]

राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए योग्यता—राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए उम्मेवार के लिए आवश्यक है कि (१) वह भारत का नागरिक

हो (२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और (३) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो। इसके साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार या किसी ऐसे स्थानीय या अन्य अधिकारी के अधीन, जिस पर इन सरकारों में किसी का भी नियंत्रण हो, कोई लाभ का पद ग्रहण न करता हो। सङ्घ के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल (गवर्नर) या राजप्रमुख, सङ्घ अथवा किसी राज्य के मंत्री पर उपरोक्त प्रतिबन्ध लागू न होगा। ये व्यक्ति राष्ट्रपति के पद के लिए खड़े हो सकेंगे।

राष्ट्रपति निर्वाचित होने वाला व्यक्ति संसद के किसी सदन का या किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं रह सकेगा। यदि निर्वाचन से पूर्व कोई व्यक्ति इनमें से किसी का सदस्य था तो निर्वाचित होने की तिथि से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अन्य किसी आर्थिक लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकेगा। [यह प्रतिबन्ध इस लिए रखा गया है कि राष्ट्रपति पर देश के पूँजीपति आदि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अपना प्रभाव न डाल सकें।]

जो व्यक्ति राष्ट्रपति है अथवा रह चुका है, वह इस पद के लिए पुनः कितनी ही बार निर्वाचित हो सकेगा [इस व्यवस्था में साधारण दृष्टि से कोई दोष प्रतीत नहीं होता, तथापि इस से तानाशाही की उत्पत्ति हो सकती है। अच्छा होता, जो व्यक्ति एक बार राष्ट्रपति रह चुके, उसे दुबारा यह पद मिलने की व्यवस्था न होकर, दूसरे ही योग्य व्यक्तियों को इस पद की प्राप्ति का अधिक अवसर दिया जाता।]

राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता तथा शपथ—राष्ट्रपति का मासिक वेतन १०,००० रु० होगा।* इसके अतिरिक्त उसे राज्य की ओर से रहने के लिए निवास-स्थान निश्शुल्क दिया जायगा। राष्ट्रपति को भत्ते आदि की सुविधाएँ उस प्रकार की दी जायँगी जैसा कि संसद विधि द्वारा निश्चित

---

* राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इसमें कमी करके ६००० रु० मासिक लेना स्वीकार किया है।

करे। संसद के इस विषय की विधि निर्माण करने से पूर्व तक राष्ट्रपति को वे सब सुविधाएँ आदि प्रदान की जाएँगी, जो पहले गवर्नर जनरल को दी जाती रही थीं। राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता तथा अन्य सुविधाएँ उसके कार्यकाल में घटायी नहीं जा सकेंगी।

राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति के सामने निर्धारित रूप में शपथ ग्रहण करके उस पर हस्ताक्षर करेगा। शपथ का आशय यह होगा कि मैं अपनी पूर्ण योग्यता से संविधान और विधि की रक्षा करूँगा और भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।

राष्ट्रपति का कार्यकाल (पदावधि)—साधारण दशा में राष्ट्रपति का कार्यकाल उसके पदग्रहण की तिथि से पाँच वर्ष का होगा। इसमें निम्न-लिखित दशाओं में अन्तर भी पड़ सकता है :—

(क) राष्ट्रपति पाँच वर्ष की अवधि के अन्दर त्यागपत्र देकर अपने पद से हट सकता है। इस प्रकार का त्यागपत्र वह उपराष्ट्रपति को संबोधित करके और उस पर अपने हस्ताक्षर करके देगा। उपराष्ट्रपति इस त्यागपत्र की सूचना लोकसभा के अध्यक्ष को देगा।

(ख) यदि राष्ट्रपति संविधान का उल्लंघन करे तो उस पर पाँच वर्ष की अवधि के अन्तर्गत ही महाभियोग लगाकर उसे पद से हटाया जा सकता है। महाभियोग लगाने का अधिकार संसद के किसी भी सदन को है। जो सदन राष्ट्रपति पर महाभियोग लगायेगा, उसे इस आशय के संकल्प को उपस्थित करने के १४ दिन पहले लिखित सूचना देनी होगी और उस सूचना पर सदन के कम-से-कम चौथाई सदस्यों के सहमति-सूचक हस्ताक्षर होंगे। जब संकल्प को सदन के दो-तिहाई से अधिक सदस्य मत-प्रदान करके पास कर देंगे तो वह दूसरे सदन में जाँच और अनुसंधान के लिए भेज दिया जायगा। राष्ट्रपति को स्वयं या उसके प्रतिनिधि को इस अनुसंधान में उपस्थित रहने का अधिकार होगा। यदि इस सदन में दोषारोप को सिद्ध करने वाला संकल्प दो-तिहाई बहुमत से पास हो जाय तो राष्ट्रपति उसी तिथि से अपने पद से अपदस्थ समझा जायगा। महाभियोग सम्बन्धी,

संसद के निर्णय की अपील किसी भी न्यायालय में न हो सकेगी और, राष्ट्रपति के कार्य-काल समाप्त होने से पूर्व ही नवीन राष्ट्रपति का निर्वाचन कर लिया जायगा।

यदि राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र अथवा उस पर महाभियोग साबित होने पर, कार्यकाल की समाप्ति के पूव ही उसका स्थान रिक्त हो जाए तो जल्दी से जल्दी, छः मास के अन्दर ही, नया राष्ट्रपति निर्वाचित कर लिया जाएगा और उसका कार्यकाल पाँच वर्ष होगा। जब तक नवीन राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं होगा, उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति का कार्य करेगा।

(ग) राष्ट्रपति की मृत्यु से उसका पद रिक्त हो सकता है।

(घ) राष्ट्रपति अपने पद पर, अपना कार्यकाल समाप्त होने पर भी, उस समय तक बना रहेगा जब तक कि उसका नवीन उत्तराधिकारी उसका पद ग्रहण नहीं कर लेता।

राष्ट्रपति के अधिकार—संसार के समस्त संघ-शासन प्रणाली वाले देशों के प्रधानों की तुलना में भारतीय संघ के राष्ट्रपति के अधिकारों का क्षेत्र कहीं अधिक है। ये अधिकार दो प्रकार के हैं:—देश की साधारण स्थिति में, और संकट काल में। साधारण स्थिति सम्बन्धी अधिकारों के पाँच भेद किये जा सकते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति को कुल मिलाकर निम्न-लिखित छह प्रकार के अधिकार हैं—

१—कार्यपालिका सम्बन्धी अर्थात् शासन सम्बन्धी अधिकार।

२—विधायनी शक्ति अर्थात् कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार।

३—वित्तीय अर्थात् अर्थ सम्बन्धी अधिकार।

४—न्याय सम्बन्धी अधिकार।

५—विशेषाधिकार।

६—संकटकालीन अधिकार।

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार—संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में होगी; इस शक्ति के क्षेत्र में वे समस्त विषय होंगे, जिनके सम्बन्ध में संसद को विधि निर्माण करने का अधिकार है; उसे ऐसे अधिकार

भी होंगे जो भारत सरकार को किसी संधि या समझौते के आधार प्राप्त हुए हैं। राष्ट्रपति देश की समस्त सेनाओं का प्रधान है और इस नाते उसे युद्ध की घोषणा करने और सन्धि करने का भी अधिकार है। राष्ट्रपति देश का शासन सुचारू रूप से चलाने के लिए नियम निर्माण करेगा और मन्त्रियों के कार्य का विभाजन करेगा। संघ के कार्यपालिका सम्बन्धी सब कार्य राष्ट्रपति के नाम पर होंगे।

सङ्घ के सारे प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा ही होगी। इन अधिकारियों के सम्बन्ध में प्रसंगानुसार आगे प्रकाश डाला जाएगा। भारतीय संघ के प्रधानमन्त्री की, तथा उसकी सलाह से अन्य मन्त्रियों की, नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। राज्यों के राज्यपालों की, राजप्रमुखों की, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की, निर्वाचन-कमिश्नरों की; राज्य-परिषद् के नामजद होने वाले १२ सदस्यों की और आडीटर-जनरल, एटार्नी-जनरल तथा कुछ अन्य पदाधिकारियों की भी नियुक्ति राष्ट्रपति ही करेगा।

(२) कानून-निर्माण संबन्धी अधिकार—राष्ट्रपति को संसद के अधिवेशन को आमंत्रित करने, उसे स्थगित करने तथा संसद को भंग करने का अधिकार है।

संसद के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयक यानी बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उसके सम्मुख उपस्थित किये जाने चाहिएँ। उसकी स्वीकृति के बगैर, वे विधि (कानून) न बन सकेंगे। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह धन-विधेयक को छोड़कर किसी भी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने से इन्कार कर दे। परन्तु यदि ऐसा विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा, संशोधित या असंशोधित रूप से, दुबारा पास कर दिया जाए तो राष्ट्रपति को उस पर स्वीकृति देनी ही होगी। किसी प्रकार के धन-विधेयक और अर्थ विधेयक संसद में राष्ट्रपति की सिफारिश के बगैर प्रस्तावित न किये जा सकेंगे।

किसी भी समय जब संसद का अधिवेशन न हो रहा हो, राष्ट्रपति को अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी करने का अधिकार होगा और इस

अध्यादेश का प्रभाव वैसा ही होगा, जैसा संसद द्वारा स्वीकृत अधि-नियमों (एक्ट) का। इस प्रकार के समस्त अध्यादेश संसद के सामने रखे जाएँगे। ये संसद के अधिवेशन के आरम्भ होने की तिथि से छह सप्ताह तक ही जारी रहेंगे; तत्पश्चात रद्द हो जाएँगे। यदि संसद छह सप्ताह बीतने के पूर्व ही इनको रद्द करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास कर दे तो ये उससे पूर्व भी रद्द हो जायँगे। ऐसे अध्यादेश उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में जारी किये जा सकेंगे, जिन पर संसद को विधि-निर्माण करने का अधिकार है।

राष्ट्रपति को राज्यों के विधान-मंडलों के सम्बन्ध में निम्नलिखित अधिकार हैं—

१—राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा स्वीकृत निम्नलिखित विषयों सम्बन्धी विधि राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रखी जायँगी और उसकी स्वीकृति प्राप्त होने पर ही अमल में आ सकेंगी—(अ) राज्य द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए बनायी हुई विधि, (आ) वे विधि जो ऐसे विषयों के लिए बनायी गयी हैं, जिनके लिए संसद भी विधि बना सकती है और जिनका संसद की विधियों से विरोध हो, तथा (इ) जिन वस्तुओं को संसद ने नागरिकों के जीवन के लिए आवश्यक ठहराया हो, उनके क्रय-विक्रय पर कर लगाने वाली विधि।

२—किसी राज्य के अन्दर या दूसरे राज्यों के साथ व्यापार आदि पर प्रतिबन्ध लगाने वाले विधेयकों को राज्य की विधान-सभा में प्रस्तुत करने के पहले राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक होगी।

३—संकट की घोषणा करके राष्ट्रपति राज्य के विधान-मंडलों के अधि-कार अपने हाथ में लेकर संसद को सौंप सकता है।

(३) वित्त या अर्थ सम्बन्धी अधिकार—राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह प्रत्येक आर्थिक वर्ष के प्रारंभ में एक आर्थिक विवरण, जिसमें संघ की उस वर्ष की अनुमानित आय-व्यय का ब्योरा हो, संसद के सामने रखे। संसद से किसी भी मद के लिए धन की माँग राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही की जा सकती है।

राष्ट्रपति को आय-कर से प्राप्त रकम, संघ तथा राज्यों में, वितरण करने का अधिकार है। उसे जूट के निर्यात-कर से प्राप्त आय का कुछ भाग आसाम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल को उनके हिस्से के रूप में देने का अधिकार है। राष्ट्रपति को एक वित्तायोग (अर्थ कमीशन) नियुक्त करने का अधिकार है, जो राज्यों की सहायता तथा करों की आय-वितरण के सम्बन्ध में व्यवस्था करेगा; ऐसा कमीशन संविधान लागू होने के दिन (२६ जनवरी १९५०) से दो वर्ष के अन्दर नियुक्त कर देना होगा। इसके पश्चात् प्रति पाँच वर्ष के उपरांत नये कमीशन की नियुक्ति की जाया करेगी।

(४) न्याय सम्बन्धी अधिकार—राष्ट्रपति को क्षमा-प्रदान करने का अधिकार है। इस अधिकार के अंतर्गत वह निम्नलिखित अवस्थाओं में किसी दण्ड-प्राप्त व्यक्ति को पूर्ण रूप से क्षमा कर सकता है, उसके दण्ड को कुछ काल के लिए स्थगित कर सकता है, दण्डाज्ञा को रुकवा सकता है और दण्ड को कम भी कर सकता है—(क) जब दण्ड सैनिक न्यायालय ने दिया हो। (ख) जब दंड संघ के किसी कानून के लिए दिया गया हो, (ग) जब मृत्यु दंड दिया गया हो।

(५) राष्ट्रपति के विशेषाधिकार— राष्ट्रपति अपने शासन सम्बन्धी और राजकीय कार्यों के लिए न्यायालय के सामने उत्तरदायी न होगा। उसके विरुद्ध उसके कार्यकाल में किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही न की जा सकेगी। उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी न किया जा सकेगा। उसके विरुद्ध, उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से किसी कार्य के सम्बन्ध में, कोई दीवानी कार्यवाही उस समय तक नहीं की जायगी, जब तक कि उसे दो माह पूर्व लिखित सूचना न दी गयी हो।

(६) संकटकालीन अधिकार—राष्ट्रपति को संकट का सामना करने के लिए वृहत् और प्रभावपूर्ण अधिकार हैं। सङ्कट तीन प्रकार के हो सकते हैं (क) युद्ध, या युद्ध की संभावना, अथवा आन्तरिक अशान्ति से

उत्पन्न सङ्कट। (ख) राज्यों में संविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की स्थिति से उत्पन्न संकट। (ग) आर्थिक सङ्कट।

(क) युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति के समय—राष्ट्रपति को यदि किसी समय यह विश्वास हो जाय कि भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा युद्ध, वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति से सङ्कट में है तो वह सङ्कटकाल की घोषणा करके समस्त देश का अथवा देश के किसी भाग का शासन अपने हाथ में ले सकता है। उसे सङ्कटकाल की घोषणा उस दशा में भी करने का अधिकार होगा, जब उसे विश्वास हो जाय कि निकट भविष्य में युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति से देश की सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो सकता है। [इस घोषणा को राष्ट्रपति कभी भी दूसरी घोषणा द्वारा रद्द कर सकता है।] ऐसी घोषणा की जाने के बाद वह संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और दो माह तक लागू रहेगी, यदि इसी बीच संसद ने उस पर स्वीकारात्मक सम्मति दे दी तो वह दो माह के बाद भी लागू रहेगी। यदि इस प्रकार की घोषणा उस समय की गयी, जब कि लोकसभा भङ्ग कर दी गयी हो या वह दो माह के अवधि के भीतर ही भङ्ग हो जाय और लोकसभा के भङ्ग होने से पूर्व इस घोषणा पर उसकी स्वीकृति न प्राप्त हो सके और केवल राज्य परिषद् की स्वीकृति प्राप्त हो तो घोषणा नयी लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के दिन से ३० दिन तक लागू रहेगी और उसके बाद रद्द हो जायगी। परन्तु यदि नयी लोकसभा इन ३० दिन के अन्दर ही उस पर स्वीकारात्मक सम्मति दे दे तो वह उसके बाद भी लागू रहेगी।

सङ्कटकाल की घोषणा के द्वारा राष्ट्रपति भारत के संघीय संविधान को एकात्मक रूप में बदल सकेगा। जब तक यह घोषणा लागू रहेगी तब तक :—

(१) संसद को राज्य-सूची में दिये हुए विषयों पर सारे देश अथवा उसके किसी भी भाग के लिए विधि निर्माण करने का अधिकार होगा और किसी राज्य द्वारा बनायी हुई ऐसी विधि, जो इस घोषणाकाल में संसद द्वारा निर्मित विधि के विरुद्ध होगी, अवैध या शून्य समझी जायगी।

(२) सङ्घ सरकार किसी भी राज्य को आदेश दे सकेगी कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस प्रकार प्रयोग करे।

(३) निम्नलिखित मूल अधिकार स्थगित रहेंगे—(अ) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, (आ) शान्ति-पूर्वक, बिना हथियार के सभा करने की स्वतन्त्रता, (इ) समुदाय और संघ बनाने की स्वतन्त्रता, (ई) भारत की भूमि में किसी स्थान में रहने या बसने की स्वतन्त्रता, (उ) सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा बेचने की स्वतन्त्रता, और (ऊ) किसी भी व्यवसाय, पेशा अथवा व्यापार करने की स्वतन्त्रता।

(४) राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि मूल अधिकारों को अमल में लाने के लिए किसी व्यक्ति को उच्चतम तथा अन्य न्यायालयों में जाने के अधिकार को स्थगित कर दे।

(५) राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि संघ और राज्यों के बीच राजस्व-वितरण के सम्बन्ध के प्रार्थनापत्र स्वीकार न करे।

यह कहा जा सकता है कि युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न सङ्कट का सामना करने के ये अधिकार बहुत ही वृहत् और व्यापक हैं। यह आशा की जाती है कि राष्ट्रपति इनका उपयोग मंत्रिपरिषद के परामर्श से ही करेगा, परन्तु संविधान में ऐसा कोई बन्धन नहीं रखा गया है।

(ख) राज्यों में संविधान तंत्र के विफल हो जाने की दशा में— यदि राष्ट्रपति को किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की सूचना मिले कि राज्य में संविधान के अनुसार शासन-कार्य चलाना असम्भव हो गया है और उसे यह विश्वास हो जाय कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है, तो वह घोषणा द्वारा (१) उस राज्य के विधान-मंडल एवं उच्च न्यायालय के अधिकारों को छोड़कर राज्य के शेष सब कार्य और अधिकारों को अपने हाथ में ले सकता है। (२) यह आदेश दे सकता है कि उस राज्य के विधान-मंडल का काम संसद द्वारा या उसके आदेश से किया जायगा। इस घोषणा को राष्ट्रपति कभी भी दूसरी घोषणा द्वारा रद्द कर सकता है।

यह घोषणा संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और दो माह तक लागू रहेगी; परन्तु यदि इस बीच में संसद ने उसे स्वीकार कर लिया तो वह दो माह के बाद भी लागू रहेगी। संसद द्वारा स्वीकार किये जाने के बाद यह घोषणा छः माह रहेगी बशर्ते कि इसे छः माह के पूर्व ही रद्द न कर

दिया जाए। यदि संसद छः माह के बाद भी इसे स्वीकार करती जाय तो इस प्रकार की घोषणा अधिक से अधिक तीन वर्ष तक लागू रह सकेगी। यदि इस प्रकार की घोषणा कभी ऐसे समय पर की गयी हो जब कि लोकसभा भङ्ग कर दी गयी हो या उसका भंग दो माह की अवधि के भीतर ही हो जाय और भंग होने से पहले लोकसभा की स्वीकृति प्राप्त न हो सके और केवल राज्यपरिषद की स्वीकृति प्राप्त हो, तो घोषणा नयी लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के दिन से ३० दिन तक लागू रहेगी और उसके बाद रद्द हो जाएगी; परन्तु यदि ३० दिन की अवधि के भीतर ही लोकसभा उसे स्वीकार कर ले तो वह उसके बाद भी लागू रहेगी। इसी प्रकार की व्यवस्था उस समय काम में लायी जायगी जब घोषणा दोनों सभाओं में पास हो जाए और लोकसभा इसके बाद छः माह के अन्दर भङ्ग हो जाय।

स्मरण रहे कि ऐसी घोषणा करने के लिए राष्ट्रपति को राज्यपाल या राजप्रमुख की सूचना की प्रतिक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं ही ऐसी घोषणा कर सकता है। किसी राज्य में संविधानिक तंत्र सफल रूप से चल रहा है या नहीं, इसका निर्णय राष्ट्रपति करेगा। संघ सरकार को, राज्यों की सरकार को जो निर्देश देने का अधिकार है, यदि उनका पालन ठीक प्रकार से न हो तो राष्ट्रपति का यह मानना विधि संगत होगा कि राज्य में संविधान-तन्त्र असफल हो चुका है और वह इस आशय की घोषणा करके उस राज्य का शासन अपने हाथ में ले सकेगा। इस प्रकार राष्ट्रपति को, राज्यों को दबाने के बड़े वृहत् और प्रबल अधिकार प्राप्त हैं।

सन् १९३५ के विधान के अनुसार ऐसी परिस्थिति में गवर्नर को यह अधिकार था कि वह राज्य के विधान-मंडल का कार्य अपने हाथ में ले ले। नये संविधान में यह अधिकार राज्यपालों या उनकी कार्यपालिका को न देकर संसद को दिया गया है। यहाँ यह न भूलना चाहिये कि संसद में उस राज्य का भी प्रतिनिधित्व होता है। इस प्रकार यह व्यवस्था इस विचार से की गयी है कि संविधानिक तंत्र के असफल होने की दशा में उस राज्य के सम्बन्ध में

विधि-निर्माण सारे देश के प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए, न कि केवल उस राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा।

संसद इस स्थिति में विधि-निर्माण का अधिकार राष्ट्रपति, राज्यपाल या अन्य किसी अधिकारी को भी दे सकती है। इस प्रकार कार्यपालिका किसी राज्य के सम्बन्ध में विधि-निर्माण तभी कर सकेगी जब कि संसद उसे ऐसा करने का अधिकार प्रदान कर दे।

यह निर्विवाद है कि उपरोक्त अधिकारों का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए, अन्यथा राज्यों की आन्तरिक स्वतंत्रता नष्ट हो जायगी। संविधान-निर्माताओं ने यह आशा प्रकट की है कि राष्ट्रपति संकट की घोषणा बहुत सोच-विचार करके करेगा।

(ग) **वित्तीय अर्थात् आर्थिक संकट**—यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिसमें भारत की आर्थिक स्थिरता एवं साख को खतरा है तो वह इस आशय की घोषणा कर सकेगा। [यह घोषणा बाद में किसी भी दूसरी घोषणा से रद्द की जा सकेगी।] यह घोषणा संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और दो माह तक लागू रहेगी। परन्तु यदि इस बीच में संसद ने उसे स्वीकार कर लिया तो वह दो माह के बाद भी लागू रहेगी। यदि ऐसी घोषणा उस समय की गयी जब कि लोक-सभा भंग कर दी गयी हो या वह दो माह के भीतर भंग हो जाय और उसके भंग होने के पहले घोषणा पर स्वीकृति प्राप्त न हो सके तो वही व्यवस्था काम में लायी जायगी, जो युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति के संकट की घोषणा के लिए निर्धारित है।

जब तक यह घोषणा लागू रहेगी, राष्ट्रपति और संघ की सरकार किसी भी राज्य को आर्थिक मामलों में निश्चित सिद्धान्तों का पालन करने का निर्देश दे सकेगी, इन निर्देशों के अन्तर्गत राष्ट्रपति (१) सरकारी नौकरों का वेतन कम करने का आदेश दे सकता है। (२) राज्यों के विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत धन-विधेयक तथा वित्त या अर्थ विधेयक को अपनी स्वीकृति के लिए रोक रखने का आदेश दे सकता है।

राष्ट्रपति के अधिकारों की आलोचना—राष्ट्रपति के अधिकारों के विवेचन से यह स्पष्ट है कि उसके सम्पूर्ण अधिकारों का वर्गीकरण दो भागों में किया जा सकता है :—

(१) जिनका उपयोग वह देश की साधारण दशा और दैनिक शासन में करेगा।

(२) जिनका उपयोग वह संकट उपस्थित होने पर करेगा।

देश के दैनिक और साधारण शासन में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा और व्यर्थ के हस्तक्षेप नहीं करेगा। यदि वह ऐसा करना भी चाहे तो वह व्यावहारिक न होगा, क्योंकि मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी होगी और को लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा। यदि राष्ट्रपति देश के दैनिक शासन में ऐसे मंत्रिपरिषद के परामर्श की अवहेलना करता है तो मंत्रिपरिषद को वाध्य होकर त्याग-पत्र देना होगा। मंत्रिपरिषद के पदरिक्त होने की दशा में राष्ट्रपति दूसरे मंत्रिपरिषद का निर्माण करना चहेगा। ऐसा करने में राष्ट्रपति सफल न हो सकेगा, क्योंकि लोकसभा का बहुमत तो उस मंत्रिपरिषद को प्राप्त था, जिसने वाध्य होकर अपना पद रिक्त किया।

असाधारण परिस्थितियों में जब देश की शान्ति और सुरक्षा आदि के लिए संकट उपस्थित हो तो राष्ट्रपति का अपने विवेक से कार्य करने का अधिकार उचित ही है, अन्यथा कोई उपाय तुरन्त कार्यान्वित न किया जा सकेगा। विचार-विमर्श और वाद-विवाद में बहुत अधिक समय निकल जाना स्वाभाविक है और इसके फल-स्वरूप राष्ट्र पर गम्भीर विपत्ति भी आ सकती है। यह आशा की जाती है कि संकट की स्थिति में राष्ट्रपति राष्ट्र के हित को सर्वोपरि रखेगा, और वह अपने कर्तव्य का पालन इस बात को भी ध्यान में रखकर करेगा कि उस पर सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता का विश्वास है।

राष्ट्रपति के वृहत् और प्रभावपूर्ण अधिकारों को देखकर यह आशंका होती है कि वह कभी भी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके अधिनायक (तानाशाह) बन सकता है। इस स्थिति से बचाव करने के लिए राष्ट्रपति पर संसद द्वारा महाभियोग लगाकर उसे अपने पद से हटाने की व्यवस्था की

गयी है। यह आशा की जाती है कि यह व्यवस्था राष्ट्रपति को अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने पर प्रतिबन्ध लगाती रहेगी। महाभियोग सम्बन्धी संसद का निर्णय सर्वोपरि होगा और उसके निर्णय की अपील किसी अन्य न्यायालय में न हो सकेगी। इसका प्रभाव राष्ट्रपति पर यह होगा कि वह संसद यानी जनता की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करने का प्रयत्न नहीं करेगा। इस व्यवस्था में संविधान-निर्माताओं की मूलगत भावना भारत में एक ऐसे लोकतन्त्र की स्थापना करने की थी, जिसमें सरकार की शक्तियों का प्रयोग जनता की इच्छा के अनुसार हो। यह निर्विवाद है कि मंत्रिपरिषद को लोक सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा और इसे एक प्रकार से जनता का ही समर्थन समझना चाहिए। कोई भी राष्ट्रपति जो संविधान के शब्दों और उसकी भावना को तथा अपनी प्रतिज्ञा को तनिक भी महत्व देगा, साधारण दशा में मंत्रिपरिषद के परामर्श के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ जनता की इच्छा के विरुद्ध कार्य करना होगा।

उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकालना ठीक न होगा कि राष्ट्रपति वैधानिक प्रधान से कुछ अधिक न होगा। यदि वह असाधारण व्यक्तित्व वाला हो तो वह निश्चित रूप से मंत्रिपरिषद के निर्णयों को प्रभावित करने में समर्थ होगा। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति संघ के अधिकार-क्षेत्र के समस्त मामलों को बहुत-कुछ अपनी इच्छानुसार करा सकेगा। राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री की नियुक्ति का भी अधिकार होगा और यदि किसी समय दो से अधिक राजनैतिक दल होंगे और संयोग से कोई एक राजनैतिक दल अपना निश्चित बहुमत लोकसभा में रखने में समर्थ न हुआ तो राष्ट्रपति को किसी भी दल के नेता को मंत्रिपरिषद के निर्माण करने के लिए निमंत्रित करने की स्वतन्त्रता होगी। इस प्रकार वह मंत्रिपरिषद और शासन की नीति को स्थिर रखने में बहुत सहायक होगा।

राष्ट्रपति के पद का महत्व—निम्नलिखित बातों से राष्ट्रपति का महत्व स्पष्ट हो जाएगा :—

राष्ट्र का प्रतीक—साधारण आदमी स्वभावतः व्यक्ति-पूजक होता है। इसलिए जनता किसी व्यक्ति को ही राष्ट्र का प्रतीक मानकर अपना सम्मान

प्रगट करती है। व्यावहारिक दृष्टि से यह आवश्यक भी है। राज्य के आदेशों, आज्ञाओं आदि का सर्वसाधारण तभी पालन करते हैं, जब वे ऐसा करना अपना कर्तव्य समझते हैं और उनकी उनके प्रति श्रद्धा होती है। इसीलिए समस्त आज्ञाएँ एवं अध्यादेश राष्ट्रपति के नाम से ही घोषित किये जाते हैं। राष्ट्र का प्रतीक होने से राष्ट्रपति अनायास ही देश के नागरिकों में एकता, संगठन, त्याग, देश-प्रेम एवं अपने संविधान के प्रति आदर का भाव संचारित करता है।

संक्रमण-काल में स्थायित्व प्रदान करने वाला— यदि कभी देश में दो से अधिक राजनैतिक दल हुए और किसी एक दल का संसद में स्पष्ट बहुमत न हुआ तो मंत्रिपरिषद समय-समय पर बदलेगी। यदि कभी बीच में कुछ समय तक मंत्रिपरिषद् न बन पायी तो राष्ट्रपति ही देश का शासन-भार सम्हालेगा, और उसे गृह-युद्ध अथवा आन्तरिक अशांति से बचायेगा। वह ऐसे समय राजनैतिक गतिरोध उत्पन्न होने की संभावना को भी हटा देगा। देश में निर्वाचन आदि के कार्यों को निष्पक्ष रूप से करवाने के लिए राष्ट्रपति का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वही एक ऐसा व्यक्ति है जो कार्यपालिका का प्रधान होते हुए भी राजनैतिक दलबन्दियों से ऊपर है।

लोकतंत्र का रक्षक—देश की राजनीति में कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है, जब मंत्रिपरिषद् को संसद के बहुमत का तो समर्थन प्राप्त हो किन्तु देश की जनता का नहीं, यानी संसद ही देश की जनता का उचित प्रतिनिधित्व न करती हो। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति संपूर्ण देश का नेता होने के नाते संसद को भंग कर सकता है और नवीन निर्वाचन करा के नयी संसद का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार राष्ट्रपति एक ओर लोकतंत्र की रक्षा करेगा और दूसरी ओर आन्तरिक विद्रोह से, राज्य की रक्षा भी करने में समर्थ होगा।

संकट-काल में राष्ट्र का अधिनायक—युद्ध अथवा वाह्य आक्रमण की स्थिति में लोकतंत्रात्मक शासन उतना सफल सिद्ध नहीं होता, जितना कि अधिनायक का शासन। इस विचार से भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को संकटकालीन अधिकार दिये गये हैं। ये अधिकार किसी अन्य अधिकारी को

नहीं दिये जा सकते, क्योंकि राष्ट्रपति ही ऐसा व्यक्ति है, जिससे इन अधिकारों का दुरुपयोग होने की आशंका सबसे कम है।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्र का प्रतिनिधि—अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व राष्ट्रपति ही करता है। उसकी वाणी राष्ट्र की वाणी है। युद्ध और संधि की घोषणा वही करेगा। प्रधान मंत्री भी यह कार्य कर सकता था, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय जगत की परिपाटी ऐसी है कि इस प्रकार के महत्वपूर्ण निश्चयों की घोषणा सब लोग राज्य के प्रधान से चाहते हैं, कार्यपालिका के प्रधान से नहीं।

भारत के संघात्मक संविधान में संसद पद्धति की सरकार तथा एकात्मक और संघात्मक शासनपद्धतियों के गुणों का समावेश राष्ट्रपति के पद को स्थापित करके ही किया जा सका है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति ही संविधान का केन्द्र-विन्दु है; जिसके आधार पर संविधान द्वारा स्थापित समस्त संस्थाएँ अपना कार्य करेंगी। यदि उसे निकाल दिया जाय तो फिर उनका आपस में सामंजस्य स्थापित करना कठिन होगा।

उपराष्ट्रपति

भारतीय संघ का एक उपराष्ट्रपति होगा। उसका निर्वाचन संसद के संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा, आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर, एकल हस्तान्तर-योग्य मत-पद्धति से होगा। मतदान सर्वथा गुप्त होगा। उपराष्ट्रपति होने के लिए किसी भी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यता होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो, (२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, (३) राज्य-परिषद् का सदस्य चुना जाने की योग्यता रखता हो (४) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के भी द्वारा नियंत्रित, किसी स्थानीय अथवा दूसरे अधिकारियों के अधीन, किसी लाभ के पद पर न हो। [राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संघ के अथवा किसी राज्य के मंत्री के पद को लाभ का पद न समझा जायगा और इन लोगों के उपराष्ट्रपति होने पर कोई प्रतिबन्ध न होगा।]

उपराष्ट्रपति संसद के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं हो सकता। उपराष्ट्रपति अपने पद के कारण, राज्य-परिषद् का सभापति होगा। उसका कार्य-काल पाँच वर्ष होगा। राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, पदत्याग अथवा पद से हटाये जाने के कारण रिक्त होने पर, उपराष्ट्रपति उसके पद का कार्य उसके शेष कार्यकाल तक नहीं, वरन् उस समय तक करेगा, जब तक राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं हो जाता। संविधान के अनुसार यह समय अधिक से अधिक छः माह होगा। राष्ट्रपति अस्थायी रूप से, अस्वस्थता या अन्य किसी कारण-वश अपना कार्य करने में असमर्थ हो तो उपराष्ट्रपति उसका पद-भार उस समय तक सम्हालेगा, जब तक राष्ट्रपति अपना काम फिर से न करने लगे।

उपराष्ट्रपति अपने कार्यकाल के अन्दर, राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर, अपना पद त्याग सकेगा। राज्य-परिषद् भी उसे, अयोग्यता अथवा अविश्वास का प्रस्ताव बहुमत से पास करके, उसके पद से अलग कर सकती है। ऐसे प्रस्ताव पर लोकसभा की स्वीकृति आवश्यक है और इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए १४ दिन की सूचना देना आवश्यक होगा।

उपराष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति के कारण रिक्त हुए स्थान की पूर्ति के लिए, उसका कार्य-काल समाप्त होने से पूर्व ही निर्वाचन कर लिया जायगा। उपराष्ट्रपति की मृत्यु, पद-त्याग या अपदस्त किये जाने पर अथवा किसी अन्य कारण से रिक्त हुए पद की पूर्ति के लिए, यथा-सम्भव शीघ्र और छः मास बीतने से पूर्व, निर्वाचन कर लिया जायगा और नव-निर्वाचित उपराष्ट्रपति पाँच वर्ष पर्यन्त अपने पद पर बना रहेगा।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी विवादों का निर्णय—राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित सभी विवादों और भ्रमों की परीक्षा तथा निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा होगा और वह निर्णय अन्तिम होगा। राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में संसद नियम निर्माण करेगी।

ग्यारहवाँ अध्याय

मंत्रिपरिषद्

मंत्रिपरिषद् का कार्य विधान-सभा तथा शासन-सभा का समन्वय करना है। मंत्रिपरिषद् का निर्माण, उसका जीवन तथा विलय तीनों प्रधान मन्त्री पर अवलम्बित रहेंगे और मंत्रिपरिषद् का स्वरूप, यश तथा अपयश बहुत-कुछ उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होंगे। इस दृष्टि से राष्ट्रपति से अधिक महत्व प्रधान मन्त्री का रहेगा।

—न० वि० गाडगिल

पिछले अध्याय में राष्ट्रपति के सम्बन्ध में लिखा गया है, आगे संसद् का विचार करने से पहले इस अध्याय में मंत्रिपरिषद् का वर्णन करना उपयुक्त होगा। बात यह है कि मंत्रिपरिषद् एक ऐसी कड़ी है, जो राष्ट्रपति को और संसद् को जोड़ती है। राज्य के समस्त शासन-यंत्र का आधार मंत्रिपरिषद् है, सरकारी नीति सम्बन्धी सब निश्चय मंत्रिपरिषद् द्वारा ही होंगे। वैधानिक रूप से संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में अवश्य है, परन्तु व्यवहार से उसका कार्य-संचालन मंत्रिपरिषद् के ही द्वारा होगा।

मन्त्रिपरिषद् का संगठन—मंत्रिपरिषद् का प्रमुख, प्रधान मंत्री होगा उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा, और प्रधान मंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करेगा। मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी है, इस कारण मंत्रियों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को कोई विशेष स्वतंत्रता न होगी। साधारण अवस्था में राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत रखने वाले राजनैतिक दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करेगा। प्रधान मंत्री अपनी नियुक्ति के पश्चात् यह विचार करेगा कि उसे अपनी मंत्रिपरिषद् में किन-किन सदस्यों को लेना है। इस प्रश्न का निश्चय करने के लिए वह

अपने राजनैतिक दल की मीटिंग में विचार भी कर सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रधान मंत्री समस्त मंत्रियों को अपने ही राजनैतिक दल में से चुने। वह अन्य दलों के भी योग्य व्यक्तियों को मंत्रिपरिषद् में ले सकता है। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों का निश्चय करने के पश्चात् प्रधान मंत्री राष्ट्रपति को मंत्रियों और विभागों के नाम दे देगा। राष्ट्रपति उसके परामर्श के अनुसार उन व्यक्तियों को विभिन्न विभागों के मंत्रि-पदों पर नियुक्त कर देगा। यदि राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार प्रधान मंत्री और मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को नियुक्त करना चाहे तो यह सम्भव न होगा; क्योंकि यदि वह बहुमत दल के नेता को प्रधान मंत्री न चुन कर किसी अन्य दल के नेता को प्रधान मंत्री चुनता है तो वह व्यक्ति, लोकसभा के विश्वास के अभाव में, शासन-कार्य चलाने में सर्वथा असमर्थ होगा।

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह प्रधान मंत्री को अपने पद से हटा दे। परन्तु ऐसा करना उसके लिए संभव न होगा। यदि प्रधान मंत्री (उस दल का नेता जिसका संसद में बहुमत हो) हटा दिया जाय अथवा राष्ट्रपति द्वारा उसके परामर्श को न माने जाने की दशा में, वह अपने पद से त्यागपत्र दे दे तो राष्ट्रपति या तो लोकसभा को भंग कराकर इसका नया निर्वाचन करवायेगा अथवा दूसरे दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करेगा। पहली स्थिति में संभव है नवीन निर्वाचन में वही राजनैतिक दल फिर लोकसभा में बहुमत प्राप्त कर ले। इस दशा में राष्ट्रपति को उसी दल के नेता को प्रधान मंत्री चुनना होगा। दूसरी स्थिति में लोकसभा को बगैर भंग किये यदि किसी दूसरे दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया तो ऐसा प्रधान मंत्री लोकसभा के विश्वास के अभाव में सरकार का कार्य न चला सकेगा। एक वैधानिक संकट उत्पन्न हो जायगा; अन्त में पहले प्रधान मंत्री को ही फिर नियुक्त करना होगा। निदान, मंत्रिपरिषद् का लोक-सभा में बहुमत रहते, राष्ट्रपति प्रधान मंत्री को अपनी इच्छा से न हटा सकेगा।

प्रधान मंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार कार्य उस स्थिति में अवश्य कर सकेगा, जब लोकसभा में राजनैतिक दल कई एक हों और

किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत न हो। उस स्थिति में राष्ट्रपति किसी भी दल के नेता को बुलाकर मंत्रिपरिषद् का निर्माण करने को कह सकेगा। अल्प मत होते हुए भी निमंत्रित होने के पश्चात् ऐसा व्यक्ति अन्य दलों की सहायता से मंत्रिपरिषद् बनाने में सफल हो जायगा। ऐसी दशा में राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार किसी मंत्रिपरिषद् को उसके पद से हटा भी सकेगा, क्योंकि दूसरी मंत्रिपरिषद् के संगठन में, संसद में अनेक दल होने के कारण, अधिक बाधा उपस्थित नहीं होगी।

मंत्रियों के लिए यह आवश्यक है कि वे संसद के सदस्य हों। हाँ कोई ऐसा व्यक्ति भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है, जो आरम्भ में संसद के किसी सदन का सदस्य न हो। ऐसे व्यक्ति के लिए यह आवश्यक होगा कि वह छः महीने के अन्दर संसद के किसी सदन का सदस्य बन जाए, अन्यथा उसे अपने पद से हटना पड़ेगा। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि देश के लोकप्रिय नेता ही मंत्री पद प्राप्त करें। परन्तु इसमें एक कमी है। संविधान के अन्तर्गत संघ की ऊपरली सभा यानी राज्यपरिषद् में बारह सदस्य मनोनीत रहेंगे और मनोनीत सदस्य भी मंत्री हो सकता है। इस प्रकार कोई व्यक्ति जो लोकप्रिय नहीं है और निर्वाचन में नहीं जीत सका, उसे राज्यपरिषद् का सदस्य मनोनीत करा कर मंत्रिपरिषद् में लिया जा सकेगा। परन्तु सामूहिक उत्तरदायित्व इस में बाधक होगा, क्योंकि एक मंत्री की हार समस्त मंत्रिपरिषद् की हार होगी। प्रधानमंत्री अलोकप्रिय लोगों को मंत्रिपरिषद् में लेने का आसानी से साहस नहीं करेगा।

मंत्रियों की शपथ—प्रत्येक मंत्री को पदाभार ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के सम्मुख दो प्रकार की शपथ ग्रहण करनी होगी। प्रथम तो पद-शपथ होगी, जो इस प्रकार है—

"मैं...अमुक......ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, संघ के मंत्री के रूप में अपने कर्तव्य का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अन्तःकरण से पालन करूँगा; तथा भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना सब प्रकार के लोगों के प्रति संविधान के अनुसार न्याय करूँगा।"

इसके अतिरिक्त प्रत्येक मंत्री मंत्रिपरिषद् के निर्णयों एवं कार्यों को पूर्ण रूप से गुप्त रखने के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रतिज्ञा लेगा—

"मैं......अमुक......ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि जो विषय संघ-मन्त्री के रूप में मेरे विचार के लिए लाया जायगा अथवा मुझे ज्ञात होगा, किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को, उस अवस्था को छोड़कर जब कि ऐसे मन्त्री के रूप में अपने कर्तव्य के उचित निर्वहन के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, अन्य अवस्था में मैं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सूचित या प्रकट नहीं करूँगा।"

मंत्रियों की श्रेणियाँ और उनका वेतन—यद्यपि संविधान में केवल 'मन्त्री' शब्द का उपयोग किया गया है, व्यवहार में मन्त्रियों के तीन भेद हैं।

१—मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के स्तर (केबिनेट रैंक) के मन्त्री। ये सबसे ऊँची श्रेणी के हैं।

२—राज्य-मन्त्री (मिनिस्टर्स-आफ-स्टेट)। ये मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में भाग नहीं लेते। जब उनके विभाग सम्बन्धी किसी विषय पर विचार होता है तब उन्हें बुला लिया जाता है।

३—उपमन्त्री (डिप्टी मिनिस्टर)। ये अधीन या सहायक कर्मचारियों की तरह होते हैं।

संविधान के अनुसार मन्त्रियों के वेतन और भत्ते के विषय में संसद समय-समय पर निश्चय करेगी। जब तक वह निश्चय नहीं करती उनको वही वेतन और भत्ता मिलता रहेगा, जो संविधान के आरम्भ होने के समय मिलता था (तीन हजार रुपये मासिक वेतन और पाँच सौ रुपया मासिक भत्ता)।

मन्त्रियों के वेतन (संशोधन) कानून, १९५० में कहा गया है कि मन्त्रि-परिषद् के प्रत्येक मन्त्री को ३००० रु० प्रतिमास वेतन और ५०० रु० मासिक भत्ता मिलेगा। राज्य-मन्त्री को ३,००० रु० और उपमन्त्री को २,००० रु० मासिक वेतन दिया जायगा।

जुलाई १९५२ में लोकसभा में इस विषय का जो कानून पास किया गया है, उसके अनुसार मन्त्रियों का वेतन २,२५० रु० प्रति माह, तथा उपमन्त्रियों का वेतन १,७५० रु० प्रतिमाह निर्धारित किया गया है।

मन्त्रियों को ५०० रुपये मासिक तक का विशेष भत्ता भी दिया जा सकेगा, जिसे प्राप्त करने के हकदार उपमन्त्री नहीं होंगे। यह भत्ता विभिन्न मन्त्रियों को विभिन्न स्थितियों में जुदा-जुदा दरों के अनुसार दिया जायगा।

[पिछले दिनों श्री केशवदेव मालवीय को जब मंत्री नियुक्त किया गया तो कहा गया कि वे वैज्ञानिक अनुसंधान तथा प्राकृतिक साधन मंत्रालय में मंत्री हैं। पीछे एक प्रेस नोट में कहा गया है कि श्री मालवीय उक्त विभाग के मंत्री भी कहलायेंगे। स्पष्ट है कि यह उनकी एक प्रकार से पदोन्नति है और 'मंत्रालय में मंत्री' और 'मंत्रालय के मंत्री' में कुछ अन्तर है। और, 'मंत्रालय में मंत्री' के रूप में नियुक्तियाँ होना केन्द्रीय मंत्रिमंडल में एक नये वर्ग की रचना की सूचना है।]

मंत्रिपरिषद् का कार्य—संघ के शासन-कार्य का संचालन मंत्रिपरिषद करेगी। संविधान के अनुसार उसका कार्य राष्ट्रपति को परामर्श और उसके कार्य-संपादन में सहायता देना है; परन्तु व्यावहारिक बात यह है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा और संघ के शासन और कार्यपालिका सम्बन्धी समस्त कार्यों का सम्पादन मंत्रिपरिषद, राष्ट्रपति के नाम पर, करेगी। मंत्रिपरिषद विधिनिर्माण के कार्यक्रम का निश्चय करेगी। सब महत्वपूर्ण विधेयकों को संसद में उपस्थित करना उसी का कार्य है। उसके द्वारा उपस्थित विधेयकों का पास होना सुगम होगा; कारण उसका संसद् में बहुमत रहेगा। इसके विपरीत, गैरसरकारी विधेयकों का, जो दूसरे सदस्यों द्वारा संसद में उपस्थित किये जाएँगे, पास होना आसान न होगा; कुछ दशाओं में तो वे संसद में अस्वीकृत ही होंगे।

संघ का आय-व्यय-अनुमानपत्र मन्त्रिपरिषद् ही तैयार करेगी और लगभग समस्त वित्त सम्बन्धी विधेयक उसके द्वारा ही प्रस्तावित किये जायँगे क्योंकि उन पर राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक होगी और अन्य किसी व्यक्ति या दल को राष्ट्रपति की अनुमति मिलना असम्भव होगा। समस्त राष्ट्र की विदेश-नीति का निर्धारण भी मन्त्रिपरिषद ही करेगी।

मन्त्री और विभाग—संघ का शासन-कार्य विविध विभागों में बँटा रहता है, और एक मंत्री के अधीन एक या अधिक विभाग रहते हैं। स्मरण

रहे कि विभागों और मंत्रियों की कोई संख्या स्थायी नहीं है। आवश्यकता और कार्य-विस्तार के अनुसार उसमें अन्तर होता रहता है। मंत्री अपने विभाग या विभागों पर नियंत्रण रखता है। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मन्त्रिपरिषद की सलाह ली जाती है और उस सलाह के अनुसार कार्य किया जाता है। मंत्रियों को उनके मुख्य विभाग के अनुसार सम्बोधित किया जाता है, यथा शिक्षा-मंत्री, अर्थ-मन्त्री आदि। जब किसी कार्य को विशेष रूप से करना होता है तो उसका नया विभाग स्थापित कर, उसे किसी मन्त्री को सौंप दिया जाता है, अथवा जरूरत समझी जाय तो उसके लिए नया ही मन्त्री नियुक्त किया जाता है।

आगे प्रमुख मन्त्रियों और उनके विभागों के कार्यों के बारे में कुछ जानकारी दी जाती है, इससे मन्त्रिपरिषद के कार्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ जायगा।

१---**विदेश-मन्त्री**—विदेश-मन्त्री के नियंत्रण में विदेश विभाग होगा। यह विभाग भारत और अन्य राष्ट्रों के सम्बन्ध, भारत और राष्ट्रमंडल के सदस्य-राष्ट्रों के सम्बन्ध, तथा भारत और संयुक्त-राष्ट्र के सम्बन्धों का नियंत्रण करेगा। भारत की ओर से कूटनीतिक वार्ताएँ, संधियाँ एवं राजदूतों की नियुक्ति और दूतावासों सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ विदेश-मंत्री ही करेगा। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का इतना महत्व है कि इस विभाग का कार्य संघ के प्रमुख कार्यों में है।

२—**गृह-मन्त्री**—गृह-मन्त्री देश के आन्तरिक शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए उत्तरदायी है। देश में आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा बनाये रखना गृह-विभाग का कार्य है। संघ द्वारा शासित राज्यों का (जिनमें पहले की रियासतों का क्षेत्र भी सम्मिलित है) शासन इसी विभाग के द्वारा होगा। चीफ-कमिश्नरों आदि की नियुक्ति यही विभाग करेगा।

३—**शिक्षा-मन्त्री**—यह मंत्री शिक्षा-विभाग का संचालन करता है, और इस प्रकार भारतीय नागरिकों को योग्य और शिक्षित बनाने के लिए उत्तरदायी है। वर्तमान समय में देश में केवल १८ प्रतिशत व्यक्ति ही साक्षर हैं, और सन् १९६० तक चौदह वर्ष तक के सब बालकों की शिक्षा का

प्रबन्ध करना तथा शिक्षापद्धति में भी सुधार करते रहना है। इससे इस विभाग का महत्व स्पष्ट है।

४—**वित्त-मन्त्री**—संघ का वित्त विभाग इस मन्त्री के अधीन है। यह विभाग संसद द्वारा निर्धारित करों को वसूल करेगा, और विविध विभागों को उसके द्वारा निर्धारित धन-राशि देगा। वित्त-मन्त्री प्रति वर्ष संघ का आय-व्यय का लेखा बनायेगा और वही करेन्सी (नोट, सिक्के आदि) और रिजर्व बैंक का नियंत्रण करेगा।

५—**रक्षा-मन्त्री**—इस मन्त्री का काम देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना और स्थल, जल तथा वायु सेनाओं की व्यवस्था करना है। सेनाओं में नियुक्ति आदि इसी विभाग के आदेश से होती है।

६—**श्रम-मन्त्री**—यह मन्त्री श्रम-विभाग का काम संभालता है, श्रमियों को शोषण से बचाने तथा उनका जीवन-स्तर ऊँचा करने का प्रयत्न करता है, और आवश्यक कानून बनवाता है।

७—**संदेश-मन्त्री**—यह मन्त्री संघ की डाक, तार, टेलीफोन आदि की व्यवस्था करता है।

८—**स्वास्थ्य-मन्त्री**—यह मन्त्री जनता के स्वास्थ्य-सुधार और रोग-निवारण का कार्य करता है।

९—**विधि-मन्त्री**—यह मन्त्री संघ के लिए विधियों या कानूनों का निर्माण और संशोधन करता है। किसी विधेयक पर संसद में विचार होने से पूर्व यह विभाग देखेगा कि संविधान तथा विधि (कानून) की दृष्टि से उसमें कोई बात असंगत (बेमेल) तो नहीं है।

१०—**उद्योग-मन्त्री**—इस मन्त्री के अधीन संघ का उद्योग-विभाग होता है। देश में नवीन उद्योगों की स्थापना, स्थापित उद्योगों की कठिनाइयों को दूर करना और देश की समृद्धि को बढ़ाने वाले उद्योगों के लिए योजना बना कर उन्हें कार्यान्वित करना—इस विभाग का कार्य होगा।

११—**कारखाना, खान तथा विद्युत मन्त्री**—देश में विद्युत शक्ति सम्बन्धी योजनाओं का विकास करना तथा कारखाना और खानों का उत्पा-

दन बढ़ाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था करना इस विभाग के मन्त्री का कार्य होगा।

१२—**यातायात-मन्त्री**—यह मंत्री मुख्यतः रेलों तथा अन्य यातायात के साधनों का प्रबन्ध करता है।

१३—**खाद्य-मन्त्री**—इस मंत्री का कार्य देश के खाद्य-संकट को हल करना और कृषि का विकास करके देश को खाद्य सम्बन्धी मामलों में स्वावलम्बी बनाना है।

१४—**पुनर्वासन-मन्त्री**—देश के विभाजन से उत्पन्न शरणार्थियों की समस्या को हल करने अर्थात् शरणार्थियों को बसाने और उन्हें काम में लगाने आदि का कार्य पुनर्वासन-मन्त्री के अधीन है।

१५—**वाणिज्य-मन्त्री**—वाणिज्य-मंत्री का कार्य देश के आन्तरिक और वाह्य वाणिज्य का नियन्त्रण करना है। विदेशों से क्या माल यहाँ आये और कौनसा बाहर भेजा जाये, इसका विचार यही विभाग करता है।

सेक्रेटरी आदि पदाधिकारी—प्रत्येक विभाग के मंत्री द्वारा निर्धारित नीति का पालन करने और उस विभाग के कार्यालय के दैनिक कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रत्येक विभाग का एक सेक्रेटरी होता है। इसका पद स्थायी होता है; मंत्रियों के परिवर्तन से उसके पद पर कोई असर नहीं होता। सेक्रेटरी की सहायता के लिए डिप्टी तथा असिस्टेंट सेक्रेटरी और कुछ क्लर्क होते हैं। सब सेक्रेटरियों का एक विशाल कार्यालय होता है।

कुछ मन्त्रियों के साथ पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी अर्थात् संसदीय सचिव भी होता है, यह संसद का सदस्य होता है और इसका कार्य मन्त्री को संसद सम्बन्धी कार्यों में सहायता देना है। मन्त्रिपरिषद के बदलने पर इसे भी हटना होता है। इसके वेतन और भत्ते के लिए प्रति वर्ष संसद की स्वीकृति ली जाती है। क्योंकि इन पदों पर संसद के सदस्यों की ही नियुक्ति की जाती है, इसलिए संविधान के अनुसार यह आवश्यक होता है कि संसद यह विधि बनाये कि सरकारी कोष से वेतन पाने के कारण इन्हें संसद की सदस्यता से वंचित नहीं किया जायेगा।

मंत्रिपरिषद की कार्य-प्रणाली—साधारणतया मंत्रिपरिषद एक संयुक्त इकाई की तरह काम करती है। सभा प्रति सप्ताह होती है। सभा में सभापति का आसन प्रधान मंत्री ग्रहण करता है। उसमें नीति सम्बन्धी व्यापक विषयों का विचार होता है। प्रत्येक विभाग का मंत्री इस नीति का पालन करता है। सभा के लिए किसी कोरम या मत-दान की आवश्यकता नहीं होती; अकेला प्रधान मन्त्री भी महत्वपूर्ण निश्चय करने में स्वतंत्र है। सभा की सब चर्चा गुप्त रखी जाती है। वित्त-सम्बन्धी वार्ता और आय-व्यय अनुमान-पत्र तो प्रधान मंत्री और वित्त-मंत्री के अतिरिक्त अन्य मंत्रियों को भी नहीं बताया जाता। किसी विभाग के रोजमर्रा के काम के सम्बन्ध में उसका मन्त्री ही निर्णय कर लेता है, अथवा वह प्रधान मन्त्री का परामर्श ले लेता है।

मंत्रिपरिषद का उत्तरदायित्व—मन्त्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। वह जो भी काम करे, या नीति रखे उसकी सफाई देने अथवा उसका औचित्य प्रमाणित करने के लिए प्रधानमन्त्री तथा उसके सहयोगियों को हर समय तैयार रहना होगा। उन्हें लोकसभा के सदस्यों को सदैव संतुष्ट रखना होगा। प्रजातंत्र के आदर्श की दृष्टि से यह आवश्यक है कि मन्त्रिगण कोई ऐसा काम न करें, जो जनता के हित के विरुद्ध हो और जिसे जनता के प्रतिनिधि पसन्द न करते हों। लोकसभा में मंत्रिपरिषद की नीति और कार्यों की स्वतंत्रता-पूर्वक आलोचना की जा सकेगी। यदि किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर लोकसभा का बहुमत मन्त्रिपरिषद की ओर से रखे हुए प्रस्ताव, या कानून सम्बन्धी मसविदे के विरुद्ध हो जाय, तो मन्त्रिपरिषद को पदत्याग करना पड़ेगा। इस प्रकार मन्त्री लोग तभी तक अपने पद पर रह सकेंगे, जब तक उन्हें लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। यदि किसी समय उन्हें ऐसा अनुभव हो कि लोकसभा का उन पर विश्वास नहीं रहा है तो उन्हें त्यागपत्र देना चाहिए।

उत्तरायित्व सामूहिक है—मंत्रिपरिषद का उत्तरदायित्व सामूहिक है। इसका अर्थ यह है कि किसी मंत्री के कार्य के लिए अकेला वही मंत्री उत्तर-

दायी नहीं होगा, वरन् उसके लिए सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद उत्तरदायी होगी। यदि किसी मंत्री की किसी विषय पर लोकसभा में हार हो जाय तो वह मंत्रिपरिषद की हार होगी और उस दशा में संपूर्ण मंत्रिपरिषद को अपना त्यागपत्र देना होगा। किसी मंत्री द्वारा उपस्थित किया हुआ प्रस्ताव समस्त मंत्रिपरिषद का ही प्रस्ताव समझना चाहिए, भले ही प्रस्ताव पर मंत्रियों का आपस में विचार-विनिमय न हुआ हो। सामूहिक उत्तरदायित्व में यह बात भी है कि यदि मंत्रिपरिषद ने अपना कोई निश्चय कर लिया है तो समस्त मंत्रियों को उसका समर्थन करना चाहिए। यदि कोई मंत्री इस निर्णय से असंतुष्ट है तो उसे त्यागपत्र दे देना चाहिए। मंत्रिपरिषद के सदस्य रहते हुए वह उस प्रस्ताव के विरुद्ध मत प्रधान नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त किसी मंत्री को सरकार की नीति के विरुद्ध कोई वक्तव्य नहीं देना चाहिए और न अपने साथियों की सलाह के बगैर उसे सरकार की ओर से कोई वादा करना चाहिए।

[सामूहिक उत्तरदायित्व का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि मंत्रि-परिषद किसी मंत्री की गलती या कुप्रबन्ध की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले। इसी प्रकार यदि कोई एक या अधिक मंत्री भ्रष्टाचार के दोषी हों तो केवल उन मंत्रियों को ही पदत्याग करना होगा, सारी मंत्रिपरिषद को नहीं।]

मंत्रियों सम्बन्धी अन्य बातें—संविधान में कहा गया है कि मंत्री तभी तक अपने पद पर रहेंगे, जब तक कि वे राष्ट्रपति को संतुष्ट रख सकें। इसका अर्थ यह निकलता है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है। किन्तु यह कार्य वह प्रधान मंत्री की सलाह से ही करेगा। यदि किसी मंत्री का कार्य अथवा आचरण आपत्तिजनक साबित हो तो प्रधान मंत्री के कहने पर राष्ट्रपति उसे हटा देगा। हटाने की पद्धति यह होगी कि प्रधान-मंत्री उसे त्यागपत्र देने की प्रेरणा करेगा; यदि वह मंत्री त्यागपत्र दे दे तो मामला निपट जायेगा; परन्तु यदि वह अपने पद का परित्याग न करे तो प्रधान मंत्री अपना तथा पूरी मंत्रिपरिषद का त्यागपत्र देकर नयी मंत्रिपरिषद ऐसी बनायेगा, जिसमें उपर्युक्त व्यक्ति न हो। इस मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति कर देगा।

प्रधान मंत्री का महत्व—प्रधान मंत्री का पद बहुत महत्वपूर्ण है। मंत्रिपरिषद में उसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होगी। परन्तु वास्तविकता यह है कि राष्ट्रपति के द्वारा बहुमत दल का नेता ही प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है। प्रधान मंत्री मंत्रिपरिषद के सदस्यों का चुनाव करता है और उनके विभागों को स्थिर करता है। संविधान में यह नहीं बताया गया कि मंत्रिपरिषद में प्रधान मंत्री का स्थान क्या होगा। यह निर्विवाद है कि वह मंत्रिपरिषद का नेता होगा और साथ हीं साथ लोकसभा के बहुमत दल का भी। मंत्रिपरिषद की सभाओं में वह सभापति रहेगा। नीति निर्धारित करने में उसका प्रमुख हाथ रहेगा। अधिकांश नीति सम्बन्धी मामलों में और महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सरकार की ओर से संसद में वक्तव्य वही देगा। यदि वह प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला हुआ तो संसार के शक्तिशाली शासकों में से एक होगा। वह मंत्रियों का चुनाव ही नहीं करेगा, वरन् आवश्यकता होने पर अपने मंत्रिपरिषद में परिवर्तन भी कर सकेगा। वह किसी मंत्री को अपने पद से त्यागपत्र देने को भी कह सकता है और यदि कोई मंत्री उसके आदेश से ऐसा करना स्वीकार न करे तो वह मंत्रिपरिषद का त्यागपत्र राष्ट्रपति को देकर दूसरे मंत्रिपरिषद का संगठन कर लेगा। संघ की आन्तरिक एवं बाह्य नीति का निर्धारण वही करेगा। संघ की सब शक्तियों एवं संकटकालीन अधिकारों का उपयोग राष्ट्रपति उसके ही परामर्श से करेगा। इस प्रकार युद्ध के समय उसके अधिकार बहुत ही अधिक होंगे।

पहले कहा गया है कि मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य होना आवश्यक है। प्रधान मंत्री चाहे तो ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त करा सकता है, जो संसद का निर्वाचित सदस्य न हो। यह इस तरह कि वह राष्ट्रपति को परामर्श देकर ऐसे व्यक्ति को पहले राज्य-परिषद का सदस्य नामजद करादे (राष्ट्रपति को राज्य-परिषद के लिए १२ सदस्य नामजद करने का अधिकार है), और फिर उस व्यक्ति को राष्ट्रपति द्वारा मंत्री भी नियुक्ति करा दे। राष्ट्रपति साधारण अवस्था में प्रधान मंत्री का परामर्श मान ही लेता है। इस प्रकार प्रधान मंत्री की इच्छा से ऐसा व्यक्ति भी मंत्री नियुक्त हो सकता है, जो लोकसभा का सदस्य न हो।

प्रधान मंत्री मंत्रिपरिषद के निर्णयों तथा शासन सम्बन्धी समस्त मामलों की सूचना राष्ट्रपति को समय-समय पर देता रहेगा। इसके अतिरिक्त संसद में पेश होने वाले प्रस्तावों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति कुछ जानना चाहे तो प्रधान मंत्री उसे उस विषय की पूरी जानकारी देगा। प्रधान मंत्री का यह भी कर्त्तव्य है कि यदि राष्ट्रपति की इच्छा किसी बात को मंत्रिपरिषद के सामने रखने की हो, जिस पर किसी मंत्री ने तो निर्णय किया हो परन्तु जिस पर मंत्रिपरिषद ने विचार न किया हो, तो वह उसे मंत्रिपरिषद के सामने विचारार्थ रखे।

प्रधान मंत्री का कार्य और जिम्मेदारी साधारण नहीं है; बहुत ही चतुर, क्षमताशील, प्रतिभावान और प्रभावशाली व्यक्ति ही उसे पूर्ण कर सकता है। मंत्रियों के निर्वाचन में उसे देखना होगा कि उसके चुनाव से दल के समस्त व्यक्ति प्रसन्न हैं, कोई उससे असंतुष्ट तो नहीं है। जितने भी मंत्री चुने जायँ, वे देश के विभिन्न राज्यों एवं वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हों। कोई वर्ग या राज्य यह न सोचे कि उसका कोई भी प्रतिनिधि मंत्रिपरिषद का सदस्य नहीं है और उसकी जानबूझ कर उपेक्षा की गयी है। यदि प्रधान मंत्री इन बातों का ध्यान नहीं रखेगा तो असके दल में फूट पड़ने की आशंका है। देश के शासन-कार्य को चलाने के अतिरिक्त उसे अपने दल के नेता की हैसियत से भी दल का संगठन बनाये रखना होत; है। मत्रिपरिषद के चुनाव में उसकी इच्छा ही सर्वोपरि नहीं होती, उसे ये सब दृष्टिकोण सामने रखकर एक प्रकार का समझौता सा ही करना होता है। मंत्रियों के चुनाव से भी अधिक महत्व-पूर्ण कार्य मंत्रियों में विभागों का वितरण करना है। इसके लिए इसे प्रत्येक मंत्री की कार्यदक्षता, उसकी न्याय-बुद्धि, शासन-शक्ति तथा उस विभाग सम्बन्धी उसके ज्ञान और रुचि को ध्यान में रखना होता है। मंत्रियों को अपने कार्यों के लिए संसद में उत्तर देना होता है और समाचारपत्र भी उनके कार्यों की आलोचना करते हैं। इसलिए उचित व्यक्तियों को ही ये महात्वपूर्ण कार्य देना ठीक होता है।

मंत्रिपरिषद अपदस्थ कैसे की जा सकती है?—साधारणतया ऐसी मंत्रिपरिषद, जिसे लोकसभा का समर्थन प्राप्त नहीं है, स्वयं ही त्यागपत्र

दे देगी। इसके अतिरिक्त संसद अविश्वास प्रगट करके उसे अपदस्थ कर सकती है। अविश्वास प्रगट करने के ढंग ये हैं :—

(अ) जब आय-व्यय-लेखा संसद में उपस्थित हो तब किसी मंत्री के वेतन में कमी का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया जाय।

(आ) लोकसभा किसी ऐसे प्रस्ताव को पास न करे, जिसे मंत्रिपरिषद् महत्वपूर्ण समझता हो। [यह बात त्यागपत्र का कारण तभी होगी जब मंत्रि-परिषद् इसे विश्वास का प्रश्न बना दे।]

(इ) लोकसभा किसी ऐसे प्रस्ताव को पास कर दे, जिसका मंत्रिपरिषद् विरोध करे और इस प्रस्ताव को विश्वास का प्रश्न बना दे।

(ई) किसी मंत्री के विरुद्ध या उसके विभाग के विरुद्ध लोकसभा निन्दा-त्मक प्रस्ताव पास कर दे।

(उ) लोकसभा मंत्रिपरिषद् की नीति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे।

मन्त्रियों की वर्तमान संख्या—अक्तूबर १९५४ में, नयी नियुक्तियाँ होने से केन्द्रीय मन्त्रियों की कुल संख्या ३४ थी—१४ मन्त्रिपरिषद् के सदस्य, ६ राज्य-मन्त्री और १४ उपमन्त्री। अब 'मंत्रालयों में मन्त्री' और बढ़े हैं।

महान्यायवादी—भारत का एक महान्यायवादी (अटार्नी-जनरल) होगा। इस पद पर राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति को नियुक्त करेगा। महान्यायवादी का कार्य राष्ट्रपति को और भारत सरकार को संविधानिक विषयों पर तथा विधि सम्बन्धी विषयों पर परामर्श देने का होगा। विधि सम्बन्धी जो कार्य राष्ट्रपति महान्यायवादी को सौंपेगा उन्हें पूरा करना उसका कर्तव्य होगा। अपने कर्तव्यों के पालन के लिए महान्यायवादी को भारत राज्यक्षेत्र के सब न्याया-लयों में सुनवाई का अधिकार होगा। महान्यायवादी अपने पद पर उस समय तक बना रहेगा, जब तक राष्ट्रपति चाहे। उसका वेतन राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किया जायेगा।

बारहवाँ अध्याय

संसद् या पार्लिमेंट

भारतीय शासन की सर्वोच्च सत्ता अब भारतीय जनता के हाथ में निहित हो गयी है। जन-प्रतिनिधियों के बहुमत के विरुद्ध कोई मंत्रि-मंडल एक दिन के लिए भी नहीं टिक सकेगा। जनता के प्रतिनिधि संघ के सर्वोच्च अधिकारी राष्ट्रपति को भी हटा सकेंगे।

—शंकरदयालु श्रीवास्तव

पिछले अध्याय में यह बतलाया गया है कि मन्त्रिपरिषद् किस प्रकार देश का शासन-कार्य करती है। अब शासन-नीति निर्धारित करने और आवश्यक विधि-निर्माण आदि कार्य करने वाली संस्था—संसद—का विचार किया जाता है।

संसद के दो सदन—केन्द्रीय विधान मंडल या संसद (पार्लिमेंट) में राष्ट्रपति और दो सदन होंगे—लोकसभा और राज्यपरिषद्। लोकसभा में समस्त देश की जनता के प्रतिनिधि होंगे और राज्यपरिषद् में संघ के राज्यों के प्रतिनिधि। संविधान-सभा के कुछ सदस्यों का मत था कि केन्द्र में केवल लोकसभा ही रखी जाय, दूसरे सदन की कोई आवश्यकता नहीं है, उसे न रखा जाय। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया है, द्वितीय सदन में राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं, और संघ-शासन में राज्यों को भी यथेष्ट महत्व दिया जाना चाहिए; इसलिए राज्यपरिषद् को रखा गया। दूसरे सदन की अन्य उपयोगिता के विषय में आगे प्रकाश डाला जायेगा।

लोकसभा

लोकसभा से अधिक से अधिक ५०० सदस्य होंगे। जम्मू-काश्मीर के छः तथा अन्दमान-निकोबार के एक सदस्य को छोड़कर शेष सब सदस्य जनता

द्वारा प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित होंगे। प्रत्येक ऐसा नागरिक जिसकी आयु २१ वर्ष से कम नहीं है, जो निवास की शर्तें पूरी करता है और पागलपन, भ्रष्टाचार, अपराध अथवा किसी गैर-कानूनी व्यवहार के कारण अयोग्य न ठहराया गया हो, मतदाता हो सकेगा। सन् १९५२ के निर्वाचन के फलस्वरूप लोकसभा में विभिन्न राज्यों के सदस्य निम्नलिखित संख्या में हैं—

राज्य	सदस्य	राज्य	सदस्य
[क वर्ग के राज्य]		राजस्थान	२०
आसाम	१३	सौराष्ट्र	६
बिहार	५५	ट्रावनकोर-कोचीन	१२
बम्बई	४५	[ग वर्ग के राज्य]	
मध्यप्रदेश	२९	अजमेर	२
मद्रास	४६	भोपाल	२
आन्ध्र	२८	विलासपुर	१
उड़ीसा	२०	कुर्ग	१
पंजाब	१८	देहली	४
उत्तर प्रदेश	८६	हिमाचल प्रदेश	३
पश्चिमी बंगाल	३४	कच्छ	२
[ख वर्ग के राज्य]		मनिपुर	२
हैदराबाद	२५	त्रिपुरा	२
जम्मू कश्मीर	६	विंध्यप्रदेश	६
मध्यभारत	१२	[घ वर्ग का राज्य]	
मैसूर	११	अंदमन-निकोबार	१
पटियाला तथा पंजाब-राज्य-संघ	५	एंग्लोइंडियन (नामजद)	२

लोक-सभा का पहला चुनाव, विविध दलों की शक्ति— लोकसभा का पहला चुनाव सन् १९५१-५२ में हुआ। उसके अनुसार निर्वा-

चित सदस्यों के आगे दिये हुए ब्योरे से देश के विविध राजनैतिक दलों की शक्ति का कुछ अनुमान हो सकेगा—

कांग्रेस	३६१
प्रजा सोशलिस्ट (प्रजा समाजवादी)	२५
कम्युनिस्ट एवं उनके सहयोगी	२७
जन संघ	३
हिन्दू महासभा	४
रामराज्य परिषद	३
पेजंट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी	२
परिगणित जाति संघ	२
गणतंत्र परिषद	५
झारखंड पार्टी	३
लोकसेवक संघ	२
फारवर्ड ब्लाक	१
मुस्लिम लीग	१
कामनवील पार्टी (मद्रास)	३
तामिलनाड टायलर्स पार्टी	४
अकाली	४
क्रान्तिकारी सोशलिस्ट पार्टी	१
संयुक्त सोशलिस्ट संगठन	१
कृषिकर लोक पार्टी	१
त्रावनकोर तामिलनाड कांग्रेस	१
स्वतन्त्र	३६

केन्द्र के (तथा राज्यों के) चुनाव से ये बातें सामने आयीं :—(१) सबसे अधिक जीत कांग्रेस के उम्मेदवारों की हुई। लेकिन उसकी प्रतिष्ठा बहुत घटी हुई है। कुल मिलाकर जितने मत दिये गये उनमें से कांग्रेसी उम्मेदवारों को कम और दूसरे सब दल वालों को अधिक मिले। (२) अगर

गैर-कांग्रेसी दल सब मिल जाते और एक-एक कांग्रेसी उम्मेदवार के मुकाबले एक ही गैर-कांग्रेसी को मत देते तो चुनाव का नतीजा दूसरा ही होता। (३) कांग्रेस से दूसरे दर्जे पर मत कम्यूनिस्ट या साम्यवादी दल का जोर रहा है। अगर जनता के भोजन वस्त्रादि की ठीक व्यवस्था न हुई तो इस दल का आगे बढ़ना निश्चित है। (४) प्रायः साम्प्रदायिक दलों का महत्व जाता रहा; हिन्दू महासभा, राम राज्य परिषद और जनसंघ आदि दलों के उम्मेद-वारों की जमानतें अपेक्षाकृत अधिक जप्त हुई हैं।

वयस्क मताधिकार—मताधिकार के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत में यह पहला अवसर है जब वयस्क मताधिकार को केन्द्रीय लोकसभा के निर्वाचन में स्थान दिया गया है। इसके द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को यह अनुभव करने का अवसर दिया गया है कि उसका भी देश के शासन में कुछ भाग है। इस विषय में विशेष पहले 'निर्वाचन' अध्याय में लिखा जा चुका है।

पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त—जैसा पहले बताया गया है, सब निर्वाचन संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अनुसार होंगे। परन्तु अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा एँग्लो-इन्डियनों आदि अल्प संख्यकों के लिए कुछ स्थान लोकसभा में उनकी जनसंख्या के आधार पर सुरक्षित रखे गये हैं। यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि लोकसभा में एँग्लो-इन्डियनों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है तो वह स्वयं दो एँग्लो-इन्डियन सदस्य मनोनीत कर सकेगा। [यह संरक्षण २६ जनवरी १९६० तक रहेगा।]

निर्वाचन-क्षेत्र—निर्वाचन के लिए संपूर्ण देश प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित किया जायेगा। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में एक-एक सदस्य कम से कम साढ़े छः लाख और अधिक से अधिक साढ़े आठ लाख जन-संख्या का प्रतिनिधित्व करेगा। इन निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि प्रतिनिधित्व का अनुपात देश भर में समान हो अर्थात् एक निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या और प्रतिनिधियों में जो अनुपात हो, वही सारे भारत के अन्य निर्वाचन-क्षेत्रों में हो। प्रत्येक जन-

गणना के पश्चात् निर्वाचन-क्षेत्रों का नयी जनसंख्या के अनुसार पुनर्सङ्गठन किया जायेगा। यदि किसी जन-गणना का फल उस समय निकलेगा जब लोकसभा कार्य कर रही होगी तो उसके भंग होने तक नये निर्वाचन-क्षेत्रों के हिसाब से निर्वाचन नहीं किया जायेगा अर्थात् जन-गणना के पश्चात् लोकसभा को भङ्ग नहीं किया जायेगा।

निर्वाचक-नामावली और निर्वाचक की योग्यता—प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए निर्वाचन-आयोग (कमीशन) की देखरेख में एक निर्वाचक-नामावली तैयार करायी जायगी। इसमें उस क्षेत्र के समस्त निर्वाचकों के नाम होंगे। एक व्यक्ति का नाम एक निर्वाचन-क्षेत्र में एक ही बार लिखा जायगा और कोई भी व्यक्ति दो निर्वाचन-क्षेत्रों से एक साथ उम्मीदवार नहीं हो सकेगा। निर्वाचन-नामावली में ऐसे व्यक्तियों का नाम दर्ज किया जायगा, जो निर्वाचक की योग्यता सम्बन्धी निम्नलिखित शर्तों को पूरा करते हैं :—

१—भारत का प्रत्येक नागरिक, जो १ मार्च सन् १९५० को २१ वर्ष या अधिक आयु का रहा हो, और

२—जो १ अप्रेल १९४७ से ३१ दिसम्बर १९४९ तक उस निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम १८० दिन तक रह चुका हो।

निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकेंगे :—

(क) जो भारत का नागरिक न हो।

(ख) जो किसी न्यायालय द्वारा पागल करार दे दिया गया हो।

(ग) जो निर्वाचन सम्बन्धी भ्रष्टाचार या दुराचरण के अपराध में अपराधी ठहराया गया हो।

निर्वाचनों में निष्पक्षता और ईमानदारी स्थापित करने के लिए निर्वाचन-आयोग की व्यवस्था है।

लोकसभा की सदस्यता के लिए योग्यता—लोकसभा के सदस्य निर्वाचित होनेवाले व्यक्ति के लिए आवश्यक होगा कि—

(क) वह भारत का नागरिक हो।

(ख) कम से कम २५ वर्ष की आयु का हो।

(ग) उसमें संसद की विधि द्वारा निर्धारित, सदस्य होने की अन्य योग्यताएँ हों।

लोकसभा की सदस्यता के लिए अयोग्यता—कोई भी व्यक्ति लोकसभा का सदस्य निर्वाचित न हो सकेगा, यदि उसमें ऊपर बतायी योग्यताओं का अभाव हो, अथवा यदि वह—

(१) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के ऐसे पद पर आसीन हो, जिससे उसे आर्थिक लाभ होता हो। [भारतीय संघ के मंत्री या किसी राज्य के मंत्री के ऊपर यह प्रतिबंध लागू नहीं होगा।]

(२) पागल हो और किसी न्यायालय द्वारा पागल करार दे दिया गया हो।

(३) ऐसा दिवालिया हो, जिसका भुगतान न हुआ हो।

(४) संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अंतर्गत अयोग्य ठहरा दिया गया हो।

(५) उसने स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर ली हो, अथवा उसकी राजभक्ति किसी अन्य देश के प्रति हो, या किसी अन्य देश से उसका लगाव हो।

यदि सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् किसी व्यक्ति में उपर्युक्त अयोग्यताओं में से कोई आयोग्यता उत्पन्न हो जायगी तो वह सदस्य नही रहेगा। सदस्य की अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग के परामर्श से करेगा।

लोकसभा का कार्यकाल—लोकसभा का कार्यकाल साधारण अवस्था में ५ वर्ष होगा। इस बीच में राष्ट्रपति उसे भंग करके नया निर्वाचन करा सकेगा। पर वह ऐसा तभी करेगा, जब उसे यह विश्वास हो जाय कि लोकसभा में जनता के प्रतिनिधियों का अभाव है। पाँच वर्ष की अवधि समाप्त होने पर लोकसभा स्वयं भंग हो जायगी। साधारणतया लोकसभा के

कार्यकाल को बढ़ाया नहीं जायगा। परन्तु संकट की घोषणा होने पर संसद् इस आशय की विधि-निर्माण करके कार्यकाल एक बार एक वर्ष के लिए बढ़ा सकेगी। इसके पश्चात् किसी भी दशा में लोकसभा का कार्यकाल छः माह से अधिक नहीं बढ़ाया जायगा।

लोकसभा का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष—लोकसभा अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष (स्पीकर) और एक उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर) निर्वाचित करेगी। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष अपने पदों पर तब तक रहेंगे, जब तक वे लोकसभा के सदस्य रहेंगे, या वे स्वयं त्यागपत्र नहीं देंगे, अथवा उन्हें लोक-सभा अयोग्यता अथवा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके पदच्युत नहीं कर देगी। अविश्वास या अयोग्यता का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए इस आशय की सूचना १४ दिन पूर्व देनी होगी। लोकसभा के बहुमत द्वारा प्रस्ताव पास होने पर अध्यक्ष पदच्युत हो जायगा। लोकसभा भंग होने के बाद भी अध्यक्ष नयी लोकसभा के प्रथम अधिवेशन तक अपने पद पर बना रहेगा। अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर उसकी अनुपस्थिति में उसका पद उपाध्यक्ष ग्रहण करेगा। उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त होने पर राष्ट्रपति लोकसभा के किसी सदस्य को इस पद पर नियुक्त कर सकेगा। लोकसभा की किसी बैठक में यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जाय तो वह सभा में उपस्थित तो रह सकेगा परन्तु अपना पद ग्रहण न करेगा। ऐसा प्रस्ताव उपस्थित होने पर उसे लोकसभा में बोलने और प्रथम मत देने का अधिकार होगा, परन्तु दोनों ओर मत सम्मान होने पर वह मत प्रदान न कर सकेगा। लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी। जब तक संसद ऐसी विधि बनायेगी, तब तक उन्हें वही वेतन मिलेगा, जो इन पदाधिकारियों को यह संविधान लागू होने से पहले दिया जाता था।

गण-पूर्ति या कोरम—लोकसभा की कार्यवाही आरम्भ करने के लिए सभा में कुल सदस्यों की संख्या के दसवें भाग की उपस्थिति आव-श्यक होगी।

राज्य-परिषद

संसद का दूसरा सदन राज्य परिषद है। जब कि लोकसभा में जनता के प्रतिनिधि होंगे, राज्य परिषद में संघ के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। यह एक स्थायी संस्था होगी। यह कभी भी भंग नहीं की जायगी, किन्तु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के पश्चात् अपना स्थान रिक्त करेंगे और उन स्थानों की पूर्ति नये सदस्यों से होगी।

राज्य परिषद में अधिक से अधिक २५० सदस्य होंगे। इनमें से अधिक से अधिक २३८ सदस्य राज्यों की ओर से निर्वाचित होंगे और १२ राष्ट्रपति द्वारा नामजद किये जायँगे। ये १२ सदस्य ऐसे होंगे, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा का विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव हो। राज्यों के प्रतिनिधि-सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होगा। इस निर्वाचन की दृष्टि से भारतीय संघ के राज्य दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। (१) वे राज्य, जिनमें विधान-सभाएँ होंगी; और (२) वे राज्य, जिनमें विधान-सभाएँ नहीं होंगी, वरन जो केन्द्र द्वारा शासित होंगे। विधान-सभाओं वाले राज्यों के प्रतिनिधि उन राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किये जाएँगे। निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत के अनुसार होगा। अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस रीति किया जायगा, जो संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी।

राज्य परिषद में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या इस भांति होगी—

(क वर्ग के राज्य) आन्ध्र १२;—आसाम—६; विहार—२१; बम्बई—१७; मध्यप्रदेश—१२; मद्रास—१८; उड़ीसा—६; पंजाब—८; उत्तरप्रदेश—३१; पश्चिमी बङ्गाल—१४। (योग १४८)

(ख वर्ग के राज्य) हैदराबाद—११; जम्मू-कश्मीर—४; मध्यभारत ६; मैसूर—६; पटियाला और पंजाब-राज्य-संघ—३; राजस्थान—६; सौराष्ट्र—४; त्रावनकोर कोचीन—६। (योग ४६)

(ग वर्ग के राज्य) अजमेर और कुर्ग—१; भोपाल—१; विलासपुर और हिमाचल प्रदेश – १; दिल्ली—१; कच्छ—१; मनिपुर और त्रिपुरा—१; विंध्य प्रदेश—४। (योग १०)

इस प्रकार कुल निर्वाचित सदस्य २०७ हुए। निर्वाचित सदस्यों की अधिकतम संख्या २३८ है; इससे कम रह सकते हैं, अधिक नहीं।

राज्य परिषद की सदस्यता के लिए योग्यता और अयोग्यता—राज्य परिषद का सदस्य निर्वाचित होने के लिए किसी व्यक्ति मै निम्नलिखित में योग्यताएँ होनी आवश्यक हैं—

(१) वह भारत का नागरिक हो।

(२) उसकी आयु ३० वर्ष से कम न हो।

(३) उसमें वे दूसरी योग्यताएँ भी हों, जो संसद विधि द्वारा निश्चित करे।

राज्य परिषद की सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ वही होंगी, जो लोक-सभा की सदस्यता के लिए निर्धारित हैं। सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् किसी अयोग्यता के उत्पन्न होने पर वह व्यक्ति सदस्य नहीं रहेगा। किसी सदस्य में ऐसी अयोग्यता उत्पन्न हो गयी है अथवा नहीं, इसका निर्णय राष्ट्रपति निर्वाचन-कमीशन के परामर्श से करेगा।

राज्य परिषद का प्रथम सङ्गठन—राज्य परिषद के प्रथम सङ्गठन में कुल सदस्यों की संख्या २१६ है, जिनमें १२ नामजद हैं। पहले कहा गया है कि इसमें राज्यों का प्रतिनिधित्व होगा। यहाँ 'ग' वर्ग के राज्यों के प्रतिनिधित्व के बारे में यह ध्यान में रखना है कि अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली और विन्ध्य प्रदेश के निर्वाचक मंडल इन राज्यों की विधान-सभाएँ ही हैं। हिमाचल प्रदेश और विलासपुर के निर्वाचक मंडल में एक तो वह व्यक्ति होगा जो लोकसभा में विलासपुर का प्रतिनिधि है, और दूसरे वे व्यक्ति होंगे जो हिमाचल प्रदेश की विधान-सभा के सदस्य हैं। कच्छ, मनिपुर और त्रिपुरा में विधान-सभाएँ नहीं हैं। इनके निर्वाचक मंडलों के सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने गये हैं। प्रत्येक मंडल में तीस-

तीस सदस्य हैं। [इन तीन राज्यों में जब विधान-सभाएँ स्थापित हो जायँगी, तब ये मंडल समाप्त हो जायँगे और विधान सभाएँ ही निर्वाचक मंडलों का काम करेंगी।]

राज्यपरिषद् का सभापति तथा उपसभापति—भारत का उप-राष्ट्रपति राज्य-परिषद का सभापति होगा। राज्य-परिषद अपने सदस्यों में से किसी एक को उपसभापति निर्वाचित कर लेगी। सभापति का कार्यकाल पाँच वर्ष होगा, बशर्ते कि वह स्वयं त्यागपत्र न दे दे, अथवा पदच्युत न कर दिया जाय। उपसभापति राज्य-परिषद का सदस्य न रहने पर, स्वयं त्याग-पत्र देने पर, अथवा पदच्युत किये जाने पर अपने पद पर न रहेगा।

राज्य के सदस्यों का बहुमत अयोग्यता अथवा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उपसभापति को उसके पद से हटा सकता है। ऐसा प्रस्ताव राज्य-परिषद में उपस्थित करने के लिए १४ दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक होगा। उपसभापति का पद रिक्त होने पर राष्ट्रपति उस पद के लिए किसी सदस्य को नियुक्त करेगा। राज्यपरिषद की किसी बैठक में सभापति और उपसभापति दोनों की अनुपस्थिति में ऐसा व्यक्ति सभापति का पद सम्हालेगा, जिसे राज्यपरिषद इस पद के लिए नियुक्त करे। जब राज्यपरिषद में सभापति अथवा उपसभापति को अपदस्थ करने का प्रस्ताव उपस्थित हो तो जिसके विरुद्ध ऐसा प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा, वह उपस्थित तो रह सकेगा परन्तु सभापति पद पर नहीं होगा। उपसभापति को हटाने के प्रस्ताव पर सभापति को मत-दान का अधिकार नहीं होगा, वैसे वह परिषद की कार्यवाही में भाग ले सकेगा।

सभापति तथा उपसभापति के वेतन व भत्ते संसद विधि द्वारा निर्धारित करेगी और जब तक संसद कुछ व्यवस्था न करे, तब तक सभापति और उपसभापति को वही वेतन तथा भत्ता मिलेगा, जो इन पदाधिकारियों को यह संविधान लागू होने से पहले मिलते हों।

संसद के सदस्यों की शपथ—संसद के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के, अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त व्यक्ति

के, सामने संविधान के प्रति भक्ति और कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में निम्न-लिखित शपथ ग्रहण करनी होगी—

मैं…अमुक…जो लोकसभा अथवा (राज्य-परिषद) का सदस्य निर्वाचित (या नामजद) हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ, उसके कर्तव्यों को श्रद्धापूर्वक पालन करूँगा।

सदस्यता संबंधी मर्यादा—कोई भी व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य एक-साथ नहीं हो सकेगा। जो व्यक्ति दोनों सदनों के लिए निर्वाचत हो जाय, उसे किसी एक सदन की सदस्यता छोड़ देनी होगी। कोई भी व्यक्ति राज्यों के विधान-मंडल और संसद के का सदस्य एक साथ न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति किसी सदन, दोनों का सदस्य निर्वाचित हो जाता है तो उसे राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित अवधि के अन्दर किसी एक स्थान से त्यागपत्र दे देना चाहिए, अन्यथा, ऐसे व्यक्ति का स्थान संसद में उस अवधि के बीत जाने पर रिक्त हो जायगा, यदि वह उस अवधि के पूर्व राज्य के विधान-मंडल से त्यागपत्र न दे।

यदि ससद के किसी सदन का सदस्य साठ दिन तक, अपने सदन की आज्ञा बिना, उसके सब अधिवेशनों में अनुपस्थित रहेगा तो उसका स्थान रिक्त घोषित कर दिया जायगा और उस स्थान के लिए दूसरे व्यक्ति का निर्वाचन होगा।

यदि संसद के किसी सदन में कोई व्यक्ति सदस्य न होते हुए अथवा यह जानते हुए कि वह सदस्य होने के योग्य नहीं है, अथवा संसद की किसी विधि द्वारा उसका संसद में बैठना निषिद्ध कर दिया गया है, संसद में बैठता है अथवा मत देता है, तो उस पर जितने दिन वह इस प्रकार बैठता अथवा मत देता है, पाँच सौ रुपया प्रति दिन के हिसाब से दंड होगा।

संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार तथा वेतन—संसद के प्रत्येक सदस्य को संसद के नियमों एवं आदेशों का पालन करते हुए संसद

में भाषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी। संसद या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात के लिए सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न हो सकेगी। अन्य बातों के सम्बन्ध में उन्हें वे सब विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जो संसद समय-समय पर निश्चित करेगी।

संसद अपने सदस्यों के वेतन तथा भत्ते समय-समय पर विधि बना कर निश्चत करेगी। जब तक ऐसा कोई निश्चित न किया जाय तब तक सदस्यों को वही वेतन और भत्ते मिलते रहेंगे, जो यह संविधान लागू होने के पूर्व मिलते थे।

मई १९५४ में संसद ने जो विधेयक स्वीकार किया, उसके अनुसार सदस्यों का वेतन आदि इस प्रकार होगा—

१—चार सौ रुपये मासिक वेतन,

२—संसद में उपस्थित होने पर प्रति दिन इक्कीस रुपये,

३—भारत भर में कहीं भी रेल से आने जाने के लिए दूसरे दर्जे के दो 'पास' बिना मूल्य,

४—सदस्यों और उनके परिवार वालों को बीमारी में औषधि आदि बिना मूल्य,

५—मकान, टेलिफोन और डाक की सुविधायें,

६—सरकारी कमेटियों के सदस्य होने की दशा में सरकारी नियमों के अनुसार मार्ग व्यय और भत्ता आदि।

[स्मरण रहे कि इस विधेयक से पहले संसद में उपस्थिति के समय ही चालीस रुपये प्रति दिन भत्ता मिलता था (मासिक वेतन नहीं था), और उपर्युक्त विधेयक का मसौदा बनाने वाली कमेटी की सिफ़ारिश यह थी कि सदस्यों को तीन सौ रुपये मासिक वेतन और संसद में उपस्थिति के समय बीस रुपये प्रतिदिन के हिसाब से दिये जाँय; अथवा इन दोनों बातों की जगह पहले की तरह, उपस्थिति के दिनों में चालीस रुपये दैनिक भत्ता मिले। जब कि संसद के सदस्य स्वयं ही कानून बनाने वाले हैं, उनका अपने लिए भत्ता आदि इस प्रकार बढ़ाना और असंख्य निर्वाचकों की आर्थिक स्थिति को भूल जाना सर्वथा अशोभनीय है।]

संसद की कार्यवाही संबंधी नियम—संसद के वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन अवश्य होंगे, और दो अधिवेशनों के बीच छः माह से अधिक का अन्तर नहीं होगा। किसी वर्ष की अन्तिम बैठक और अगले वर्ष की प्रथम बैठक में छः मास से अधिक का अन्तर नहीं होगा। इस नियम के अंतर्गत राष्ट्रपति को निर्धारित स्थान और समय पर संसद के अधिवेशन कराने और उन्हें विसर्जित करने का अधिकार है। राष्ट्रपति को संसद के सामने भाषण देने तथा अपने सन्देश भेजने का अधिकार है। प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित करेगा और अधिवेशन निमंत्रित करने का कारण बतलायेगा। प्रत्येक मंत्री और महान्यायवादी (अटार्नी-जनरल) संसद में भाषण दे सकता है और उसके कार्य में सदस्य की हैसियत से भाग ले सकता है किन्तु महान्यायवादी को मत देने का अधिकार नहीं है।

संसद के प्रत्येक सदन में तथा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में समस्त निर्णय बहुमत से किये जाएँगे। सभापति और अध्यक्ष साधारण दशा में अपना मत नहीं देंगे; वे केवल उसी दशा में अपना निर्णायक मत देंगे, जब किसी विषय के पक्ष और विपक्ष में मत बराबर होंगे। प्रत्येक सदन का कार्य आरम्भ करने के लिए उस सदन के दशमांश सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी। कोरम पूरा न होने की दशा में सभापति अथवा अध्यक्ष को अधिकार है कि वह बैठक को स्थगित कर दे, अथवा कोरम पूरा होने तक प्रतीक्षा करे। संयुक्त अधिवेशन की कार्यवाही के नियम राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के सभापति तथा लोकसभा के अध्यक्ष के परामर्श से बनायेगा। संयुक्त अधिवेशन में लोकसभा का अध्यक्ष सभापति होगा।

संसद की कार्यवाही हिन्दी या अंग्रेजी में होगी। यदि कोई सदस्य इन दोनों भाषाओं में से किसी में भी अपने विचार प्रगट नहीं कर सकता तो सभापति अथवा अध्यक्ष उसे अपनी भाषा में बोलने की अनुमति दे सकेगा। यह व्यवस्था १५ वर्ष तक चलेगी। उसके पश्चात् यदि संसद इस विषय का कोई नियम न बनाये तो अंग्रेजी का व्यवहार बन्द हो जायगा और कार्यवाही हिन्दी में ही हुआ करेगी।

संसद के अधिवेशन साधारणतः दिन के ग्यारह बजे से पाँच बजे तक होते हैं। आरम्भ के, पहिले घंटों में प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। संसद के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं—सरकारी। और गैर-सरकारी गैर-सरकारी काम के लिए राष्ट्रपति द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिये जाते हैं, अन्य दिनों में सरकारी काम होता है। सेक्रेटरी विचारणीय विषयों की सूची तैयार करता है, उसी के अनुसार कार्य होता है; सभापति की आज्ञा बिना, किसी नवीन विषय पर विचार नहीं किया जाता।

दोनों सदनों में सदस्यों के बैठने का क्रम सभापति तथा अध्यक्ष निश्चित करते हैं। प्रत्येक सदस्य अपने सदन के सभापति अथवा अध्यक्ष को सम्बोधित करके बोलता है, और उसी के द्वारा प्रश्न करता है। जहाँ तक कोई सदस्य सदनों के नियम की अवहेलना न करे, उसे भाषण देने की स्वतंत्रता है। सदनों में शान्ति रखना सभापति तथा अध्यक्ष का कर्तव्य है। इसके लिए आवश्यकता होने पर वह किसी सदस्य का एक दिन या अधिक समय तक के लिए सदन में आना बन्द कर सकता है, अथवा अधिवेशन स्थगित कर सकता है।

संसद के कार्य—संसद एक विधान-मंडल है। उसका मुख्य कार्य कानून बनाना है। इसके साथ ही उसे यह देखना होता है कि सरकार या कार्यपालिका उन कानूनों को ठीक अमल में लाती है या नहीं। लोकतन्त्र शासन में सरकार के प्रमुख अधिकारी (मंत्री) ऐसे व्यक्ति होते हैं जो संसद के सदस्य होते हैं और उसके प्रति उत्तरदायी रहते हैं। तथापि संसद का कार्य है कि सरकार पर नियंत्रण रखे और उसके कामों की जाँच करती रहे। फिर शासन-चक्र की धुरी धन है, सरकारी पदाधिकारियों के बने रहने तथा उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के लिए धन की अनिवार्य आवश्यकता है। इस लिए संसद सरकारी आय-व्यय पर नियंत्रण रखती है; उसे बजट की विविध मदों को स्वीकार करने का अधिकार होता है। अस्तु, संसद के कार्यों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :—

१—कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य।

२—शासन सम्बन्धी कार्य।

३—सरकारी आय-व्यय सम्बन्धी कार्य ।

४—संविधान में संशोधन ।

(१) कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य—कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य के प्रसंग में हमें दो बातें जाननी हैं :—

(क) संसद का कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार-क्षेत्र ।

(ख) कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य-प्रणाली ।

कानून-निर्माण सम्बन्धी क्षेत्र—कानून (विधि) निर्माण सम्बन्धी समस्त विषयों को तीन सूचियों में बाँटा गया है । (१) संघ सूची—इसके अंतर्गत वे ६७ विषय हैं, जिनके सम्बन्ध में संसद ही कानून बना सकती है । (२) राज्य-सूची—इसके अन्तर्गत वे ६६ विषय हैं, जिनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल वाले राज्य अपने विधान-मंडलों द्वारा कानून बनायेंगे । (३) समवर्ती सूची—इसके अन्तर्गत वे ४७ विषय हैं, जिनके विषय में राज्य और संघ दोनों ही कानून बना सकेंगे परन्तु राज्यों को इन विषयों पर विधि निर्माण करने का अधिकार तभी होगा जब संसद निर्माण न करे । संसद संघ-सूची, एवं समवर्ती-सूची के अन्तर्गत दिये समस्त विषयों पर विधि निर्माण कर सकेगी । समवर्ती सूची के विषयों पर यदि राज्य द्वारा बनायी विधि का संसद द्वारा बनायी विधि से विरोध होता हो तो संसद की विधि को प्रधानता एवं प्राथमिकता मिलेगी, और वही लागू भी होगी; राज्य द्वारा बनायी विधि उस सीमा तक अवैध होगी, जहाँ तक उसका संसद की विधि से विरोध है । परन्तु यदि राज्य की विधि पर पहले राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल चुकी हो, तो वही लागू हो सकेगी; किन्तु संसद को अधिकार है कि किसी भी समय ऐसी विधि का संशोधन कर सकती है ।

अवशिष्ट विषयों पर भी, जो ऊपर लिखी किसी भी सूची में नहीं है, संसद कानून बना सकेगी । संघ द्वारा शासित राज्यों की समस्त विधियों का निर्माण संसद करेगी, भले ही वे किसी भी सूची में हों । स्वायत्त-राज्यों के सम्बन्ध में भी संसद को किसी विषय की विधि निर्माण करने का अधिकार है, परन्तु इस अधिकार का उपयोग उसी समय हो सकता है, जब राज्य-परिषद अपने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों से ऐसा

प्रस्ताव पास करे कि राष्ट्रीय हित के लिए ऐसा करना आवश्यक है। राज्य-परिषद के प्रस्ताव पास करने पर संसद को जो अधिकार राज्य-सूची के विषयों पर कानून बनाने का मिलेगा, वह एक बार में एक साल तक के लिए ही होगा। प्रस्ताव पास करके कानून की अवधि एक-एक साल के लिए बढ़ायी जा सकती है। प्रस्ताव में दी हुई अवधि समाप्त होने के बाद छः माह तक यह कानून अमल में आ सकेगा।

[यदि संसद को राज्य-सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार हो जाय तो इससे किसी राज्य-विधान-मंडल का उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार समाप्त नहीं हो जाता। हाँ, संसद के और राज्य के बनाये कानूनों में कोई विषमता हो तो संसद का कानून मान्य होगा।]

यदि दो या अधिक राज्यों के विधान-मंडलों को यह जान पड़े कि राज्य-सूची के किसी विषय पर संसद द्वारा कानून बनाया जाना अच्छा होगा और उन राज्यों के विधान मंडलों के सब सदन इस विषय का प्रस्ताव पास कर दें तो संसद के लिए उस विषय के सम्बन्ध में कानून बनाना विधि-संगत हो जायेगा। ऐसा कानून उक्त राज्यों पर तो लागू होगा ही, उनके अतिरिक्त वह कानून उन अन्य राज्यों पर भी लागू होगा, जिनके विधान-मंडल प्रस्ताव पास करके उस कानून को स्वीकार कर लें।

संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई किसी संधि या करार अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आदि में किये गये किसी निश्चय के पालन के लिए भारत के किसी सम्पूर्ण क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कानून बनाने का अधिकार है।

संकट-काल में संसद स्वायत्त राज्यों के सम्बन्ध में राज्य-सूची में दिये विषयों पर भी विधि निर्माण कर सकेगी। ये कानून संकट-काल समाप्त होने के छः माह बाद तक ही अमल में आएँगे।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संसद ऐसे प्रत्येक विषय के कानून बनाती है, जिसका सम्बन्ध भारतीय संघ से हो, दो या अधिक स्वायत्त राज्यों से हो, या संघ द्वारा शासित राज्यों से अथवा अवशिष्ट विषयों से हो।

संघ-सूची

संघ-सूची के विषयों में मुख्य ये हैं:—(१) सब प्रकार की सेनाएँ, हवाई जहाज, (२) संयुक्त राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से सम्बन्ध, (३) विदेशों तथा विदेशियों से सम्बन्ध, (४) नागरिकता, (५) बड़े बन्दरगाह, (६) डाक, तार, टेलीफोन और बेतार के तार (७) आयात-निर्यात कर, और संघीय आय के अन्य साधन (८) सिक्का, नोट आदि, (९) संघ का लोक-ऋण, (१०) सेविंग बैंक, (११) संघीय व्यय और हिसाब-परीक्षा, (१२) अणु बम (१३) व्यापार, बैंक और बीमे का काम (१४) तिजारती कम्पनियाँ और समितियाँ, (१५) अफीम आदि पदार्थों की पैदाबार खपत और निर्यात का नियंत्रण, (१६) कापीराइट [किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार] (१७) भारत में आना अथवा यहाँ से विदेश जाना, (१८) केन्द्रीय पुलिस का संगठन, (१९) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य-गणना और आँकड़े, (स्टेटिसटिक्स) (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियाँ, (२२) राज्यों की सीमा, (२३) कृषि-आय को छोड़कर अन्य आय पर कर, (२४) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, विश्व-भारती और हैदराबाद विश्वविद्यालय (२५) उच्चतर शिक्षा या गवेषणा की संस्थाओं में एकसूत्रता लाना। (२६) उच्चतम न्यायालय, (२७) राष्ट्रपति और गवर्नरों का वेतनादि और (२८) निर्वाचन-कमीशन आदि।

समवर्ती सूची

समवर्ती सूची के मुख्य-मुख्य विषय ये हैं:—(१) फौजदारी कानून (दंड-विधि), दंड प्रक्रिया (फौजदारी जाता), और व्यवहार प्रक्रिया (जाता दीवानी), (२) कैदियों या अभियुक्तों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना, (३) विवाह और सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक), शिशु और नाबालिग, उत्तराधिकार, (४) दस्तावेजों की रजिस्ट्री, (५) ठेके, जिनमें साझेदारी, एजन्सी और माल ढोने के ठेके शामिल हैं, (६) ट्रस्ट और ट्रस्टी, (७) न्यायालय की मानहानि, (८) आवारागर्दी, (९) पागलपन और दिमागी कमी तथा इन विकारों वाले व्यक्तियों को रखने या इलाज करने के स्थान, (१०)

पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें और छापेखाने, (११) जानवरों पर बेरहमी की रोक-थाम, (१२) कारखाने (१३) मजदूरों की भलाई, काम की शर्तें, प्राविडेन्ट फंड, बुढ़ापे की पेन्शन और प्रसूति-सुविधाएँ, (१४) छूत की बीमारियों को रोकना, (१५) कानूनी, डाक्टरी और दूसरे पेशे, (१६) मूल्य-नियंत्रण, (१७) खाने के पदार्थों में मिलावट, और (१८) आर्थिक तथा सामाजिक योजना, आदि ।।

कानून-निर्माण ; साधारण विधेयक सम्बन्धी कार्य-प्रणाली—कानून बनाने के लिए जो मसौदा संसद में उपस्थित किया जाता है, उसे विधेयक या 'बिल' कहा जाता है । विधेयक दो प्रकार के होते हैं—धन सम्बन्धी विधेयक और साधारण विधेयक । दोनों प्रकार के विधेयकों को पास करने के लिए अर्थात् कानून का रूप देने के लिए अलग-अलग कार्य-प्रणाली हैं ।

धन सम्बन्धी छोड़ कर अन्य अर्थात् साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकेगा । दोनों सदनों से पास होने पर ही वह विधि बन सकेगा । यदि कोई विधेयक एक सदन में पास हो जाता है और दूसरे सदन में पास में नहीं हो पाता, या वह उसमें ऐसा संशोधन कर देता है जो पहले सदन को स्वीकार न हो या वह उसे छः मास तक पास न करे तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन कर सकेगा । यदि संयुक्त अधिवेशन में यह विधेयक उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास हो जाता है तो यह दोनों सदनों द्वारा पास समझा जायेगा । संयुक्त अधिवेशन में सशोधनों के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध हैं । यदि एक विधेयक (बिल) एक सदन में पास होकर दूसरे सदन में पहुँचता है और दूसरा सदन इसमें कुछ संशोधन कर देता है, जो पहले सदन को स्वीकार नही है, तो संयुक्त अधिवेशन में केवल इन संशोधनों पर और ऐसे प्रासंगिक संशोधनों पर ही विचार हो सकेगा, जिनके सम्बन्ध में दोनों सदनों का एक मत न हो सका । परन्तु यदि विधेयक दूसरे सदन में पास नहीं किया जाता और मूल रूप में ही प्रथम सदन को लौटा दिया जाता है तो इस विधेयक में संयुक्त अधिवेशन में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकेगा । हाँ, यदि विधेयक के एक सदन से दूसरे सदन में भेजने की देर के कारण कुछ

संशोधन आवश्यक हो जायेंगे तो उन पर अवश्य विचार किया जा सकेगा। [क्योंकि संसद में लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक संयुक्त है, अधिवेशन में उसी के मत की प्रधानता रहने की संभावना अधिक रहेगी।]

विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास होने पर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जायेगा। राष्ट्रपति चाहे तो उस पर अपनी स्वीकृति दे दे अथवा उसे संसद को पुनर्विचारार्थ लौटा दे। स्वीकृति न देने की दशा में राष्ट्रपति यथा-सम्भव शीघ्र ही विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ संसद को लौटा देगा। संसद उस पर पुनः विचार करेगी और विधेयक दुबारा राष्ट्रपति के सामने स्वीकृति के लिए रखा जाएगा; इस बार राष्ट्रपति को हस्ताक्षर करके उसे अपने स्वीकृति देनी ही होगी। राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात् विधेयक कानून बन जायेगा। संविधान में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है कि यदि राष्ट्रपति विधेयक पर प्रथम बार ही, जब विधेयक उसके सामने रखा जाये, हस्ताक्षर करने से मना कर दे तो क्या होगा? समयानुसार इस सम्बन्ध में प्रथा या रिवाज स्थापित हो जायेंगे।

धन सम्बन्धी विधेयकों की कार्य-प्रणाली—धन सम्बन्धी विधेयकों की कार्य-प्रणाली इससे भिन्न है। ये लोकसभा में ही प्रस्तावित किये जा सकेंगे; राज्यपरिषद में उन्हें प्रस्तावित न किया जा सकेगा। लोकसभा में पास होने पर ऐसा विधेयक राज्यपरिषद में उसकी सिफारिश के लिए भेज दिया जायगा। राज्यपरिषद को १४ दिन के अन्दर ही अपनी सिफारिश के साथ इसे लोकसभा को वापिस भेजना होगा। यदि यह विधेयक १४ दिन के अन्दर राज्यपरिषद द्वारा वापिस नहीं किया जाता तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास समझा जायेगा। यदि राज्यपरिषद १४ दिन के अन्दर ही विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित वापिस भेज देती है तो लोकसभा को उन सिफा-रिशों को मानने या न मानने का पूर्ण अधिकार है। इसके पश्चात् विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत समझा जायेगा। संयुक्त अधिवेशन वाली व्यवस्था धन सम्बन्धी विधेयकों पर लागू नहीं होगी। धन सम्बन्धी विधेयकों पर राष्ट्रपति पहली ही बार में स्वीकृति प्रदान कर देगा, और विधेयक कानून बन जायेगा।

(२) शासन सम्बन्धी कार्य—संसद का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य देश की शासन-नीति निर्धारित करना एवं मन्त्रिपरिषद पर नियंत्रण रखना है। यह कार्य वह प्रस्ताव पास करके, प्रश्न पूछ कर तथा अन्य उपायों द्वारा पूरा करती है।

प्रस्ताव—प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं—(१) साधारण, नीति सम्बन्धी प्रस्ताव। इस प्रकार के प्रस्ताव पास करके संसद सरकार से किसी कार्य के लिए सिफारिश करती है। सरकार को ऐसे प्रस्तावों को मानना ही होता है, क्योंकि इस प्रकार के प्रस्ताव जनता का मत व्यक्त करते हैं। (२) काम-रोको प्रस्ताव। सार्वजनिक महत्व के प्रश्न या विशेष दुर्घटना आदि के सम्बन्ध में बहस करने के के लिए कार्यवाही स्थगित करने का प्रस्ताव किया जाता है। यदि अध्यक्ष इस प्रस्ताव को लेना स्वीकार करले तो उसी दिन चार बजे अन्य कार्यवाही बन्द करके इस पर विचार किया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रस्ताव पर वाद-विवाद होते हुए ही सदन की बैठक का समय समाप्त हो जाता है; और प्रस्ताव पर मत लिये जाने का अवसर नहीं आता। इस प्रकार निर्णय न होने की दशा में प्रस्ताव को 'चर्चा में ही गया' (टाकड आउट) कहते हैं। (३) अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव। यह प्रस्ताव सरकारी नीति से असन्तोष प्रकट करने, अथवा मन्त्रिपरिषद् को अपदस्थ करने के लिए उपस्थित किया जाता है। यदि लोकसभा के कुछ सदस्यों का मत यह हो कि सरकार का कार्य जनता के हित में नहीं हो रहा है तो कोई भी सदस्य इस प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है। किन्तु अध्यक्ष किसी सदस्य को इस प्रकार के प्रस्ताव करने की अनुमति उसी दशा में देता है, जब सदस्यों की एक निर्धारित संख्या खड़ी होकर, अनुमति देने के पक्ष में होना सूचित करे। ऐसे प्रस्ताव पर अध्यक्ष द्वारा निश्चित किये हुए दिन विचार हो सकेगा। इसके पास होने पर मन्त्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना होता है। इस भय से सरकार को अपना कार्य ठीक तरह से करने की प्रेरणा रहती है।

प्रश्न—मन्त्रिपरिषद् की स्वेच्छारिता और अधिकारों के दुरुपयोग पर अंकुश रखने का एक मार्ग प्रश्न पूछना भी है। सदस्य सार्वजनिक महत्व के

प्रश्न पूछकर शासन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त वे सरकार का ध्यान शासन की कमजोरियों या जनता की शिकायतों की ओर आकर्षित करते हैं। जिस विषय पर कोई प्रश्न पूछा जाता है, उससे सम्बन्ध रखनेवाला विभाग अपने कार्यों में अधिक सावधान हो जाता है। जब कोई सदस्य किसी सरकारी कर्मचारी के अनुचित कार्य के सम्बन्ध में प्रश्न करता है तो उस कर्मचारी को अपनी सफाई देनी होती है, अथवा नौकरी से हाथ धोना पड़ता है।

जब एक प्रश्न का उत्तर मिल चुके तो ऐसा पूरक प्रश्न पूछा जा सकता है, जिससे मूल प्रश्न के विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार है कि कुछ दशाओं में वह किसी प्रश्न, उसके अंश या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे। किसी सरकारी विभाग के सदस्य से वही प्रश्न किये जा सकते हैं, जिनसें सरकारी तौर पर उसका सम्बन्ध हो।

संसद का सरकार पर नियंत्रण—सरकार पर नियंत्रण रखने के लिए संसद में विविध प्रकार के प्रस्ताव किये जाते हैं, और प्रश्न पूछे जाते हैं। इसके अतिरिक्त (१) संसद कुछ समितियाँ बना देती है, जिनका काम यह देखना होता है कि सरकारी विभागों में संसद द्वारा निर्धारित नीति से काम होता है या नहीं। ऐसी प्रत्येक समिति में प्रायः एक मंत्री तथा संसद के कुछ सदस्य रहते हैं। (२) सरकार द्वारा उपस्थित विधेयकों को पास करने से पूर्व उन पर वादविवाद करती है। (३) बजट के अवसर पर प्रत्येक विभाग की मदों पर विचार करते समय उस विभाग के कार्य और स्थिति की आलोचना करती है। सरकार को यह प्रयत्न करना होता है कि किसी मांग को अस्वीकार होने या उस पर कटौती का प्रस्ताव आने का प्रसंग उपस्थित न हो। (४) संसद में विरोधी दल सरकार की आलोचना करने और उसके दोष दिखाने का काम करता रहता है।

विरोधी दल—इसका लक्ष्य यह होता है कि सरकारी त्रुटियों को प्रभावशाली ढंग से दिखाता रहे, जिससे किसी समय उसे ही अपनी सरकार बनाने का अवसर मिल जाय। यह स्पष्ट ही है कि विरोधी दल का अच्छी तरह संगठित होना बहुत आवश्यक है। उसके सामने राष्ट्र की उन्नति के

लिए निश्चित कार्य-क्रम और योजनाएँ होनी चाहिएँ। साम्प्रदायिक या अन्य क्षुद्र आधार पर उसका काम करना ठीक नहीं होता। भारत में (केन्द्र में, तथा राज्यों में) अभी विरोधी दलों का ठीक निर्माण नहीं हुआ है। कुछ आदमी सरकारी नीति या कार्यों की आलोचना कर लेते हैं, पर सरकारी दल को उनके मतों से हार जाने की चिन्ता नहीं। ऐसी स्थिति में उसे अपने स्थायित्व का भरोसा रहने से उसके एक सीमा तक स्वच्छंद होने की भावना रहती है। लोकतंत्र के लिए विरोधी दल का निर्माण अनिवार्य माना जाता है। इङ्गलैंड आदि कितने ही देशों में विरोधी दल के नेता को सरकार द्वारा वेतन दिया जाता है। भारतीय संविधान में ऐसी व्यवस्था नहीं की गयी। अस्तु, वर्तमान दशा में सरकार पर नियंत्रण यथेष्ट नहीं है।

(३) सरकारी आय-व्यय सम्बन्धी कार्य—संसद का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य संघ-सरकार की आय-व्यय निश्चित और नियंत्रित करना है। संसद यह निश्चय करेगी कि संघ की आय किन-किन साधनों से होगी, उसके लिए कौन-कौन से कर लगाये जायेंगे, और प्राप्त आय को किन-किन मदों में खर्च किया जायेगा।

राष्ट्रपति प्रत्येक आर्थिक वर्ष के आरम्भ में एक बजट या वित्त-विवरण संसद की दोनों सभाओं के सामने उपस्थित करायेगा। इसमें व्यय-अनुमान के संबन्ध में दो तरह की रकमें अलग-अलग दिखायी जायेंगी :—(१) जिन्हें संचित निधि अर्थात् सरकारी आय से देना अनिवार्य है, जिन पर संसद का मत नहीं लिया जायेगा, और (२) जिन्हें देने का प्रस्ताव है, जिन पर संसद का मत लिया जायेगा। पहली श्रेणी में राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता तथा उसके आफिस का अन्य खर्च, राज्यपरिषद् के सभापति, उपसभापति एवं लोकसभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष का वेतन और भत्ता, ऋण के रूप में देय धन; उच्चतम न्यायालय के जजों का और नियंत्रण महालेखा-परीक्षक का वेतन, भत्ता, पेन्शन; उच्च न्यायालय के जजों की पेन्शन आदि खर्चे संसद की किसी सभा के मत के लिए नहीं रखे जायेंगे, किन्तु उसकी किसी भी सभा में इनकी अनुमानित रकमों पर बहस की जायेगी।

इन्हें छोड़कर शेष अनुमानित खर्च की मदें लोकसभा में धन की मांग के रूप में रखी जायेंगी। सभा को अधिकार होगा कि उन्हें स्वीकार करे या किसी मांग को स्वीकार करने से इन्कार कर दे। वह किसी मद की रकम घटा भी सकती है। धन के लिए कोई माँग, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना, नहीं की जायेगी।

लोकसभा द्वारा माँगें स्वीकृत हो जाने के पश्चात्, लोकसभा में ही दोनों प्रकार के व्यय के लिए सरकार की संचित निधि में से धन प्राप्त करने के लिए विनियोग-विधेयक उपस्थित किया जायेगा। इस विधेयक के स्वीकृत हो जाने पर ही संचित निधि में से धन निकाल कर खर्च किया जा सकेगा।

राष्ट्रपति को अधिकार है कि यदि वह इस स्वीकृत धन-राशि को पर्याप्त न समझे और उसके विचार से भविष्य में अधिक धन की आवश्यकता हो तो वह उस के लिए अतिरिक्त या पूरक मांग भी करे। इन माँगों की कार्यवाही भी साधारण मांगों की भांति होगी। लोकसभा को अधिकार है कि वह भविष्य सम्बन्धी मांग या असाधारण मांग भी स्वीकार कर दे। इन मांगों की स्वीकृति के लिए भी साधारण मांगों की प्रक्रिया ही व्यवहार में आयेगी।

वित्त सम्बन्धी विधेयक पहले पहल राज्यपरिषद् में प्रस्तावित न किये जा सकेंगे और न ऐसे विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के बगैर प्रस्तावित किये जा सकेंगे। यह नियम किसी संशोधन के प्रस्तावित करने अथवा किसी कर के हटाने में लागू न होगा।

वार्षिक वित्त-विवरण यानी बजट पर राय देने का अधिकार केवल लोकसभा के सदस्यों को होगा, राज्यपरिषद के सदस्यों को नहीं। किसी मद में खर्च बढ़ाने सम्बन्धी प्रस्ताव अथवा नये खर्च सम्बन्धी प्रस्ताव किसी मंत्री द्वारा ही, राष्ट्रपति की अनुमति से, लोकसभा में पेश किया जा सकेगा, लोक-सभा के किसी सदस्य द्वारा नहीं।

बजट पास हो जाने के पश्चात् राज्य की आय के लिए लगाये जाने वाले करों का प्रस्ताव वित्त-विधेयक के रूप में लोकसभा में प्रस्तुत किया जायेगा। इन पर भी लोकसभा के सदस्यों को राय देने का अधिकार होगा, राज्यपरिषद के सदस्यों को नहीं।

नया संविधान बनने से पूर्व अर्थमंत्री हर साल २८ फरवरी को अपना बजट विधान-मंडल के सामने रख देता था और ३१ मार्च तक वह वाद-विवाद के पश्चात् पास हो जाता था। अब संविधान में ऐसी कोई निश्चित तिथि इस कार्य के लिए नहीं रखी है। संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह बजट पास होने तक संघ-सरकार का खर्च चलाने के लिए एक निश्चित रकम स्वीकार करे। इसके पश्चात् संसद के सदस्य अपनी सुविधानुसार बजट पर विचार करके उसे पास कर सकते हैं। उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि कि वह किसी निश्चित तिथि तक उसे पास कर दें। संसद को पूरक बजट भी पास करने का अधिकार है, यह उस दशा में किया जायेगा, जब सरकार पर कोई असामयिक खर्च आ पड़े, सरकार को किसी विशेष कारणवश धन की कमी पड़ जाये। बजट पास होने के पश्चात् नियंत्रक महालेखा-परीक्षक (कंट्रोलर आडीटर-जनरल) का काम यह देखना होगा कि खर्च बजट में स्वीकृति के अनुसार होता है या नहीं।

नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक—नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। वह अपने पद से केवल उसी रीति और उन्हीं कारणों से हटाया जा सकेगा, जिस रीति और जिन कारणों से उच्चतम न्यायाधीश हटाया जा सकता है। उसका वेतन तथा सेवा की शर्तें संसद निश्चय करेगी और इस निश्चय से पूर्व उसे ४०००) मासिक वेतन दिया जायेगा। उसके कार्यकाल में, उसके वेतन तथा भत्ते आदि में कोई कमी न की जा सकेगी। संघ और राज्यों के हिसाब को ऐसे रूप में रखा जायेगा, जैसा कि भारत का नियन्त्रक-महालेखा-परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, निश्चित करेगा।

(४) संविधान में संशोधन—संविधान में संशोधन सम्बन्धी विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकेगा। यदि यह विधेयक दोनों सदनों के सदस्यों के बहुमत एवं उपस्थित सदस्यों में दो-तिहाई से अधिक सदस्यों द्वारा पास हो जाता है और राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है तो विधेयक के अनुसार संविधान में परिवर्तन हो जायेगा। स्वायत्त राज्यों के अधिकारों के क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों में संविधान में परिवर्तन करने के

पूर्व, उन राज्यों के विधान-मंडलों की स्वीकृति आवश्यक होगी। इस सम्बन्ध में विशेष अन्यत्र लिखा गया है।

भारतीय संसद की विशेषताएँ

संसद की प्रभुता—भारतीय संघ की संसद पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न है। बाह्य रूप से इसकी प्रभुता (सावरेन्टी) असीमित है, अर्थात् किसी बाहर की शक्ति का इस पर कोई दबाव या प्रभाव नहीं है, परन्तु आन्तरिक रूप से इसकी प्रभुता राज्यों के अधिकार द्वारा सीमित है जैसा कि संघात्मक पद्धति वाले अन्य देशों में है। प्रत्येक संघात्मक संविधान में केन्द्र और राज्यों के अधिकार बंटे रहते हैं। न्यायापालिका इस बात का नियंत्रण करती है कि केन्द्र और राज्य एक दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप न करें। भारतीय संविधान में भी यही सिद्धांत अपनाया गया है।

राज्यपरिषद् के अधिकार—राज्यपरिषद को, लोकसभा के मुकाबले में, बहुत कम अधिकार हैं। साधारण विधि बनाने में राज्यपरिषद् अधिक-से-अधिक छः माह तक विधेयक की स्वीकृति रोक सकती है। इसके पश्चात् विधेयक संयुक्त अधिवेशन में भेजा जाएगा, जहाँ लोकसभा के सदस्यों की संख्या दूनी होगी और विधेयक आसानी से स्वीकृत हो जाएगा। इस प्रकार किसी भी विधेयक को विधि का रूप देना लोकसभा के हाथ में है।

वित्त और धन सम्बन्धी मामलों में राज्यपरिषद के अधिकार अत्यन्त सीमित हैं। अनुदान की माँग करने का तो राज्यपरिषद को कोई अधिकार है ही नहीं, और धन सम्बन्धी विधेयक पहले उसमें प्रस्तावित नहीं किये जा सकते। फिर उन पर उसकी सिफारिशों को मानना न मानना लोकसभा की इच्छा पर है, इस प्रकार राज्यपरिषद राज्य के व्यय पर कोई नियन्त्रण नहीं रख सकती। आर्थिक बिलों की स्वीकृति में वह केवल १४ दिन की देर कर सकती है।

राज्यपरिषद को कम अधिकार प्रदान करना इस दृष्टि से न्याय-सङ्गत है कि सिद्धान्ततः लोकसभा जनता का प्रतिनिधित्व करती है और राज्यपरिषद राज्यों का। यह उचित ही है कि राष्ट्र के प्रतिनिधियों का

अधिकार सर्वोच्च रहे और वित्त एवं धन सम्बन्धी विषय उनके नियंत्रण में रहें।

राष्ट्रपति का निषेधाधिकार—संसार के प्रमुख संविधानों में कार्यपालिका के प्रधान को यह अधिकार रहता है कि वह विधान-मंडल द्वारा स्वीकृति विधेयक को अपनी स्वीकृति प्रदान न करे। यह वैधानिक प्रधान का निषेधाधिकार कहा जाता है। भारत में भी राष्ट्रपति को यह निषेधाधिकार है, परन्तु यहाँ यह एक प्रकार से किसी विधेयक को स्थगित करने का ही अधिकार है, क्योंकि राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिलने पर संसद उसे साधारण बहुमत से फिर स्वीकार कर सकती है और इस बार राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करने ही होंगे।

साधारण दृष्टि से देखने पर यह उचित प्रतीत नहीं होता कि संपूर्ण राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृत विधेयक को राष्ट्रपति अस्वीकार कर दे, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर राष्ट्रपति को यह अधिकार देना न्याय-संगत है। एक तो राष्ट्रपति भी देश की जनता द्वारा निर्वाचित है; दूसरे किसी समय संसद अपने निर्णय में गलती कर सकती है और राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार द्वारा संसद को फिर विचार करने का मौका देता है, इससे संसद अपनी भूल का सुधार कर सकती है। इससे संसद के अधिकारों में कोई खास कमी नहीं आती, क्योंकि उसे राष्ट्रपति की सिफारिश को मानने या न मानने का अधिकार है; वह चाहे तो विधेयक को दूसरी बार पास करके राष्ट्रपति की सिफारिश का प्रभाव रद्द कर सकती है।

संसद और न्यायपालिका—न्यायपालिका को अधिकार है कि वह संसद द्वारा निर्मित किसी विधि को, यदि वह संविधान के अनुरूप न हो, अवैधानिक करार दे और उसके प्रभाव को सर्वथा समाप्त कर दे। इस अधिकार के द्वारा न्यायपालिका कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण रख सकेगी, अन्यथा कार्यपालिका संसद में अपना बहुमत होने के बल पर चाहे जो विधि बनाकर नागरिकों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर सकती है।

संसद और कार्यपालिका—संसद और कार्यपालिका का सम्बन्ध बहुत घनिष्ट है; वे एक दूसरे की पूरक हैं। राष्ट्रपति एक ओर कार्यपालिका का प्रधान है, दूसरी ओर संसद का अंग भी। मंत्रिपरिषद के सदस्य कार्यपालिका के सदस्य हैं, तो संसद के नेता भी।

मन्त्रिपरिषद कानूनी तौर पर राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है किन्तु उसका वास्तविक उत्तरदायित्व संसद के ही प्रति है। संसद के विश्वास के अभाव में मन्त्रिपरिषद एक क्षण नहीं रह सकती। संकटकालीन स्थिति में, छः सप्ताह के उपरान्त, अध्यादेशों की स्वीकृति भी संसद से लेना आवश्यक है। राष्ट्रपति अपने अधिकारों का कभी दुरुपयोग न करे, इसके लिए उस पर महाभियोग लगा कर उसे अपदस्थ करने का अधिकार भी संसद को ही है।

संसद कार्यपालिका पर नियंत्रण अवश्य रखेगी किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसके सामने मन्त्रिपरिषद का कोई महत्व ही नहीं है। व्यावहारिक राजनीति में तो संसद के बहुमत-दल के नेता ही मन्त्रिपरिषद के सदस्य होते हैं, वे संसद की रुचि और मत के निर्माता भी होते हैं। अपने पद के प्रभाव और शक्ति के कारण वे संसद के सदस्यों को ही नहीं, देश की जनता को भी प्रभावित करने में समर्थ होते है। जब कभी मन्त्रिपरिषद ऐसा अनुभव करे कि उसे संसद का समर्थन प्राप्त नहीं है किन्तु जनता का समर्थन प्राप्त है तो वह राष्ट्रपति को लोकसभा भङ्ग करने का परामर्श दे सकती है; और राष्ट्रपति लोकसभा को भङ्ग करके नये निर्वाचन करा सकता है। यद्यपि संसद को वित्त और धन सम्बन्धी विषयों का नियंत्रण करने का अधिकार है, व्यवहार में इन विषयों का भी नियंत्रण मन्त्रिपरिषद करती है।

आज कल राज्य का कार्यक्षेत्र इतना विशाल हो गया है कि संसद के साधारण सदस्यों को बहुत सी बातों के लिए मन्त्रियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जब तक मन्त्रिपरिषद का संसद में बहुमत रहता है, वह अबाध रूप से (नये निर्वाचन तक) शासन करती रहती है।

तेरहवाँ अध्याय

उच्चतम न्यायालय

इस न्यायालय की शक्ति और अधिकार-क्षेत्र राष्ट्रमंडल के किसी भी देश के सर्वोच्च न्यायालय तथा अमरीका के उच्चतम न्यायालय से अधिक विस्तृत हैं।

श्री सीतलवाड़ (एटार्नी जनरल)

उच्चतम न्यायालय की स्थापना और सङ्गठन—उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) सारे भारत के लिए है। यह संघात्मक सरकार का आवश्यक अंग है। इसका प्रमुख कार्य संविधान की अधिकार-पूर्ण व्याख्या करना एवं राज्यों और केन्द्रों के अधिकारों सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करना है। पहले बताया जा चुका है कि भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्र के अधिकार एवं कार्य-क्षेत्र निर्धारित हैं, और प्रत्येक को अपने क्षेत्र में कार्य करने की स्वतंत्रता है। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची के विषयों में दोनों का अधिकार है। कोई एक दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण या हरण न करे; इस व्यवस्था के लिए देहली में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गयी है। यह सब प्रकार के मामलों में अपील का अंतिम न्यायालय है। इसके अतिरिक्त यह नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक, राष्ट्रपति का परामर्शदाता और संविधान का संरक्षक है।

इसमें एक मुख्य न्यायाधिपति (चीफ जस्टिस) और सात न्यायाधीश (जज) होंगे। संसद विधि द्वारा उपरोक्त संख्या में वृद्धि कर सकती है। न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा; इस कार्य में राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के मुख्य न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों का जिन्हें वह उचित समझेगा, परामर्श लेगा। मुख्य न्यायाधि-

पति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति का परामर्श अवश्य लेगा।

न्यायाधीशों की योग्यता, वेतन और भत्ता—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होना आवश्यक होगा—

१—वह भारत का नागरिक हो।

२—वह कम से कम पाँच वर्ष किसी उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) का न्यायाधीश रह चुका हो, या

३—उसने कम से कम १० वर्ष तक उच्च न्यायालय में वकालत की हो, या

४—वह, राष्ट्रपति के विचार से, प्रसिद्ध विधिवेत्ता (कानून-ज्ञाता) हो।

५—वह ६५ वर्ष से कम आयु का हो।

वेतन और भत्ता—मुख्य न्यायाधिपति को ५,००० रु० और अन्य न्यायाधीशों को ४,००० रु० मासिक वेतन तथा निर्धारित भत्ता मिलेगा। उनके वेतन और भत्ते में संसद (पार्लिमेंट) कानून बना कर समय-समय परिवर्तन कर सकेगी, परन्तु किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के पश्चात् उसके वेतन या अधिकार आदि में कोई कमी नहीं की जायगी।

जब मुख्य न्यायाधिपति का पद रिक्त होगा, या वह अनुपस्थिति आदि के कारण कार्य न कर सकेगा, तब उसका कार्य न्यायालय का वह न्यायाधीश करेगा, जिसे राष्ट्रपति इसके लिए नियुक्त करे।

विशेष प्रयोजन के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति—यदि किसी समय उच्चतम न्यायालय के कार्य के लिए न्यायाधीशों की यथेष्ट (गण-पूरक) संख्या न हो तो मुख्य न्यायाधिपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय की बैठकों में न्यायाधीश का वह काम करने के लिए नियुक्त कर सकता है। ऐसा करने से पूर्व मुख्य न्यायाधिपति इसके लिए राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करेगा और उक्त उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से मंत्रणा करेगा। जिस न्यायाधीश की इस प्रकार नियुक्ति होगी,

उसे अपने इस कार्य के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के अधिकार आदि होंगे।

मुख्य न्यायाधिपति उच्चतम न्यायालय और भूत-पूर्व संघ-न्यायालय के निवृत्ति-प्राप्त न्यायाधीशों को उच्चतम न्यायालय का काम करने के लिए, उनकी स्वीकृति से, नियुक्त कर सकेगा।

न्यायाधीशों की शपथ—जो व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जायेगा, वह अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किये हुए दूसरे आदमी के सामने, इस प्रकार की प्रतिज्ञा करेगा, और इस पर हस्ताक्षर करेगा—"मैं (नाम)...ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या गम्भीरता पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं कानून द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची भक्ति रखूँगा और अपनी पूरी योग्यता, जानकारी और विवेक से ठीक-ठीक और वफादारी के साथ बिना प्रीति या द्वेष के अपने पद के कर्तव्यों को पूरा करूँगा और संविधान और कानूनों का मान बनाये रखूँगा।"

न्यायाधीशों का कार्य काल—प्रत्येक न्यायाधीश ६५ वर्ष की उम्र तक अपने पद पर रहेगा, पर वह चाहे तो इससे पूर्व भी, राष्ट्रपति के पास लिखित त्यागपत्र भेजकर, अपना पद छोड़ सकता है। उसे उसके पद से तभी हटाया जा सकता है, जब कि संसद की दोनों सभाएँ एक ही अधिवेशन में उसके हटाये जाने का ऐसा निवेदन-पत्र रखें कि उसमें दुराचार या असमर्थता का दोष प्रमाणित हो चुका है, और उस निवेदन-पत्र का, उपस्थित और मत देने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्य समर्थन करें, और इसके बाद राष्ट्रपति उसे हटाये जाने की आज्ञा दें।

जो व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है, वह भारत के न्यायालय में वकालत या अन्य कार्य नहीं कर सकेगा।

न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र—इस न्यायालय के दो प्रकार के अधिकार-क्षेत्र हैं :—प्रारम्भिक, और अपील सम्बन्धी।

१—नीचे लिखे ऐसे मामलों का विचार करना उच्चतम न्यायालय का प्रारम्भिक (ओरिजिनल) अधिकार-क्षेत्र होगा, और इसके सिवा किसी दूसरे न्यायालय का न होगा :—(क) जिनमें एक पक्ष भारत सरकार हो और दूसरा पक्ष एक या अधिक राज्य हों; या (ख) जिनमें एक ओर भारत-सरकार और एक या अधिक राज्य हों, और दूसरी ओर एक या अधिक राज्य हों; या (ग) जो दो या अधिक राज्यों में हों। यह अधिकार उस दशा में और उसी सीमा तक होगा, जब उस मामले में कोई ऐसा प्रश्न उठता हो, जिस पर किसी कानूनी अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो।

२—उच्चतम न्यायालय को राज्यों के हाइकोर्टों (उच्च न्यायालयों) की तीन प्रकार की अपीलें सुनने का अधिकार है—(क) संवैधानिक, (ख) दीवानी, और (ग) फौजदारी।

(क) संवैधानिक मामले में उच्च न्यायालय के फैसलों की अपील तभी हो सकेगी; जब उच्च न्यायालय इस बात का प्रमाणपत्र दे दे कि इस मामले में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई सारभूत कानूनी प्रश्न विचारणीय है। जहाँ उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाणपत्र न दिया हो, वहाँ यदि उच्चतम न्यायालय का समाधान हो जाये तो वह भी उक्त प्रमाणपत्र दे सकता है।

(ख) किसी दीवानी मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील तभी की जा सकेगी, जब कि उच्च न्यायालय यह प्रमाणपत्र दे दे कि उस मामले की धन-राशि या मूल्य बीस हजार रुपये से कम नहीं है, या वह मामला उच्चतम न्यायालय के सामने अपील करने योग्य है।

(ग) फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील ऐसी दशा में होगी, जब नीचे की अदालत ने किसी अपराधी की रिहाई की आज्ञा दी हो, और उच्च न्यायालय ने उस आज्ञा को रद्द करके मृत्यु-दण्ड का आदेश दिया हो, या जब उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण के लिए अपने पास मँगा लिया हो, और उसमें अपराधी को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी हो, अथवा उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे दे कि मामला उच्चतम न्यायालय के सामने अपील करने लायक है।

उच्चतम न्यायालय स्वयं अपनी ओर से भी, फौजी न्यायालयों को छोड़ कर, किसी भी न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की विशेष अनुमति दे सकता है। सङ्घ-सूची के विषयों में से किसी के बारे में उच्चतम न्यायालय को ऐसे अधिकार प्राप्त होंगे, जैसे संसद विधि द्वारा प्रदान करे।

इन अधिकारों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश, या लेख प्रयोग करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त अन्य मामलों में भी संसद उच्चतम न्यायालय को उपर्युक्त लेख निकालने का अधिकार दे सकती है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के भीतर सब न्यायालयों पर लागू होगी। अपने अधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय ऐसे आदेश दे सकेगा, जिससे उसके सामने पेश किये हुए मामले पर पूर्ण प्रकाश पड़े, और उसे अपना न्याय-कार्य सम्पादन करने में सुविधा हो। इस सम्बन्ध में वह किसी व्यक्ति को हाजिर कराने का या किन्हीं दस्तावेजों को प्रगट करने आदि का आदेश दे सकेगा।

अधिकार-क्षेत्र की वृद्धि—उच्चतम न्यायालय को भारतीय सङ्घ सम्बन्धी विषयों के ऐसे अधिकार भी होंगे, जो संसद उसे कानून बनाकर प्रदान करे। अगर भारत सरकार और कोई राज्य आपस में समझौता करके किसी विषय के सम्बन्ध में कुछ और अधिकार दे दे और संसद उसके सम्बन्ध में आवश्यक कानून बना दे तो उच्चतम न्यायालय को वह अधिकार भी प्राप्त होगा। संसद कानून द्वारा उच्चतम न्यायालय को ऐसे पूरक अधिकार दे सकती है, जो इस विधान के किसी नियम से असङ्गत न हो और जिनको प्राप्त करके उच्चतम न्यायालय अपना कार्य और अच्छी तरह कर सके।

राष्ट्रपति को परामर्श देने का कार्य—उच्चतम न्यायालय का कर्तव्य होगा कि जब राष्ट्रपति किसी विधि अथवा तथ्य सम्बन्धी प्रश्न पर उससे सलाह माँगे तो वह उस पर अपनी राय दे। संविधान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि राष्ट्रपति को वह सलाह माननी पड़ेगी अथवा नहीं। उसकी शब्दावली से यही मालूम होता है कि उसे मानना या न मानना राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर होगा।

उच्चतम न्यायालय के नियम आदि—उच्चतम न्यायालय को अपनी कार्य-प्रणाली और प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों को स्वयं बनाने का अधिकार है, परन्तु उन नियमों के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

संविधान के किसी भाग की व्याख्या करने के लिए अथवा राष्ट्रपति द्वारा परामर्श माँगे जाने पर कम से कम पाँच न्यायाधीश उपर्युक्त प्रश्नों पर निर्णय देने के लिए बैठेंगे। यह न्यायालय न्यायाधीशों के बहुमत से निर्णय देगा और निर्णय खुले न्यायालय में दिया जायगा। यदि किसी न्यायाधीश का मत बहुमत से भिन्न है तो उसे अलग से अपना मत व्यक्त करने का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियाँ करने तथा उनकी सेवा की शर्तों के नियम बनाने का कार्य भारत का मुख्य न्याया-धिपति, अथवा उसके द्वारा निर्देशित उस न्यायालय का अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा। परन्तु राष्ट्रपति यह नियम बना सकेगा कि कोई व्यक्ति जो पहिले न्यायालय में के काम लगा हुआ नहीं है. न्यायालय के किसी पद पर, सङ्घ-लोकसेवा-आयोग के परामर्श बिना, नियुक्त न किया जायेगा।

न्यायालय सम्बन्धी खर्च और आमदनी—उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और नौकरों को दी जाने वाली वेतन, भत्ता या पेन्शन को मुख्य न्यायाधिपति, राष्ट्रपति से परामर्श करके निश्चित करेगा। यह सब खर्च तथा न्यायालय का प्रबन्ध-व्यय संघ सरकार की आय से, अनिवार्य रूप से, दिया जायेगा। (इस पर संसद की स्वीकृति नहीं ली जायेगी)। न्यायालय को फीस तथा अन्य मदों से जो आय होगी वह भारतीय संघ की आय में सम्मिलित होगी।

विशेष वक्तव्य—भारत के उच्चतम न्यायालय को संसार के समस्त उच्चतम न्यायालयों से अधिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसकी स्वतन्त्रता के विषय में पहले (पाँचवें अध्याय में) लिखा जा चुका है। संविधान की व्याख्या के अतिरिक्त, यह दीवानी तथा फौजदारी मामलों में भी अन्तिम अपील का न्यायालय है। इसकी यह विशेषता अच्छी तरह तब मालूम होती

है; जब हम यह ध्यान में रखें कि अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय केवल अमरीकी विधान का संरक्षक है; जहाँ तक दीवानी और फौजदारी मामलों का सम्बन्ध है, वहाँ के राज्यों के हाईकोर्टों का निर्णय ही अंतिम समझा जाता है। ऐसी बात भारत में नहीं है। यहाँ देश भर का, सब प्रकार के मामलों में एक ही उच्चतम और अंतिम न्यायालय है।

उच्चतम न्यायालय की स्थापना से पूर्व भारत के लिए अपील की अन्तिम अदालत इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल थी, अब वह बात नहीं रही। किन्तु उसके पिछले फैसलों की नजीरें हमारे उच्चतम न्यायालय के भावी निर्णयों पर अवश्य ही प्रभाव डालेंगी, क्योंकि हमारी विधि-प्रणाली या कानून-पद्धति का मूल इंगलैंड की विधि प्रणाली है।

चौदहवाँ अध्याय

संघ के राज्य

"देश की एकता को सुरक्षित रखे बिना उसकी स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती। भारतीय रियासतों का एकीकरण एक अपूर्व अहिन्सक क्रान्ति है।"

वर्तमान राज्यों के भेद—भारतीय संघ, राज्यों का संघ है। स्वाधीन होने से पूर्व भारत अनेक भागों में बँटा हुआ था। कुछ भाग काफी प्रगतिशील थे, तो कुछ (खासकर देशी राज्य) पिछड़े हुए। स्वाधीन होने पर यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि देश का शासन एक ही आधार पर हो, परन्तु उपर्युक्त सब भागों को तुरन्त ही समान अधिकार और एक ही व्यवस्था प्रदान करना ठीक नहीं जँचा। इसलिए भारत के वर्तमान राज्य तीन भागों में विभक्त किये गये :—क, ख, और ग। इनके अतिरिक्त संघ के राज्य-क्षेत्र में अन्दमान-निकोबार प्रदेश भी है।

१—'क' वर्ग के राज्य—ये राज्य वे हैं, जो नया संविधान बनने से पहले गवर्नरों के प्रान्त थे या उन प्रान्तों के भाग। इनके प्रधान शासकों को राज्यपाल (गवर्नर) कहा जायेगा। ये राज्य स्वायत्त (अपना शासन स्वयं करनेवाले) हैं। इनकी कार्यपालिका शक्ति वास्तव में मन्त्रिपरिषद् में निहित होगी; जो विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होगी। ये राज्य निम्नलिखित हैं :—

[१] आसाम, [२] पश्चिमी बङ्गाल, [३] बिहार, [४] बम्बई, [५] मद्रास, [६] आन्ध्र, [७] उड़ीसा, [८] पूर्वी पञ्जाब, [९] मध्य प्रदेश और [१०] उत्तर प्रदेश। इनमें से अन्तिम दो को पहले क्रमशः मध्यप्रान्त और बरार, तथा संयुक्तप्रान्त कहा जाता था।

२—'ख' वर्ग के राज्य—इन राज्यों में देशी रियासतें या उनके संघ सम्मिलित हैं। इनके प्रधान शासकों को राजप्रमुख कहा जाता है, और उनकी सहायता के लिए मन्त्रिपरिषदें हैं, जैसे कि 'क' वर्ग के राज्यों में हैं। यद्यपि ये राज्य सन् १९५२ के बाद स्वायत्त हैं, संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि दस वर्ष तक, या उस अवधि तक जो संसद निर्धारित करे, इन राज्यों की सरकारों का केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रण होगा।

ये राज्य निम्नलिखित हैं :—[१] हैदराबाद [२] जम्मू और कश्मीर [३] मैसूर [४] मध्यभारत [५] पटियाला तथा पंजाब-राज्य-संघ [६] राजस्थान [७] सौराष्ट्र [८] त्रावनकोर-कोचीन।

बहुत समय तक सामन्तशाही में रहने के कारण ये राज्य बहुत पिछड़े हुए थे। इसलिए आरम्भ में इनमें केन्द्र का अनुशासन कुछ विशेष रखना आवश्यक प्रतीत हुआ।

मैसूर को केन्द्रीय सरकार के अनुशासन से मुक्त कर दिया गया है। उसका वैधानिक स्थान अब प्रायः 'क' वर्ग के राज्यों के समान ही है। 'ख' वर्ग के कुछ अन्य राज्यों से भी केन्द्रीय नियंत्रण जल्दी ही हटने की बात चल रही है।

आगे इन राज्यों के बारे में कुछ खास बातों का उल्लेख किया जाता है।

हैदराबाद—आबादी के लिहाज से यह भारत की सबसे बड़ी रियासत थी। यह सबसे अधिक धनवान भी थी। इसकी आबादी के तीन हिस्से थे—आन्ध्र, महाराष्ट्र और कनाड़ी। शासक 'निजाम' कहलाता था। यहाँ साम्प्रदायिकता बहुत रही। रजाकारों ने यहाँ भयंकर आतंक स्थापित कर रखा था। उनकी गलत सलाह और प्रभाव के कारण निजाम ने कुछ समय भारतीय संघ के प्रति विरोधी भाव रखा। वे एक स्वतन्त्र राज्य का स्वप्न देखने लगे। आखिर, सितम्बर १९४८ में, भारत सरकार ने मजबूर होकर यहाँ पुलिस-कार्यवाही की। रजाकारों की सत्ता टूटते ही निजाम ने भारतीय संघ की अधीनता स्वीकार करली। अब यह राज्य पूर्ण रूप से भारतीय संघ में विलीन है।

कश्मीर—कश्मीर की भौगोलिक स्थिति बड़े महत्व की है। इसकी सीमा चीन, अफगानिस्तान और रूस आदि कई दूसरे राष्ट्रों के अलावा भारतीय संघ और पाकिस्तान दोनों से मिली हुई है। यह राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित है पर पाकिस्तान इस पर दावा कर रहा है। उसने इसका कुछ हिस्सा दबा भी रखा है। काफी समय बीत जाने पर भी संयुक्तराष्ट्र ने इस विषय को नहीं सुलझाया, इसलिए संयुक्तराष्ट्र की उपेक्षा करदी गयी है।

मैसूर—यहाँ अंशतः उत्तरदायी शासनपद्धति बहुत समय से चली अयी है। यहाँ प्रतिनिधि सभा (रेप्रेजेंटिव असेम्बली) सन् १८८१ में स्थापित हुई थी। यहाँ के विधान-मण्डल में दो सदन हैं—प्रतिनिधि सभा और विधान-परिषद्।

मध्यभारत—मध्यभारत का सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के लिए भारतीय इतिहास में विशेष स्थान रहा है। मध्यभारत-संघ का उद्घाटन २८ मई १६४८ को ग्वालियर में हुआ। राजस्थान की तरह यहाँ की मुख्य समस्या जागीरदारी प्रथा है। सत्ता-प्राप्ति के बाद यहाँ के कांग्रेस-जनों में पदों की प्राप्ति के लिए शोचनीय मतभेद हो गये। भ्रष्टाचार के आरोपों से मन्त्रिमण्डल बहुत बदनाम हुआ। जांच हुई और तत्कालीन मुख्य मंत्री को त्यागपत्र देना पड़ा। संघ की स्थायी राजधानी ग्वालियर हो या इन्दौर—इस विषय को लेकर कार्यकर्त्ताओं में काफी खींचातानी हुई। अब उसका साल में कुछ-कुछ समय दोनों जगह रहना तय हुआ है। इसमें अपव्यय के अतिरिक्त जनता की परेशानी भी है।

पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ—इस राज्य को इन शब्दों के अंग्रेजी रूपों के प्रथमाक्षरों के जोड़ से 'पेप्सू' कहा जाता है। इस राज्य का उद्घाटन १५ जुलाई १६४८ को हुआ। इसमें पटियाला, कपूरथला, झींद, फरीदकोट तथा कलसिया रियासतें सम्मिलित हैं। इस सङ्घ के राजप्रमुख महाराजा पटियाला हैं।

राजस्थान—इस राज्य का निर्माण क्रमशः कई मंजिलों में हुआ है। पहले अलवर, धौलपुर, करौली और भरतपुर ने मिलकर १८ मार्च १६४८ के

मत्स्य-संघ बनाया। इन्हीं दिनों २१ मार्च १९४८ को कोटा, बून्दी, किशनगढ़ डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और शाहपुरा ने मिलकर राजस्थान के संयुक्त राज्य का निर्माण किया। १८ अप्रेल १९४८ को उदयपुर के सम्मिलित हो जाने पर संयुक्त राजस्थान का पुनर्गठन किया गया। इसके बाद जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर पूर्व स्थापित राजस्थान के संयुक्त राज्य में और सम्मिलित हो गये, और ३० मार्च १९४९ को रियासती सचिवालय के अध्यक्ष और भारत के उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल ने इस नवीन पुनस्संगठित राजस्थान के संयुक्त राज्य का उद्घाटन समारोह सम्पन्न किया। १५ मई १९४९ को मत्स्य-संघ भी संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित हो गया। सिरोही का मुख्य भाग इस संघ में नहीं मिलाया गया, इससे लोगों को असन्तोष है। अजमेर एक अलग ही राज्य बनाया हुआ है।

अस्तु, राजस्थान भारत का आकार में सबसे बड़ा राज्य है। परन्तु इसकी समस्याएँ भी कम नहीं—जागीरी अराजकता, जनता की निर्धनता और अशिक्षा, साधनों का अविकास और पश्चिम में सैकड़ों मील तक पाकिस्तान से मिला होना। इस संघ के राजप्रमुख हैं; जयपुर के महाराज।

सौराष्ट्र—इस संघ का उद्घाटन १५ फरवरी सन् १९४८ को हुआ। इसमें काठियावाड़ की २२१ रियासतें शामिल हैं, इनमें से अधिकांश बहुत ही छोटी-छोटी थीं। नवानगर के 'जामसाहब' इसके राजप्रमुख हैं। इस ने जागीरदारी-उन्मूलन, रेलों के विस्तार, और अकाल-निवारण सम्बन्धी अच्छा कार्य किया है।

त्रावनकोर-कोचीन—इस संघ को 'केरल संघ' भी कहा जाता है। इसका उद्घाटन १ जुलाई १९४९ को हुआ। शासन-सुधार में इस संघ की दोनों रियासतें, भारत की अन्य रियासतों की अपेक्षा बहुत प्रगतिशील रही हैं। शिक्षा और साक्षरता की दृष्टि से भी इनका मानदंड भारत के सब स्थानों से ऊँचा रहा है। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था की यह विशेषता है कि वह पितृ-प्रधान नहीं, मातृ-प्रधान है। किसी आदमी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नहीं होता, यह अधिकार बहिन के लड़के को होता है। राजा,

मालावार के नियम के अनुसार, राजघराने की लड़की या बहिन के बड़े पुत्र को गद्दी दे सकता है। त्रावनकोर के महाराजा इस संघ के राजप्रमुख हैं।

३—'ग' वग के राज्य—संविधान के अनुसार 'ग' वर्ग में वे राज्य हैं, जिनका शासन राष्ट्रपति (लेफ्टिनेन्ट गवर्नर या चीफ कमिश्नर द्वारा) करवाता है। ये इस समय कुछ मिलाकर दस हैं—(१)अजमेर, (२) कुर्ग, (३) दिल्ली, (४) भोपाल, (५) हिमाचल प्रदेश, (६) विंध्य प्रदेश, (७) विलासपुर, (८) मनिपुर, (६) त्रिपुरा और (१०) कच्छ। इनमें से पहले तीन तो पहले 'चीफ कमिश्नरों के प्रान्त' हैं और शेष पहले की रियासतें या उनके संघ हैं। संविधान बनने के समय इनमें विन्ध्य-प्रदेश नहीं था (यह तब 'ख' वर्ग में था), तथा कूचविहार भी इसी वर्ग में सम्मिलित था जिसे पीछे पश्चिमी बंगाल में मिला दिया गया।

कुछ राज्यों सम्बन्धी जानने योग्य बातें; दिल्ली—सन् १६१२ से यह शहर ब्रिटिश भारत की राजधानी बना, तब से इसका महत्व बढ़ता गया है। पहले इसे पंजाब से अलग करके केन्द्रीय सरकार के अधीन किया गया और इसका शासन चीफ-कमिश्नर द्वारा कराया जाने लगा। यहाँ के नागरिकों ने यह व्यवस्था बदलवाने और दिल्ली को एक स्वायत्त राज्य बनवाने के बहुत प्रयत्न किये। कई योजनाएँ बनीं। अन्त में अब सन् १६५२ में थोड़ी सी सफलता मिली है।

अजमेर—अंग्रेजों ने इसका शासन सन् १८१८ से अपने हाथ में लिया था। सन् १८२१ से १८७१ तक इसका शासन संयुक्तप्रांत के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा संचालित रहा। बाद में राजस्थान की रियासतों पर नियंत्रण रखने के लिए यह भारत सरकार द्वारा शासित चीफ-कमिश्नरी हो गया। अब राजस्थान भारत की एक स्वायत्त इकाई है। अजमेर तो मानो राजस्थान का हृदय ही है। ऐसी दशा में इसे राजस्थान से अलग रखना उचित नहीं है। पहले तो यह आशा हो चली थी कि अजमेर राजस्थान में सिर्फ मिलने वाला ही नहीं है, उसकी राजधानी भी बनने वाला है। उस बात को काफी समय हो गया, और राजधानी के लिए कई अन्य नामों का सुझाव आकर

आखिर जयपुर को यह पद मिल गया। अस्तु, अब अजमेर प्रदेश जल्दी ही राजस्थान में मिल जाना चाहिए, जिससे यहाँ की जनता शासनिक तथा राजनैतिक अधिकार पाने के अतिरिक्त राजस्थान के विकास की योजनाओं में यथेष्ट भाग ले सके और समुचित लाभ उठा सके।

विन्ध्य प्रदेश—यह संघ ४ अप्रेल १९४८ को, बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड की ३५ रियासतों को मिलाकर 'ख' वर्ग का राज्य बनाया गया था। रीवाँ-नरेश इसके राजप्रमुख थे। कुछ समय बाद यहाँ राजनैतिक अशान्ति और कुव्यवस्था हो गयी। इस पर केन्द्रीय सरकार ने यहाँ के मंत्रिमंडल को हटा कर १ जनवरी १९५० से इसे 'ग' वर्ग का राज्य बना दिया।

'ग' वर्ग के राज्यों का भविष्य—जब से 'ग' वर्ग के राज्यों का निर्माण हुआ है, लोगों के सामने यह सवाल है कि आखिर इनकी जरूरत क्या है? क्या इनमें से अजमेर को राजस्थान में, भोपाल को मध्यभारत में तथा शेष को उनके पास के बड़े राज्यों में नहीं मिलाया जा सकता? जब देशी रियासतों को भारतीय संघ में मिलाया गया तब इस तरह की बात उठी थी। पर वह आगे नहीं बढ़ी। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, बहुत से अधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों का व्यक्तिगत स्वार्थ भी इस बात में होता जाता है कि इन राज्यों का अस्तित्व बना रहे। मई १९५४ में इन राज्यों से मुख्य मंत्रियों ने इस पक्ष की जोरदार वकालत की। इस वर्ष (१९५५) उनका सम्मेलन देहली में हुआ, उसमें उन्होंने लोकतंत्र और उत्तरदायी शासन के नाम पर अपने अधिकारों की माँग की है, पर यह नहीं सोचा कि इन राज्यों की पृथक्ता राष्ट्रीय एकता में कितनी बाधक है। ये राज्य ऐसी समस्या हैं, जिनका हल इन्हें समाप्त किये बिना होता नहीं दीखता। इस सम्बन्ध में विशेष सोलहवें अध्याय में देखिये।

'घ' वर्ग का राज्य—भारतीय संघ में उपर्युक्त तीन प्रकार के राज्यों के अतिरिक्त एक प्रदेश और है। वह है, अन्दमान-निकोबार। यद्यपि यह प्रदेश भारतीय संघ में सम्मिलित है, पर यह कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है। इस विषय में विशेष जानकारी आगे दी जायगी।

नये राज्य बनाने की व्यवस्था—संविधान में संसद को इस विषय में निम्नलिखित प्रकार के कानून बनाने का अधिकार है :—

१—वह एक नये राज्य का निर्माण, किसी राज्य के दो भाग करके अथवा दो राज्यों को एक करके या किन्हीं राज्यों के भागों को मिलाकर, कर सकेगी।

२—किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी।

३—किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी।

४—किसी राज्य की सीमा में परिवर्तन कर सकेगी।

५—किसी राज्य का नाम बदल सकेगी।

उपर्युक्त विषयों पर कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना, संसद में प्रस्तावित न किया जा सकेगा। यदि ऐसा विधेयक 'क' या 'ख' वर्ग के राज्यों के सम्बन्ध में होगा तो राष्ट्रपति इस बात की व्यवस्था करेगा कि उन राज्यों के विधान-मंडल के सदस्यों की राय मालूम करले, जिन पर उस विधेयक का प्रभाव पड़ेगा। ऐसे विधेयक संसद के सदस्यों के साधारण बहुमत से पास होने पर अधिनियम हो जायंगे।

भाषावार राज्यों का निर्माण; व्यावहारिक कठिनाइयाँ—देश में भाषा और संस्कृति के आधार पर शासनिक इकाइयों की रचना की जाने की मांग बहुत समय से है। कांग्रेस १९२१ से इसके पक्ष में रही है। दक्षिण भारत में चार भाषाओं के बोलनेवाले अलग-अलग काफी संख्या में हैं, और हरेक भाषा बोलनेवाले विस्तृत भू-भागों पर फैले हुए हैं। इस दृष्टि से मद्रास—जिसमें से आन्ध्र राज्य का निर्माण तो हो ही चुका है—राज्य के तीन भाग और किये जायँ—तामिलनाड; केरल और कर्नाटक। बम्बई राज्य की मुख्य भाषाएँ मराठी और गुजराती हैं, और इन दोनों के बोलनेवालों के दो अलग-अलग राज्य—महाराष्ट्र और गुजरात—बनाये जायं। ये कुछ अंश में इस समय हैं भी। मध्यप्रदेश को महाकौशल और विदर्भ प्रान्तों में विभक्त करने की माँग है। बङ्गाली बिहार के कुछ हिस्सों को पश्चिमी बङ्गाल में मिलाना चाहते हैं, सिक्ख सिक्खस्थान का नारा गाल

रहे हैं। परन्तु किसी राज्य के निवासियों का पृथक्करण सद्भावना पूर्वक ही होना चाहिए; संकीर्ण प्रांतीयता, जातीयता या साम्प्रदायिकता के भावों से नहीं। पुनः एक स्वतंत्र राज्य की सरकार को गवर्नर, मन्त्री, हाईकोर्ट, विधान-सभा, विश्वविद्यालय आदि सभी बातों की व्यवस्था करनी होती है। ये सब कार्य व्यय-साध्य हैं, जब कि आवश्यकता है कि सरकारी आय अधिकतर राष्ट्रोत्थानकारी कार्यों में लगायी जाय।

भाषावार राज्य बनाने में एक कठिनाई यह भी है कि हैदराबाद, मैसूर, त्रावनकोर-कोचीन आदि राज्यों के कुछ भाग काटने पड़ेंगे; यहाँ तक कि कुछ को पूर्ण रूप से अथवा बहुत-कुछ समाप्त कर देना होगा। फिर, भाषावार राज्यों की सीमाओं का निर्णय करना भी कठिन होगा, क्योंकि सीमान्त जिलों में प्रायः एक से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं, और प्रत्येक भाषा वाला राज्य इन जिलों को लेना चाहता है। बम्बई और मद्रास जैसे बहुभाषीय नगरों की समस्या अलग ही है।

गत वर्ष नये राज्यों के पुनर्गठन सम्बन्धी एक कमीशन नियुक्त किया गया है, यह सारे देश का भ्रमण करके सभी क्षेत्रों के विषय में अपनी रिपोर्ट देने वाला है। वास्तव में भाषावार राज्यों के पुनर्गठन की समस्या बहुत जटिल है। इसके पक्ष में उपस्थित किये जाने वाले तर्कों में कुछ सचाई है, तो विपक्ष में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। लोगों को गम्भीरता और उदारता तथा व्यापक दृष्टि से विचार करना चाहिए।

राज्यों की शासन पद्धति—भारतीय संघ के राज्यों की शासन-पद्धति का ब्योरेवार विचार अगले अध्यायों में किया जायगा। संक्षेप में, उसका रूप नक्शे में अगले पृष्ठ में दिखाया जाता है।

सङ्घ के अङ्गों की शासनपद्धति
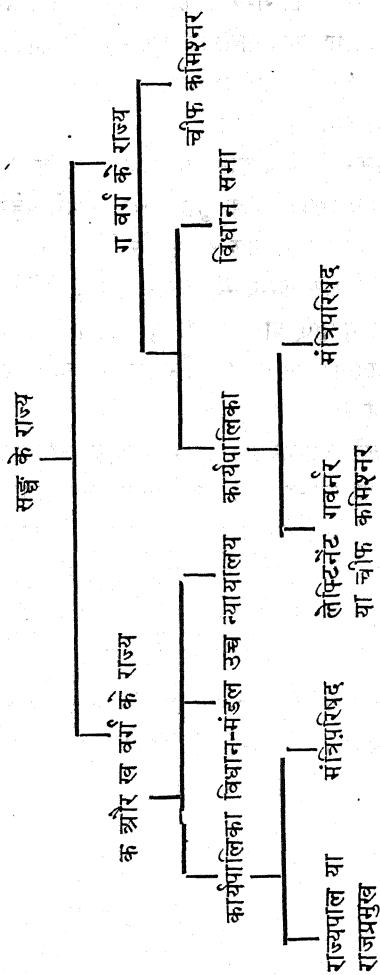
[घ वर्ग का राज्य अन्दमान-निकोबार है, यह राष्ट्रपति द्वारा शासित है।]

पन्द्रहवाँ अध्याय

राज्यों की कार्यपालिकाएँ

'क' वर्ग के राज्यों में केन्द्र का नियंत्रण प्रायः नहीं है और 'ख' में बहुत कम। 'ग' वर्ग के राज्यों में नियंत्रण बहुत अधिक है, कारण उनके शासन का भार और दायित्व बहुत कुछ केन्द्र पर ही है।

भारतीय सङ्घ के राज्यों में से 'क' वर्ग के राज्य तो पहले से ही स्वायत्त थे, 'ख' वर्ग के राज्य नये निर्वाचन (सन् १९५२) के बाद स्वायत हो गये। अब 'ग' वर्ग के कुछ राज्यों में भी विधान सभाएँ तथा मंत्रिपरिषद बन गयी हैं। इन सब राज्यों की शासनपद्धति का वर्णन करने के लिए इस अध्याय में इनकी कार्यपालिका का विषय लेते हैं।

'क' वर्ग के राज्यों की कार्य पालिका

राज्यपाल—'क' वर्ग के राज्यों में कार्यपालिका का प्रधान राज्यपाल है। उसकी स्थिति अपने राज्य में लगभग वही है, जो राष्ट्रपति की, संघ में। वह राज्य का वैधानिक प्रधान है, उसके नाम पर राज्य के सारे कार्य किये जायेंगे, परन्तु राज्य की कार्यपालिका शक्ति, संघ की भाँति, वास्तव में राज्य की मंत्रिपरिषद के हाथ में होगी। संकटकालीन स्थिति में राज्यपाल को अपने राज्य के संबंध में, राष्ट्रपति की तरह, विशेष अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं। एक ओर तो वह अपनी मन्त्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होगा, दूसरी ओर वह राज्य के शासन के सम्बन्ध में राष्ट्रपति के प्रति भी उत्तरदायी है। इस प्रकार उसकी जिम्मेदारी द्विमुखी है।

राज्यपाल की नियुक्ति और कार्य काल—राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा हुआ करेगी, और जब तक राष्ट्रपति चाहे तब तक वह अपने

पद पर बना रह सकता है। साधारणतया उसका कार्यकाल पाँच वर्ष का होगा। इस अवधि के पूर्व भी वह राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर अपने पद-भार से मुक्त हो सकता है। अवधि समाप्त होने पर भी वह उस समय तक अपने पद पर काम करता रहेगा, जब तक कि उसके स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो जाती। राज्यपाल का पद आकस्मिक रूप से रिक्त होने पर राष्ट्रपति उसकी व्यवस्था करेगा।

पहले संविधान-निर्माताओं का विचार राज्यपाल का निर्वाचन कराने का था। परन्तु बाद में इस विचार से कि राज्यपाल तो राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान मात्र होगा और राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद के हाथ में होगी, उन्हें इस पद के लिए नामजद व्यक्ति ही उपयुक्त प्रतीत हुआ। यदि इस पद के लिए निर्वाचन किया जाता तो राज्यपाल व प्रधानमन्त्री में संघर्ष होने की सम्भावना थी। उस स्थिति में निर्वाचन में राज्य का ही नागरिक इस पद के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता; इससे वह राजनैतिक दलबन्दी में पड़ जाता। वर्तमान अवस्था में राष्ट्रपति द्वारा उसकी नियुक्ति दूसरे राज्य में होती है तो वह राज्य की दलगत राजनीति से स्वतः ही ऊपर रहता है। इसके अतिरिक्त सांसद पद्धति में निर्वाचित राज्यपाल विशेष महत्व भी नहीं रखता।

राज्यपाल नियुक्त होने के लिए योग्यता—राज्यपाल पद पर नियुक्त होने के लिए किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक होगा कि वह (१) भारत का नागरिक हो, और (२) पैंतीस वर्ष से कम आयु का न हो। राज्यपाल अन्य कोई लाभ का पद ग्रहण न करेगा। राज्यपाल न तो संसद के किसी सदन का और न किसी राज्य के विधान-मंडल के किसी सदन का सदस्य होगा। यदि इनके सदन का कोई सदस्य राज्यपाल नियुक्त हो जाय तो यह समझा जायेगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान, राज्यपाल के पद ग्रहण की तारीख से, रिक्त कर दिया।

राज्यपाल की शपथ—प्रत्येक राज्यपाल पद ग्रहण करने से पूर्व, राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के सामने निम्नलिखित शपथ लेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा—

"मैं...[असुक]...ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक...[राज्य का नाम] के राज्यपाल का कार्य पालन करूँगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूँगा और मैं...[राज्य का नाम] की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूंगा।"

वेतन और भत्ते—प्रत्येक राज्यपाल का वेतन ५५०० रु० मासिक संविधान से निर्धारित है। संसद इस में परिवर्तन कर सकती है। इसके अतिरिक्त उसे ऐसे दावत, मनोरंजन, सवारी, सामान, सजावट और सेवक तथा कर्मचारियों के वेतन आदि के लिए विविध भत्ते आदि भी मिलेंगे, जो संसद निश्चित करे। जब तक संसद निश्चित न करे, राज्यपाल को वे सब भत्ते आदि मिलते रहेंगे, जो नया संविधान लागू होने के पूर्व प्रान्तों के गवर्नरों को मिला करते थे। राज्यपाल के वेतन और भत्ते आदि में उसके कार्यकाल में कोई कमी नहीं की जा सकेगी।

उत्तरप्रदेश के राज्यपाल को मिलने वाले वेतन और भत्तों में कुल मिला कर तीन-चार लाख रुपया खर्च हो जाता है। इससे सभी राज्यपालों के लिए होने वाले खर्च का अनुमान हो सकता है।

राज्यपाल के अधिकार—राज्यपाल को उन सब विषयों के अधिकार होंगे, जिनके सम्बन्ध में राज्य का विधान-मंडल विधि निर्माण कर सकता है, परन्तु आसाम के राज्यपाल को छोड़ कर प्रत्येक राज्यपाल सब विषयों में मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही कार्य करेगा। आसाम के राज्यपाल को कुछ सीमा-प्रदेशों के सम्बन्ध में अपने विवेक से काम करने का अधिकार है; इन प्रदेशों का शासन वह राष्ट्रपति के प्रतिनिधि-रूप में करेगा और इस कार्य का उत्तर-दायित्व आसाम के विधान-मण्डल और मन्त्रिपरिषद का न होकर राष्ट्रपति का होगा।

साधारण दशा में राज्यपाल की स्थिति वैधानिक प्रधान की ही रहेगी, और वह मन्त्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा। यदि उसने मन्त्रिपरिषद के परामर्श की अवहेलना की तो मन्त्रिपरिषद त्यागपत्र दे देगी।

मन्त्रिपरिषद के पदरिक्त होने की दशा में राज्यपाल दूसरे मन्त्रिपरिषद का निर्माण करना चाहेगा और ऐसा करने में वह सफल न हो सकेगा, क्योंकि विधान-सभा का बहुमत तो पहले मन्त्रिपरिषद को प्राप्त था। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यपाल कभी किसी विषय में अपने विवेक से निर्णय नहीं करेगा। असाधारण परिस्थितियों में वह ऐसा करने को स्वतन्त्र होगा। उदाहरणार्थ यदि मुख्य मन्त्री कभी राज्यपाल को विधान-सभा भङ्ग करने का परामर्श दे और राज्यपाल यह अनुभव करे कि विधान-सभा को भङ्ग करना मन्त्रिपरिषद के तो हित में है परन्तु जनता के हित में नहीं है तो वह ऐसा परामर्श मानने से इनकार कर सकता है।

राज्यपाल के अधिकार ४ प्रकार के हैं—

१—कार्यपालिका सम्बन्धी अर्थात् शासन सम्बन्धी अधिकार।

२—विधायनी शक्ति अर्थात् कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार।

३—वित्त अर्थात् अर्थ सम्बन्धी अधिकार।

४—न्याय सम्बन्धी अधिकार।

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार—राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी और उसका प्रयोग स्वयं उसके द्वारा या उसके अधीनस्थ कर्मचारियों के द्वारा होगा। राज्य के कार्यपालिका सम्बन्धी समस्त कार्य राज्यपाल के नाम पर होंगे। राज्य की शक्ति का विस्तार उन समस्त विषयों तक होगा जो राज्य-सूची में दिये हैं। समवर्ती सूची में दिये हुए विषयों में राज्य की कार्यपालिका शक्ति संघ की कार्यपालिका शक्ति के अधीन रहेगी। राज्यपाल राज्य का शासन सुचारू से चलाने के लिए नियम बनायेगा और मंत्रियों में कार्य का विभाजन करेगा।

राज्य के प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा, या उसके परामर्श से, की जायेगी। राज्य के मुख्य मन्त्री की, तथा उसकी सलाह से अन्य मन्त्रियों की, नियुक्ति राज्यपाल ही करेगा। मन्त्रियों का कार्यकाल उसी की इच्छा पर निर्भर रहेगा। इस विषय में विशेष आगे लिखा है। राज्य के महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) की नियुक्ति भी राज्यपाल ही करेगा।

(२) विधायिनी शक्ति सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को राज्य के विधान-मंडल के अधिवेशन को आमन्त्रित करने, उसे स्थगित करने तथा विधान-मंडल को भंग करने का अधिकार है। वह विधान-मंडल में भाषण दे सकता है और अपना संदेश दे सकता है।

राज्य के विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के बिना विधि अर्थात् कानून न बन सकेंगे। उसे अधिकार है कि वह विधेयक पर स्वीकृति प्रदान करे या रोक ले या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रख ले। वह धन सम्बन्धी विधेयकों को छोड़कर किसी भी विधेयक को विधान-मंडल के सदन या सदनों को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है, परन्तु यदि विधान-मंडल उस विधेयक को संशोधन सहित अथवा बिना संशोधन के फिर पास कर दे तो राज्यपाल को उस पर अपनी स्वीकृति देनी होगी। यदि कोई विधेयक ऐसा है, जिसका प्रभाव उच्च न्यायालय के अधिकारों पर हानिकर रूप से पड़ता है तो राज्यपाल का कर्तव्य है कि वह उस विधेयक को राष्ट्रपति के सम्मुख विचारार्थ रखने के लिए रोक ले। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह उस विधेयक पर अपनी स्वीकृति प्रदान करे या उसे रद्द कर दे या अपनी सिफारिश के साथ राज्य के विधान-मंडल के पास पुनः विचारार्थ वापिस भेज दे। यदि ऐसा विधेयक राष्ट्रपति द्वारा विधान-मंडल के पास पुनः विचारार्थ भेज दिया जाता है तो विधान-मंडल छः मास के अन्दर उस पर पुनः विचार करेगा और यदि वह संशोधन सहित या बिना संशोधन के उसे फिर स्वीकार कर ले तो वह फिर राष्ट्रपति के पास उसके विचारार्थ भेजा जायेगा। संविधान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इस स्थिति में राष्ट्रपति को उसे स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं। वैसे, यदि ऐसे विधेयक में राष्ट्रपति की सिफारिश के अनुसार संशोधन हो गया तो वह उसे स्वीकार कर ही लेगा। विधान-मंडल में, राज्यपाल की सिफारिश के बिना किसी प्रकार के धन विधेयक और वित्तीय विधेयक प्रस्तावित न किये सकेंगे। यह प्रतिबन्ध ऐसे संशोधन पर लागू न होगा, जो किसी कर को कम करने या हटाने के सम्बन्ध में उपस्थित किये जायेंगे।

राज्यपाल को, ऐसे किसी भी समय जब विधानमण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो, अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी करने का अधिकार है। इस अध्यादेश का प्रभाव वैसा ही होगा, जैसा विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत अधिनियम (एक्ट) का। इस प्रकार के समस्त अध्यादेश विधान-मण्डल के सामने रखे जायेंगे और उसके अधिवेशन के आरम्भ होने की तिथि से छः सप्ताह तक जारी रहेंगे, इसके बाद रद्द हो जायेंगे। यदि विधान-मण्डल छः सप्ताह बीतने के पूर्व ही इस प्रकार के अध्यादेश को रद्द करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास कर दे तो ये उससे पूर्व भी रद्द हो जायेंगे। अध्यादेश उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में जारी किये जा सकेंगे, जिनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल को विधि निर्माण करने का अधिकार है, परन्तु कुछ विषयों सम्बन्धी अध्यादेशों को जारी करने से पूर्व राज्यपाल को राष्ट्रपति की अनुमति लेनी होगी।

(३) वित्त सम्बन्धी अधिकार—प्रत्येक वित्तीय या आर्थिक वर्ष के आरम्भ में राज्यपाल उस वर्ष का वार्षिक वित्त-विवरण विधान-मण्डल के सामने रखेगा। इसमें उस वर्ष की अनुमानित आय-व्यय का ब्योरा होगा। विधान-मण्डल से किसी भी मद के लिए धन की माँग राज्यपाल की सिफारिश पर ही की जा सकती है। राज्यपाल को अधिकार है कि वह बढ़े हुए खर्चे के लिए, विधान-मण्डल के सामने पूरक माँग उपस्थित करे। पूरक माँग या अन्य खर्चों के सम्बन्ध में पूरा विवरण वह विधान-सभा के सम्मुख उपस्थित करेगा।

(४) न्याय सम्बंधी अधिकार—राज्यपाल को उन समस्त विषयों से सम्बन्धित अपराधों के लिए, जो राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत हैं, दिये गये दण्ड को कम करने, रद्द करने स्थगित करने और बदल देने का अधिकार है। राज्यपाल का यह अधिकार केवल उसी दशा में होगा, जब अपराधी ने राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाये किसी कानून को तोड़ा हो। [संघ द्वारा बनाये हुए कानून को तोड़ने वाले अपराधी को अथवा मृत्युदंड प्राप्त अपराधी को केवल राष्ट्रपति ही क्षमा कर सकेगा, राज्यपाल नहीं।]

मंत्रिपरिषद्—राज्यपाल राज्य का वैधानिक और नाममात्र का प्रधान है, राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिपरिषद के हाथ में होगी। राज्य की मन्त्रिपरिषद को संघ की मन्त्रिपरिषद का छोटा रूप ही समझना चाहिए। नियुक्ति, संगठन आदि के सम्बन्ध में वही व्यवस्था करती है। संघ के विषयों सम्बन्धी जैसे अधिकार संघ की मन्त्रिपरिषद को प्राप्त हैं, लगभग वैसे ही अधिकार राज्य के सम्बन्ध में राज्य की मन्त्रिपरिषद को हैं।

मंत्रिपरिषद् का सङ्गठन—मन्त्रिपरिषद के निर्माण की रीति यह है कि जब राज्य में नये विधान-मंडल का सङ्गठन हो जाता है, तो राज्यपाल उस दल के नेता को मन्त्रिपरिषद बनाने के लिए कहता है, जिसका विधान-सभा में बहुमत हो। अगर विधान-सभा में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न हो तो मन्त्रिपरिषद का निर्माण करने के लिए राज्यपाल उस दल के नेता को कहता है, जो दूसरे दलों के सहयोग से (बहुमत प्राप्त करके) मन्त्रिपरिषद बना सके।* जब वह नेता मन्त्रिपरिषद बनाना स्वीकार कर लेता है तो उससे मन्त्रियों के नाम देने के लिए कहा जाता है। मन्त्री उन्हीं व्यक्तियों में से हो सकते हैं, जो विधान-मण्डल के सदस्य हों, या जिनके छः माह के भीतर सदस्य बनने की आशा हो। साधारणतया मन्त्री दस से पन्द्रह तक होते हैं। उनकी संख्या निर्धारित नहीं है। प्रत्येक राज्य में कार्य-विस्तार और शासन-व्यवस्था की दृष्टि से, उसमें आवश्यकता या सुविधानुसार कमी-बेशी की जाती है। कभी-कभी कुछ मन्त्री पार्टी या पार्टियों को खुश रखने के वास्ते भी रखे जाते हैं।

यद्यपि संविधान के अनुसार यह व्यवस्था है कि मुख्य मन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मन्त्रियों को वह मुख्य मन्त्री के परामर्श से नियुक्त करेगा, ऊपर के कथन से यह स्पष्ट है कि व्यवहार में राज्यपाल मन्त्रियों को अपनी इच्छानुसार नियुक्त नहीं कर सकेगा, क्योंकि मन्त्रिपरिषद

---

* ऐसी मन्त्रिपरिषद को सम्मिलित मन्त्रिपरिषद (कोअलिशन मिनिस्टरी) कहते हैं।

बनाने के लिए उसे ऐसे ही व्यक्ति को निमन्त्रित करना होगा, जिसका विधान-सभा में बहुमत हो। इसी प्रकार यद्यपि संविधान के अनुसार मन्त्री लोग राज्यपाल की इच्छा पर्यन्त ही अपने पदों पर रहेंगे, व्यावहारिक बात यह है कि मन्त्रियों की सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धान्त के कारण राज्यपाल किसी एक मन्त्री को पदच्युत न करेगा, और न वह मन्त्रिपरिषद् को (जब तक कि उसे विधान-सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है) उसके पद से हटा सकेगा; कारण कि दूसरी मन्त्रिपरिषद्, विधान-सभा की विश्वास-प्राप्त न होने की दशा में, अपने पद पर न रह सकेगी।

मंत्रियों का पद और वेतन—मुख्य मन्त्री के परामर्श से, राज्यपाल मंत्रियों के काम का बँटवारा करता है। मंत्री अपने प्रमुख कार्य के नाम से पुकारे जाते हैं यथा शिक्षा-मंत्री, अर्थ-मंत्री आदि।

अपना पद ग्रहण करने से पहले प्रत्येक मंत्री को राज्यपाल के सामने अपने पद की, और गोपनीयता की शपथ लेनी होगी। यदि ऐसा मंत्री, जो नियुक्ति के समय विधान-मण्डल का सदस्य न हो, छः माह के भीतर उसका सदस्य न हो जाये तो उसे अपना पद छोड़ना होगा।

उड़ीसा, बिहार और मध्यप्रदेश राज्यों में आदिम जातियों, अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए एक-एक मंत्री होगा। मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते राज्य के विधान-मण्डल द्वारा निश्चित किये जायेंगे और जब तक राज्य के विधान-मण्डल द्वारा कुछ निश्चय नहीं किया जाता, तब तक मंत्रियों को वही वेतन और भत्ते मिलते रहेंगे, जो संविधान लागू होने से पूर्व मिलते रहे हैं।

मंत्रिपरिषद् का काम—यद्यपि संविधान के अनुसार मंत्रिपरिषद् का कार्य राज्यपाल को उसके कार्य में सहायता देना है, व्यवहार में वह राज्य के प्रशासन-कार्य का सम्पादन करेगी। वह विधि-निर्माण का कार्यक्रम निश्चित करेगी। विधान-मण्डल में महत्वपूर्ण विधेयकों का उपस्थित करना उसी का काम है। राज्य का आय-व्यय-अनुमानपत्र मन्त्रिपरिषद् ही तैयार करेगी और वित्त सम्बन्धी लगभग सभी विधेयक उसके द्वारा उपस्थित किये जायेंगे।

सेक्रेटरी आदि पदाधिकारी—प्रत्येक विभाग का दैनिक कार्य सुचारू से चलाने के लिए एक विभागीय सेक्रेटरी तथा उसके कुछ सहायक पदाधिकारी होते हैं। इनका पद स्थायी होता है। मंत्रियों के संसदीय (पार्लिमेंटरी) सेक्रेटरी भी रहते हैं। ये उन्हें विशेषतया विधान-मंडल सम्बन्धी कार्य में सहायता देते हैं। इन पदों पर विधान-सभा के सदस्यों की नियुक्ति होती है और इनके वेतन और भत्ते के लिए प्रतिवर्ष विधान-सभा की स्वीकृति ली जाती है। सरकार से वेतन पाने के कारण इन्हें विधान-सभा की सदस्यता से वंचित नहीं किया जाता।

मन्त्रिपरिषद् की कार्य पद्धति—मन्त्रिपरिषद की सभा प्रायः प्रति सप्ताह होती है। सभा में सभापति का आसन मुख्य मन्त्री ग्रहण करता है। उसमें व्यापक नीति निर्धारित की जाती है। सभा में कोरम या मतदान की आवश्यकता नहीं होती, अकेला मुख्य मंत्री भी किसी विषय का निश्चय कर सकता है। सभा की सब चर्चा गुप्त रखी जाती है। किसी विभाग के रोजमर्रा के काम के सम्बन्ध में उसका मंत्री ही निर्णय कर लेता है, अथवा वह मुख्य मन्त्री का परामर्श ले लेता है।

सामूहिक उत्तरदायित्व—मन्त्रिपरिषद राज्य की विधान-सभा के प्रति जिम्मेदार होती है। उसकी यह जिम्मेदारी सामूहिक होती है, अर्थात् सब मन्त्री एक दूसरे के काम की जिमेदारी में हिस्सेदार होते हैं। विधान-सभा में किसी एक मन्त्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव होने पर सारी मन्त्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है। इसी प्रकार यदि मुख्य मन्त्री किसी मन्त्री को मन्त्रि-परिषद से अलग करना चाहे और वह मन्त्री इस्तीफा न दे तो मुख्य मन्त्री अपना तथा पूरी मन्त्रिपरिषद का त्यागपत्र देकर नयी मन्त्रिपरिषद ऐसी बनाता है, जिसमें उपर्युक्त मन्त्री न हो।

मुख्य मन्त्री इस बात का ध्यान रखता है कि सब विभागों में ऐसी नीति वर्ती जाय, जिससे शासन में एकता बनी रहे। किसी विभाग का मन्त्री इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि उसकी नीति हानिकर है।

जो मन्त्री मन्त्रिपरिषद की नीति से सहमत नहीं होता, वह इस्तीफा देकर अलग हो जाता है।

महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल)—राज्यपाल को विधि सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिए राज्य में एक महाधिवक्ता होगा। उसकी नियुक्ति राज्यपाल करेगा और उसकी योग्यता वही होगी, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की होनी चाहिए। वह उस समय तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक राज्यपाल चाहे। महाधिवक्ता का वेतन आदि राज्यपाल द्वारा निश्चित किया जायेगा।

'ख' वर्ग के राज्यों की कार्यपालिकाएँ

'ख' वर्ग के राज्यों का पद 'क' वर्ग के राज्यों के लगभग समान है। इनकी कार्यपालिकाएँ भी बहुत कुछ 'क' भाग के राज्यों की कार्य-पालिकाओं जैसी होंगी। हाँ, इनमें से प्रत्येक में राज्यपाल के स्थान पर राजप्रमुख होगा। हैदराबाद का राजप्रमुख वहाँ का निजाम होगा। मैसूर का राजप्रमुख वहाँ का महाराजा होगा। काश्मीर के राजप्रमुख के सम्बन्ध में आगे खुलासा लिखा गया हैं। अन्य राज्यों के राजप्रमुख वे व्यक्ति होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति राजप्रमुख की मान्यता प्रदान करे। राजप्रमुख के भत्ते आदि राज्य की संचित निधि से दिये जायेंगे, इन पर विधान-सभाओं का मत नहीं लिया जायेगा।

संविधान में राजप्रमुख के वेतन की व्यवस्था नहीं है। केवल यह कहा गया है कि उसे, जब कि राज्य की सरकार के मुख्य स्थान में उसका अपना निवास-गृह न हो, बिना किराया दिये सरकारी भवन के उपयोग का हक होगा, तथा उसे ऐसे भत्तों और विशेषाधिकारों का हक होगा, जैसे कि राष्ट्र-पति निर्धारित करे। स्मरण रहे कि सभी राजप्रमुख इस समय राजाओं में से हैं; उन्हें निजी खर्च की रकमें कितनी अधिक मिलती हैं, यह पहले बताया जा चुका है।

इन राज्यों की सरकारें संविधान लागू होने से दस वर्ष पर्यन्त तक सङ्घ सरकार के नियंत्रण में तथा उसके प्रति उत्तरदायी रहेंगी और उनका कर्तव्य

होगा कि वे राष्ट्रपति के समय-समय पर दिये गये आदेशों को मानें । *[संसद को अधिकार है कि इन दस वर्ष की अवधि को किसी राज्य के सम्बन्ध में घटा दे या बढ़ा दे; राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा किसी राज्य को केन्द्र के नियंत्रण द्वारा मुक्त कर सकता है ।]

वित्त और धन सम्बंधी विषयों में इन राज्यों के और केन्द्र के बीच जो समझौते हुए हैं, वे दस वर्ष तक ही लागू होंगे; इसके पश्चात् समाप्त हो जायेंगे ।

परामर्शदाता—इन राज्यों में से मैसूर को छोड़ कर, के लिए केन्द्रीय सरकार की ओर से परामर्शदाताओं की व्यवस्था की गयी थी । इस प्रकार इन राज्यों में विधान-सभाएँ भी थीं और परामर्शदाता भी । परन्तु राज्यों में सलाहकार पद्धति से असंतोष ही रहा, उनकी ओर से इसके हटाये जाने की माँग की गयी और वह हटा ली गयी ।

कुछ राज्यों के सम्बन्ध में विशेष व्यवस्था—'ख' भाग के राज्यों में से कश्मीर, त्रावनकोर-कोचीन, मैसूर और मध्यभारत की विशेष परिस्थितियों का विचार करके उनके सम्बन्ध में संविधान द्वारा कुछ विशेष व्यवस्था की गयी है ।

त्रावनकोर-कोचीन—इस राज्य की सरकार को ५१ लाख रुपया 'देवस्वम निधि' के नाम से दिया जायेगा; इस रकम से उस मन्दिर का प्रबन्ध किया जायेगा, जिसके देवता के नाम पर वहाँ का राजा शासन करता है ।

मैसूर—मैसूर राज्य में दो सदन होंगे, जब कि 'ख' भाग के अन्य राज्यों में एक-एक सदन होगा ।

मध्यभारत—इस राज्य की मन्त्रिपरिषद में एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जायगी, जिसका कार्य अनुसूचित क्षेत्रों के निवासियों के हित की रक्षा करना एवं उनकी उन्नति करना होगा ।

---

* इस अवधि में केन्द्रीय सरकार जरूरत होने पर इनमें से किसी राज्य के मन्त्रिमंडल को भङ्ग करके दूसरे मंत्रियों को नियुक्त कर सकती है और उचित समझे तो सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले सकती है ।

कश्मीर—कश्मीर भारतीय संघ में प्रवेश करके इसका अवि-भाज्य अंग बन चुका है। इसने रक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और संचार विषय ही भारतीय संघ को सौंपे हुए थे। इन दोनों के प्रतिनिधियों का जुलाई १९५२ में देहली में, जो समझौता हुआ, उसकी मुख्य बातें ये हैं—

१—कश्मीर में राजवंश का शासनाधिकार समाप्त कर दिया गया है। राज्य का अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा जिसे राष्ट्रपति राज्य-विधान सभा की सिफारिश पर स्वीकार करे। साधारणतया उसका कार्यकाल ५ वर्ष होगा। [प्रथम पाँच वर्ष के लिए युवराज कर्णसिंह (तत्कालीन शासक) प्रधान चुने गये हैं।]

२—कश्मीर में राष्ट्रीय झंडे को वही सम्मान और स्थान प्राप्त होगा जो उसे भारत के किसी भी भाग में प्राप्त है। राज्य का भी झंडा, स्वीकार कर लिया गया है, पर वह किसी भी अर्थ में राष्ट्रीय झंडे का प्रतिद्वन्दी न होगा।

३—मृत्यु-दंड को स्थगित करने या उसे माफ कर देने का अधिकार राष्ट्रपति को होगा।

४—राष्ट्रपति के संकटकालीन विशेषाधिकार कश्मीर में भी लागू होंगे, पर आन्तरिक उपद्रव के मामले में कोई भी कार्रवाई राज्य की विधान-सभा की सहमति से की जायेगी।

५—पूर्ण नागरिकता कश्मीर में भी लागू होगी; पर उसकी विधान-सभ को वहाँ के स्थायी निवासियों के अधिकारों तथा सुविधाओं की, खासक अचल सम्पत्ति के बारे में, व्याख्या करने तथा उसकी व्यवस्था करने क अधिकार होगा।

६—मूल अधिकार कश्मीर में भी लागू होंगे, पर ऐसे संशोधनों के सा कि इन अधिकारों द्वारा राज्य के भूमि-सुधार सम्बन्धी कानूनों में या तोड़ फोड़ तथा शत्रु द्वारा की जाने वाली जासूसी आदि के विरुद्ध की गय कार्रवाइयों में बाधा न पड़े। कश्मीर राज्य ने जमींदारों को मुआवजा न दे का निश्चय किया है।

७—राज्य का सर्वोच्च न्यायालय भारत में ही रहेगा।

८—भारत तथा कश्मीर के बीच के आर्थिक सम्बन्धों को विस्तारपूर्वक विचार किया जाकर तय किया जाये।

'ग' वर्ग के राज्यों का शासन

राष्ट्रपति और संसद के अधिकार—संविधान के अनुसार 'ग' वर्ग के राज्यों का शासन राष्ट्रपति करेगा। उसे अधिकार है कि वह इन राज्यों में चीफ-कमिश्नर (मुख्य आयुक्त) या लेफ्टिनेंट गवर्नर (उपराज्यपाल) नियुक्त करे; या किसी पड़ोस के राज्य को शासनभार सौंप दे। पड़ोस के राज्य को शासन-कार्य सौंपने से पूर्व राष्ट्रपति का कर्तव्य होगा कि वह पड़ोस के राज्य की सरकार से सम्मति ले ले और इस राज्य की जनता की इच्छा भी जान ले।

संसद को अधिकार है कि वह चीफ-कमिश्नर या उपराज्यपालों के लिए विधान-मण्डल बनाये या किसी राज्य में विधान-मण्डल हो तो उसे चालू रखे। ऐसे विधान-मण्डलों के कार्य, अधिकार-प्रणाली को संसद ही निश्चित करेगी। उन राज्यों के विधान-मण्डलों का निर्माण, निर्वाचन अथवा नामजदगी द्वारा अथवा नामजदगी और निर्वाचन दोनों के द्वारा, होगा। इसके अतिरिक्त संसद इन राज्यों के लिए मन्त्रिपरिषद अथवा सलाहकारों की समिति का निर्माण करेगी। पर उन पर केन्द्र का पूर्ण अनुशासन होगा।

कार्यपालिका; लेफ्टिनेन्ट गवर्नर या चीफ-कमिश्नर—इस समय 'ग' वर्ग के राज्यों में से विन्ध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में मुख्य शासक लेफ्टिनेंट गवर्नर (उपराज्यपाल) है, शेष सब में चीफ-कमश्निर (मुख्य आयुक्त)। इन दोनों अधिकारियों में लेफ्टिनेंट गवर्नर का पद ऊँचा है, वैसे दोनों एक ही प्रकार के हैं। आगे जो बात एक के सम्बन्ध में कही गयी है, वह दूसरे के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए।

मुख्य आयुक्त अर्थात् चीफ-कमिश्नर की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और वह राज्य की कार्यपालिका का प्रधान होगा। वह मंत्रिपरिषद का सभापतित्व करेगा। [उसकी अनुपस्थिति में मुख्य मन्त्री सभापति होगा।] वह सब काम राष्ट्रपति के नाम पर करेगा। वह विधान-सभा की बैठकें करायेगा और

समय-समय पर विधान-सभा को स्थगित या भंग कर सकेगा। वह विधान-सभा में अपना भाषण दे सकता है और उसके लिए सदस्यों को उपस्थित होने का आदेश कर सकता है। वह विधान-सभा में अपना संदेश भेज सकता है; सभा उस पर विचार करेगी। वह सभा में राष्ट्रपति की सलाह से, प्रत्येक आर्थिक वर्ष के सम्बन्ध में अनुमानित आय-व्यय का विवरण उपस्थित करेगा। उसकी सिफारिश के बिना विधान-सभा में कोई धन-विधेयक पेश नहीं होगा।

जिन विषयों के सम्बन्ध में विधान-सभा कानून बना सकती है, उनमें मन्त्रिपरिषद चीफ-कमिश्नर को सलाह और सहायता देगी। परन्तु न्याय संबन्धी कार्य चीफ कमिश्नर स्वेच्छानुसार कर सकेगा।

मन्त्रिपरिषद—अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और विन्ध्य प्रदेश इन छः राज्यों में से प्रत्येक में एक मन्त्रिपरिषद होगी, जो चीफ-कमिश्नर (या लेफ्टिनेन्ट गवर्नर) को सलाह और सहायता देगी। मुख्य मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा, तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति मुख्य मन्त्री की सलाह से करेगा। मन्त्रिपरिषद विधान-सभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होगी। यदि चीफ-कमिश्नर और मन्त्रियों में मतभेद हो तो चीफ-कमिश्नर उस विषय को राष्ट्रपति के सामने रखेगा और राष्ट्रपति के निर्णय के अनुसार काम होगा। विशेष आवश्यकता होने की दशा में राष्ट्रपति के निर्णय तक वह अपने निर्णय के अनुसार काम करेगा। मन्त्रि-परिषद की बैठकों में सभापति चीफ-कमिश्नर होगा, और उसकी अनुपस्थिति में राष्ट्रपति के बनाये हुए नियमों के अनुसार कोई मन्त्री सभापति होगा।

स्पष्ट है कि 'क' और 'ख' वर्ग के राज्यों की मन्त्रिपरिषदों की अपेक्षा 'ग' वर्ग के राज्यों की मन्त्रिपरिषदों के वास्तविक अधिकार बहुत कम होंगे। इन राज्यों में मुख्य शासक के अधिकार बहुत अधिक है।

मन्त्रणादात्री परिषद—राष्ट्रपति को कच्छ, मनीपुर और त्रिपुरा के लिए मन्त्रणादात्री-परिषद बनाने का अधिकार है। इन राज्यों में से किस के मुख्य आयुक्त को कितने मन्त्रणादाता चाहिएँ, इसका निश्चय राष्ट्रपति ही करता

है। मनीपुर में मन्त्रणादाताओं की संख्या १४ है। मुख्य आयुक्त परिषद से आर्थिक विषयों, शासन के विषयों, विकास योजनाओं, कानून के प्रस्तावों और सामान्य नीति के अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में परामर्श लेता है। परिषद का काम केवल मन्त्रणा देना है, मुख्य आयुक्त इसे अमल में लाने को बाध्य नहीं होता।

कुछ तुलनात्मक विचार—'ग' वर्ग के राज्यों की कार्यपालिकाओं और 'क' या 'ख' वर्ग के राज्यों की कार्यपालिकाओं में जमीन-आसमान का अन्तर है—

१—मन्त्रिपरिषद का सभापतित्व 'ग' वर्ग के राज्यों में मुख्य आयुक्त करता है; 'क' और 'ख' वर्ग के राज्यों में मुख्य मन्त्री।

२—'ग' वर्ग के राज्यों में मन्त्रिपरिषद और मुख्य आयुक्त में मतभेद होने की दशा में मामला राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है। 'क' और 'ख' वर्ग के राज्यों में राज्यपाल या राजप्रमुख से मन्त्रिपरिषद का मतभेद होने पर प्रायः उन्हें मन्त्रिपरिषद की ही बात माननी होती है।

३—मुख्य आयुक्त आवश्यकता होने पर मन्त्रिपरिषद की सलाह के बिना ही कार्य कर सकता है; राज्यपाल या राजप्रमुख ऐसा नहीं कर सकते।

राजप्रमुखों का भविष्य और अन्य विचारणीय बातें—इस समय 'ख' वर्ग के राज्यों में मुख्य शासक (राजप्रमुख) राजाओं में से हैं। ये प्रायः प्रतिगामी विचारों के रहे हैं। जागृत लोकमत इनके पद और शाही खर्च के विरुद्ध है।

अगस्त १९५२ में, दिल्ली में 'ख' वर्ग के राज्यों के संसद-सदस्यों तथा अन्य नेताओं का एक सम्मेलन हुआ था। उसमें यह मांग की गयी कि (१) इन राज्यों में वंशपरम्परागत राजप्रमुख का पद तोड़ दिया जाय और उसके स्थान पर कश्मीर की तरह ५ वर्ष के लिए एक अध्यक्ष का निर्वाचन किया जाय। (२) राज्यों में 'क', 'ख' और 'ग' वर्ग का अन्तर मिटा दिया जाय। (३) जिन राज्यों में सलाहकार पद्धति है, उसे तोड़ दिया जाय। (४) विलासपुर को हिमाचल प्रदेश में विलीन कर दिया जाय।

अन्दमान-निकोबार

पिछले पृष्ठों में 'क', 'ख' और 'ग' वर्ग के राज्यों की शासन-पद्धति बतायी गयी है। भारतीय संघ के प्रदेश का, इनके अतिरिक्त एक वर्ग और है—'घ' वर्ग। इस वर्ग के प्रदेशों को स्वतन्त्र इकाई नहीं माना जाता। इनमें अन्दमान-निकोबार द्वीप-समूह तथा ऐसे अन्य क्षेत्र होंगे, जिनका प्रशासन राष्ट्रपति चीफ-कमिश्नर या अपने किसी अन्य अधिकारी के द्वारा कराना चाहे। इस राज्य में कोई विधान-मण्डल नहीं होगा। राष्ट्रपति इस राज्य और अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में ऐसे नियम निर्माण करेगा, जिससे वहाँ शान्ति और अच्छी सरकार की स्थापना हो। उसे अधिकार है कि वह संसद द्वारा बनायी विधियों में, और प्रचलित विधियों में जो इस राज्य पर लागू हों, संशोधन या परिवर्तन कर दे।

इस क्षेत्र का नया रूप—भारतीय स्वाधीनता के पहले संग्राम (सन् १८५७) से अंग्रेजों ने लम्बी सजा पाने वाले अपराधियों और राजनैतिक बंदियों को यहाँ भेजना शुरू कर उनको बहुत कष्ट दिये; विशेष जेलों का निर्माण कर इसे जनता द्वारा 'कालापानी' नाम दिलवाया। लोग इसे 'पृथ्वी का नर्क' समझने लगे। म० गांधी के प्रयास से सन् १६२१ में यहाँ कैदियों का भेजा जाना बन्द हुआ।

भारत के स्वाधीन होने पर इस क्षेत्र के कायाकल्प का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसा अनुमान है कि १७ हजार आबादी और २५०८ वर्गमील क्षेत्रफल वाले इस प्रदेश में लगभग दस लाख आदमी अच्छी तरह बसाये जा सकते हैं। अपराधियों की बस्ती के गन्दे मकान तोड़कर सुन्दर स्वास्थ्यप्रद घर बनाये जा रहे हैं। सरकार यहाँ की राजधानी पोर्टब्लेअर और कलकत्ता तथा मद्रास के बीच में अच्छे और तेज यातायात का प्रबन्ध कर रही है।

सोलहवाँ अध्याय

राज्यों के विधान-मंडल

केन्द्र आर्थिक या राजनैतिक सङ्कट के समय ही प्रान्तों से अधिकार छीन सकता है। वह कोई भी ऐसा कार्य न करेगा, जिससे शासन के सम्यक् संचालन में बाधा पड़े। यह भी याद रखने की बात है कि केन्द्रीय धारासभा में कौन लोग हैं। आखिर, प्रान्तों से चुने गये प्रतिनिधि ही तो केन्द्र की धारासभा में होंगे। क्या उन्हें अपने प्रान्तों के हितों का ध्यान नहीं होगा ?

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

जैसा पहले बताया जा चुका है, सङ्घ में 'क', 'ख' और 'ग' वर्ग के राज्य सम्मिलित हैं। पहले 'क' वर्ग को लें।

'क' वर्ग के राज्यों के विधान-मण्डल

विधान-मण्डलों के सदन और अधिवेशन—'क' के वर्ग राज्यों के विधान-मण्डलों में राज्यपाल (गवर्नर) के अतिरिक्त एक या दो सदन होंगे। पंजाब, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मद्रास, बम्बई तथा उत्तरप्रदेश के राज्यों के विधान-मण्डलों में दो-दो सदन होंगे, और उड़ीसा, आंध्र, आसाम तथा मध्यप्रदेश के विधान-मण्डलों में एक-एक सदन होगा।

जिन राज्यों में दो-दो सदन होंगे, उनमें पहला सदन विधान-सभा और दूसरा सदन विधान-परिषद कहलाएगा। जिन राज्यों में केवल एक सदन होगा, उनमें उसे विधान-सभा कहा जाएगा।

विधान-मण्डल के सदन या सदनों के वर्ष में कम-से-कम दो अधिवेशन होंगे तथा उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक तथा आगामी सत्र की

पहली बैठक के लिए नियुक्त तारीख के बीच में छः मास से अधिक का अन्तर न होगा; अर्थात् एक सत्र समाप्त होने के बाद छः माह के भीतर दूसरा सत्र आरम्भ हो जायगा। अधिवेशनों को राज्यपाल निमन्त्रित करेगा और वही उन्हें स्थगित करने और विधान-मण्डल को भंग करने का भी कार्य करेगा।

विधान-सभा और उसका सङ्गठन—विधान-सभा के सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से होगा। मतदान सर्वथा गुप्त रखा जायगा। प्रत्येक मतदाता के लिए आवश्यक होगा कि वह भारत का नागरिक हो, २१ वर्ष से कम आयु का न हो; निवास की शर्तें पूरी करता हो, पागल न हो, और किसी अपराध, भ्रष्टाचार अथवा गैर-कानूनी कार्य के कारण अयोग्य ठहराया हुआ न हो।

निर्वाचन-क्षेत्र प्रादेशिक होंगे और प्रतिनिधित्व का आधार इस प्रकार होगा कि प्रति ७५,००० जनसंख्या के लिए एक प्रतिनिधि से अधिक नहीं होगा। यह प्रतिबन्ध आसाम के स्वायत्त जिलों तथा शिलांग के नगर-क्षेत्र (म्युनिसपेलटी) तथा कटक के लिए लागू नहीं होगा। किसी भी राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या ५०० से अधिक और ६० से कम नहीं होगी। जहाँ तक सम्भव होगा, सम्पूर्ण राज्य के अन्दर प्रतिनिधित्व का अनुपात समान होगा।

राज्यों की विधान-सभाओं में अल्पमतों के लिए स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जातियों के लिए तथा आसाम राज्य के आदिम-जाति-क्षेत्रों की आदिम जातियों को छोड़कर अन्य आदिम जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रहेंगे। आसाम की विधान-सभा में वहाँ के स्वायत्त जिलों के लिए भी स्थान सुरक्षित रहेंगे। आदिम जातियों और अनुसूचित जातियों के लिए विधान-सभा में उनकी जनसंख्या के आधार पर स्थान सुरक्षित रखे जाएँगे। आसाम की विधान-सभा में स्वायत्त जिलों के

प्रतिनिधियों की संख्या, जनसंख्या के आधार पर नियत की जायगी। इस राज्य के स्वायत्त जिलों के निर्वाचन-मंडलों से कोई भी प्रतिनिधि ऐसा नहीं निर्वाचित किया जायगा, जो आदिम जाति का न हो परन्तु यह प्रतिबन्ध शिलांग के म्युनिसपल क्षेत्र और छावनी के क्षेत्र के सम्बन्ध में लागू न होगा। एंग्लो-इन्डियनों के प्रतिनिधित्व के लिए विशेष व्यवस्था की गयी है। यदि किसी राज्य के राज्यपाल का मत यह हो कि उस राज्य की विधान-सभा में एंग्लो-इन्डियन समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, तो वह उस समुदाय के जितने सदस्य उचित समझेगा मनोनीत कर देगा; यह विशेष व्यवस्था संविधान लागू होने के १० वर्ष तक अर्थात् २६ जनवरी १९६० तक लागू रहेगी; उसके पश्चात् समाप्त हो जायगी।

सदस्य संख्या—राज्य की विधान-सभाओं के सदस्यों की संख्या संविधान से निर्धारित नहीं की गयी है। उसका निश्चय 'नागरिकों के प्रतिनिधित्व कानून, १९५०' द्वारा किया गया है। सदस्यों की संख्या इस प्रकार है—

१—आसाम	१०८
२—बिहार	३३०
३—बम्बई	३१५
४—मध्यप्रदेश	२३२
५—मद्रास	२४५
६—उड़ीसा	१४०
७—पंजाब	१२६
८—उत्तरप्रदेश	४३०
९—पश्चिमी बङ्गाल	२३८
१०—आन्ध्र	१९८

विधान-सभा के सदस्यों की योग्यता—विधान-सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए आवश्यक है कि उम्मेदवार भारत का नागरिक हो,

२५ वर्ष से कम आयु का न हो, और उसमें विधान-मंडल द्वारा निश्चित योग्यताएँ हों।

कोई व्यक्ति विधान-सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अयोग्य समझा जायगा, यदि वह—(१) भारत-सरकार के या किसी भारतीय राज्य की सरकार के ऐसे पद पर हो, जिससे उसे आर्थिक लाभ होता है। [मंत्रियों के ऊपर यह प्रतिबन्ध लागू नहीं होगा।] (२) पागल हो, या किसी न्यायालय द्वारा पागल ठहराया गया हो। (३) ऐसा दिवालिया हो जिसका भुगतान न हुआ हो। (४) विधान-मण्डल द्वारा निर्मित किसी विधि के अन्तर्गत अयोग्य ठहराया गया हो। (५) भारतीय नागरिक न हो, या उसने स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता को स्वीकार कर लिया हो।

उपरोक्त अयोग्यताएँ उत्पन्न होने पर कोई भी सदस्य विधान-सभा का सदस्य न रह सकेगा। सदस्यों के अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित होने पर उसका निर्णय राज्यपाल निर्वाचन-आयोग के परामर्श से करेगा।

विधान-सभा के पदाधिकारी और कार्यकाल—विधान सभा अपने सदस्यों में से किन्हीं दो सदस्यों को अध्यक्ष (स्पीकर) और उपाध्यक्ष (डिप्टी-स्पीकर) चुनेगी। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के कार्य और अधिकार विधान-सभा के सम्बन्ध में वही होंगे, जो संसद की लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के उस सभा के सम्बन्ध में हैं। विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को अपदस्थ करने की प्रक्रिया भी लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को अपदस्थ करने की प्रक्रिया के अनुसार ही है। जब ये विधान-सभा के सदस्य न रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ेगा। ये गवर्नर को लिखित सूचना देकर अपना पद छोड़ सकेंगे, और विधान-सभा के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास किये हुए प्रस्ताव द्वारा भी अपने पद से हटाये जा सकेंगे, हाँ, ऐसे प्रस्ताव की सूचना चौदह दिन पहले दी जानी चाहिए। स्पीकर और डिप्टी स्पीकर को विधान-मंडल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जायगा।

विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष के लिए होगा, परन्तु राज्यपाल को अधिकार है वह इससे पूर्व भी विधान-सभा को भङ्ग कर दे। अपने नियत समय से पूर्व यदि विधान-सभा भङ्ग नहीं की जाती तो वह अपने प्रथम अधिवेशन के दिन से पाँच वर्ष तक रहेगी और उसके बाद स्वयं भंग हो जायगी। संसद को अधिकार है कि सङ्कट कालीन घोषणा की अवधि में विधि द्वारा इसकी अवधि एक बार एक वर्ष के लिए बढ़ा दे। घोषणा समाप्त होने के उपरान्त यह अतिरिक्त अवधि किसी भी दशा में छः मास से अधिक नहीं होगी।

विधान-परिषद्

विधान-परिषद् की स्थापना तथा समाप्ति की व्यवस्था—राज्यों के विधान-मंडलों का दूसरा सदन परिषद कहलायगा। संविधान में ऐसी व्यवस्था की गयी है कि यदि किसी राज्य की विधान सभा अपने कुल सदस्यों के बहुमत तथा अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मत से ऐसा प्रस्ताव पास कर दे कि उस राज्य में विधान-परिषद न रहे या जिस राज्य में विधान-परिषद नहीं है वहाँ विधान-परिषद स्थापित हो जाय तो संसद की स्वीकृति से ऐसा किया जा सकेगा। उपर्युक्त व्यवस्था के अंतर्गत किया हुआ कार्य संविधान में संशोधन करने वाली क्रिया की आवश्यकता नहीं होगी।

विधान परिषद का सङ्गठन—विधान-परिषद एक स्थाई सदन होगी। यह कभी भी भङ्ग नहीं की जायगी किन्तु, उसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के पश्चात् स्थान रिक्त करेंगे और उन स्थानों की पूर्ति नवीन सदस्यों द्वारा होगी। ये नवीन सदस्य छः वर्ष के लिए होंगे। आरम्भ में इसका संगठन इस प्रकार होगा कि एक-तिहाई सदस्य छः वर्ष के लिए होंगे, एक-तिहाई चार वर्ष के लिए, और शेष एक-तिहाई दो वर्ष के लिए। बाद में तो सदस्य छः वर्ष के लिए ही होंगे, और एक क्रम बैठ जायगा। विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या के चौथाई से अधिक नहीं होगी; किन्तु किसी भी दशा में सदस्यों की संख्या ४० से कम नहीं होगी।

विधान-परिषद के सङ्गठन की रीति—जब तक संसद विधि द्वारा कोई दूसरी व्यवस्था नहीं करती, विधान-परिषद का निर्माण निम्नलिखित रीति से होगा :—

(क) यथा-शक्य एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन ऐसे निर्वाचक-मण्डल द्वारा होगा, जिसमें राज्य की नगरपालिकाओं (म्युनिसपेलटियों) और जिला-मण्डलियों (डिस्ट्रिक्ट बोर्डों) के सदस्य तथा अन्य ऐसे स्थानीय अधिकारी, जैसे कि संसद विधि द्वारा निश्चित करे, होंगे।

(ख) यथा-शक्य कुल सदस्य-संख्या के बारहवें भाग का निर्वाचन एक ऐसा निर्वाचक-मंडल करेगा, जिसमें भारत के किसी विश्वविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष के स्नातक हों, अथवा जो कम से कम तीन वर्ष से ऐसी योग्यता रखते हों, जो संसद द्वारा स्नातक के बराबर मान्य हों।

(ग) यथा-शक्य कुल सदस्यों की संख्या के बारहवें भाग का निर्वाचन एक ऐसा निर्वाचक मंडल करेगा, जिसमें वे अध्यापक होंगे जो राज्य के अंतर्गत किसी माध्यमिक पाठशाला या इससे उच्च शिक्षा-संस्था में तीन वर्ष से पढ़ा रहे हों।

(घ) यथा-शक्य कुल सदस्यों के एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधान-सभा के सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से करेंगे जो विधान-सभा के सदस्य नहीं है।

(ङ) शेष सदस्य [अर्थात् सदस्यों की संख्या का छठा भाग] राज्यपाल द्वारा नामजद किये जायँगे। राज्यपाल ऐसे व्यक्तियों को नामजद करेगा जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा का विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव हो।

ऊपर बताये गये समस्त निर्वाचक मंडलों में, निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर 'एकल संक्रमण मत पद्धति' के अनुसार होगा। प्रथम तीन श्रेणियों यानी स्थानीय अधिकारी, स्नातकों और अध्यापकों के निर्वाचक-मंडलों के प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों को संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी।

सदस्य संख्या—दो सदन वाले राज्यों में विधान-परिषदों के सदस्यों की संख्या इस भाँति होगी :—

राज्य का नाम	स्थानीय संस्थाओं के सदस्य	स्नातक	अध्यापक	विधान-सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित	नामजद	योग
बिहार	२४	६	६	२४	१२	७२
बम्बई	२४	६	६	२४	१२	७२
मद्रास	१७	४	४	१७	४	५०
पंजाब	१३	३	३	१३	८	४०
उत्तर प्रदेश	२४	६	६	२४	१२	७२
पश्चिम बंगाल	१७	४	४	१७	९	५१

सदस्यों की योग्यता—विधान-परिषद का सदस्य ऐसा ही व्यक्ति निर्वाचित हो सकेगा, जो [१] भारत का नागरिक हो, [२] ३० वर्ष से कम आयु का न हो, [३] जिसमें वे दूसरी योग्यताएँ भी हों, जो विधान-मंडल विधि द्वारा निश्चित करे।

विधान-परिषद की सदस्यता के लिए अयोग्यता सम्बन्धी नियम वही हैं, जो विधान-सभा की सदस्यता के लिए हैं। अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय राज्यपाल निर्वाचन-आयोग के परामर्श से करेगा।

सभापति-उपसभापति—विधान-परिषद के सदस्य अपने सदस्यों में से एक सभापति (चेयरमेन) एक और उपसभापति (डिप्टी चेयरमेन) निर्वाचित करेंगे। उनके कार्य और अधिकार विधान-परिषद के सम्बन्ध में वही होंगे, जो विधान-सभा के सम्बन्ध में उसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के हैं। उन्हें उनके पद से हटाने की क्रिया भी वही होगी, जो विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की है।

विधान-मंडल के सदस्यों के विशेषाधिकार, वेतन तथा शपथ—विधान-मंडल के प्रत्येक सदस्य को विधान-मंडल के नियमों एवं आदेशों के अधीन रहते हुए विधान-मंडल में भाषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। विधान-मंडल या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात या मत-दान के लिए किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न हो सकेगी। विधान-मंडल के सदस्यों को इतना वेतन, भत्ता तथा वे सब विशेषाधिकार आदि मिलेंगे, जिन्हें विधान-मंडल विधि बना कर निश्चय करे।

निर्वाचित होने के पश्चात् प्रत्येक सदस्य को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल के, अथवा राज्यपाल द्वारा नियुक्त व्यक्ति के, सामने संविधान के प्रति भक्ति और अपने कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में यह शपथ लेनी होती है—

मैं...(अमुक)...जो विधान-सभा (या विधान-परिषद) का सदस्य निर्वाचित (या नाम-निर्देशित) हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्य-निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा; तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ, उसके कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करूँगा।

विधान-मण्डल के सदस्यों के पद की रिक्तता—एक ही समय में कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधान-मण्डल के दोनों सदनों का सदस्य न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों के लिए निर्वाचित हो जाय तो उसे किसी एक सदन की सदस्यता छोड़नी होगी। इसी प्रकार एक ही समय में कोई व्यक्ति दो या अधिक राज्यों के विधान-मण्डलों का सदस्य न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक राज्यों के विधान-मण्डलों का सदस्य निर्वाचित हो गया तो उसे राष्ट्रपति द्वारा निश्चित की हुई अवधि के अन्दर ही एक को छोड़कर अन्य सब राज्यों के विधान-मण्डलों से त्यागपत्र दे देना होगा, अन्यथा उसका स्थान समस्त विधान-मण्डलों में रिक्त हो जायगा अर्थात् वह किसी भी विधान-मण्डल का सदस्य न रहेगा। निर्वाचित होने के

पश्चात् यदि किसी सदस्य में कोई अयोग्यता उत्पन्न हो जाय तो उसका पद रिक्त हो जायगा। यदि कोई सदस्य अपने सदन की अनुमति के बगैर, उसके अधिवेशनों में ६० दिन तक लगातार अनुपस्थित रहेगा तो उसका स्थान रिक्त घोषित कर दिया जायगा। त्यागपत्र देने से तो सदन में उसका स्थान रिक्त हो ही जायगा। सदस्यों के पदरिक्तता सम्बन्धी समस्त नियम विधान-मण्डल के दोनों सदनों पर लागू होंगे।

विधान-मण्डल की कार्यपद्धति—विधान-मण्डल के प्रत्येक सदन में प्रत्येक बात का निर्णय उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से होगा। किसी भी सदन की कार्यवाही विधि के अनुसार तभी समझी जायगी, जब कि कम-से-कम दस, या कुल सदस्य-संख्या के दशमांश सदस्य (इनमें जो संख्या अधिक हो, उतने) सदस्य उपस्थित हों। सभापति साधारण दशा में मत-प्रदान नहीं करेगा, परन्तु उसे निर्णायक मत देने का अधिकार है।

विधान-मण्डल की कार्यवाही के अन्य नियम राज्यपाल सभापति तथा अध्यक्ष के परामर्श से बनायेगा। दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशनों में विधान-सभा का अध्यक्ष सभापतित्व करेगा।

किसी राज्य के विधान-मण्डल में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्णय पर उनके कर्तव्य-पालन सम्बन्धी कार्यों पर कोई वाद-विवाद नहीं किया जायगा। विधान-मण्डल की कार्य-प्रणाली की वैधानिकता के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकेगा।

विधान-मण्डल की कार्यवाही राज्य की भाषा, या हिन्दी या अंग्रेजी में होगी। यदि कोई सदस्य इन भाषाओं में से कोई भी भाषा न जानता हो तो उसे अपनी भाषा में बोलने की अनुमति सदन का सभापति या अध्यक्ष प्रदान कर देगा। यह व्यवस्था संविधान लागू होने से १५ वर्ष तक चलेगी। उसके पश्चात् अंग्रेजी का व्यवहार बन्द हो जायगा।

विधान-मंडलों का कार्य क्षेत्र, राज्य-सूची—विधान-मण्डल अपने राज्यों के लिए वही सब कार्य करेंगे, जो संसद संघ-सरकार के लिए करती

है। विधान-मण्डलों को राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची के समस्त विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। परन्तु समवर्ती सूची के विषयों में प्रथम अधिकार संसद को है। यदि वह इन विषयों की विधि न बनाये तो विधान-मण्डल बना सकते हैं; संसद उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकती है, यहाँ तक कि उसे रद्द भी कर सकती है। यदि राज्य के विधान-मण्डल की बनायी हुई विधि में और संसद की बनायी हुई उस विषय की विधि में विरोध हो तो संसद की बनायी हुई विधि ठीक समझी जायगी। समवर्ती-सूची के मुख्य-मुख्य विषय संसद के प्रसंग में बताये जा चुके हैं।

राज्य-सूची के मुख्य-मुख्य विषय संक्षेप में ये हैं :—

(१) सार्वजनिक व्यवस्था [सैनिक बल के प्रयोग को छोड़कर]। (२) न्याय प्रशासन [उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय छोड़ कर]; उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों की फीस; राजस्व [माल], न्यायालयों की कार्यपद्धति। (३) पुलिस। (४) जेल। (५) राज्य का लोक-ऋण। (६) राज्य-लोक-सेवाएँ और लोक-सेवा आयोग [सार्वजनिक नौकरी कमीशन] (७) राज्य-निवृत्ति-वेतन [पेन्शन]। (८) भूमि पर अधिकार, और भूमि सुधार। (९) सरकारी तौर से भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय तथा अजायबघर। (११) राज्यों के विधान-मण्डलों के चुनाव। (१२) राज्यों के मन्त्रियों तथा विधान-सभाओं और परिषदों के सभापति, उपसभापति और सदस्यों का वेतन और भत्ता। (१३) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल, जन्म-मृत्यु का लेखा। (१५) तीर्थ-यात्रा। (१६) कब्रिस्तान। (१७) शिक्षा। (१८) सड़कें, पुल, घाट, और आवागमन के अन्य साधन (बड़ी रेलों को छोड़कर)। (१९) जल प्रबन्ध, आबपाशी, नहर, बाँध, तालाब और जल से उत्पन्न होने वाली शक्ति (२०) कृषि, कृषि-शिक्षा और अनुसन्धान, पशु-चिकित्सा तथा कांजी हौज। (२१) भूमि, मालगुजारी और किसानों के पारस्परिक सम्बन्ध। (२२) जंगल। (२३) खान, तेल के कुओं का नियंत्रण, और खनिज उन्नति। (२४) मछलियों का

व्यवसाय। (२५) जंगली पशुओं की रक्षा। (२६) गैस के कारखाने। (२७) राज्य के अन्दर का व्यापार-वाणिज्य, मेले-तमाशे, साहुकारी और साहुकार। (२८) सराय। (२९) उद्योगधन्धों की उन्नति, माल की उत्पत्ति, पूर्ति और वितरण। (३०) खाद्य पदार्थों आदि में मिलावट, तोल और माप। (३१) शराब और अन्य मादक वस्तुओं सम्बन्धी क्रय-विक्रय और व्यापार (अफीम की पैदावार छोड़कर)। (३२) गरीबों का कष्ट-निवारण, बेकारी। (३३) कारपोरेशनों का संगठन, संचालन और समाप्ति, अन्य व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ; सहकारी समितियाँ। (३४) दान, और दान देनेवाली संस्थाएँ। (३५) नाटक, थियेटर और सिनेमा। (३६) जुआ और सट्टा। (३७) राज्य सम्बन्धी विषयों के कानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराध। (३८) राज्य के काम के लिए आँकड़े तैयार करना। (३९) भूमि का लगान, और मालगुजारी सम्बन्धी पैमायश (४०) आबकारी, शराब, गांजा, अफीम आदि पर कर। (४१) कृषि सम्बन्धी आय पर कर। (४२) भूमि, इमारतों पर कर। (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार सम्बन्धी कर। (४४) खनिज अधिकारों पर कर। (४५) व्यक्ति-कर; मनोरंजन कर। (४६) व्यापार और पेशे-धन्धे पर कर। (४७) पशुओं और किश्तियों पर कर। (४८) समाचारपत्रों को छोड़ कर माल की बिक्री और खरीद पर कर; समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर। (४९) चुंगी। (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर; इसमें दावत, जुए सट्टे पर का कर सम्मिलित है। (५१) स्टाम्प। (५२) राज्य के भीतर जल-मार्गों पर कर। (५३) मार्ग-कर ('टोल')। (५४) किसी राज्य-विषय सम्बन्धी फीस।

विधि-निर्माण; साधारण विधेयक—विधान-मंडलों में विधि-निर्माण की कार्य-प्रणाली प्रायः वैसी ही है, जैसी संसद में। इनमें भी उपस्थित होने वाले विधेयक दो प्रकार के होंगे—धन या वित्त सम्बन्धी तथा साधारण। धन सम्बन्धी विधेयकों को छोड़ कर अन्य (साधारण) विधेयकों का प्रस्ताव, राज्य के विधान-मंडल के किसी सदन में हो सकेगा। कोई भी विधेयक दोनों सदनों में पास होने पर और राज्यपाल की अनुमति मिलने पर ही विधि बन

सकेगा। यदि कोई विधेयक विधान-सभा में पास हो जाता है और विधान-परिषद में पास नहीं हो पाता, या उसमें विधान-परिषद ऐसा संशोधन कर देती है जो विधान-सभा को स्वीकार नहीं है, या विधान-परिषद उसे तीन माह के अन्दर न लौटाये तो विधान-सभा उस विधेयक को दुबारा उसी अधिवेशन में पास करके परिषद के पास भेजेगी और यदि उसने इस बार भी एक माह के अन्दर उसे स्वीकार नहीं किया तो यह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास हुआ समझा जायगा। इस भाँति यह स्पष्ट है कि विधान-परिषद विधान-सभा से नीचे दर्जे की है। [विधान-मण्डल के दोनों सदनों में मतभेद होने पर संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है, जैसी कि संसद के दोनों सदनों में मतभेद होने की दशा में है।]

धन सम्बन्धी विधेयक—ऊपर साधारण विधेयकों की बात कही गयी है। अब धन सम्बन्धी विधेयकों के विषय में लिखा जाता है। ये विधेयक विधान-सभा में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं, विधान-परिषद में नहीं। विधान-सभा में पास होने पर ऐसा विधेयक विधान-परिषद में उसकी सिफारिश के लिए भेज दिया जायगा। विधान-परिषद को १४ दिन के अन्दर ही अपनी सिफारिश के साथ इसे विधान-सभा में भेजना होगा। यदि वह ऐसा न करे तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास समझा जायगा। यदि विधान-परिषद १४ दिन के अन्दर ही विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित वापिस भेज देती है तो विधान-सभा को उन सिफारशों को मानने या न मानने का पूर्ण अधिकार है। इसके पश्चात् विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत समझा जायगा।

खासकर निम्नलिखित विषयों का विधेयक धन सम्बन्धी विधेयक समझा जायगा—

१—किसी कर को लगाना, उसे उठा देना, उसमें छूट देना तथा उसमें परिवर्तन करना।

२—राज्य की सरकार द्वारा धन उधार लेना, अथवा कोई गारन्टी देना।

३—राज्य की निधि की रक्षा, वृद्धि या व्यय की योजना।

कोई विधेयक धन सम्बन्धी है या नहीं, इसका निर्णय विधान-सभा का अध्यक्ष करेगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा।

राज्यपाल की अनुमति—राज्य की विधान-सभा द्वारा, अथवा विधान-परिषद् वाले राज्य में विधान-मंडल के दोनों सदनों द्वारा, पास किया हुआ विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जायगा। राज्यपाल को अधिकार है कि वह उसे स्वीकार करे, अस्वीकार करे या राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक ले। राज्यपाल धन सम्बन्धी विधेयक को छोड़ कर अन्य किसी भी विधेयक को विधान-मण्डल के पास अपनी सिफारिशों सहित पुनः विचार करने के लिए भेज सकता है। विधान-मण्डल को अधिकार है कि वह सिफारिशों को माने या न माने। न मानने की दशा में वह विधेयक को उसी रूप में फिर पास कर सकता है। इस बार राज्यपाल को उस पर स्वीकृति देनी ही होती है।

राष्ट्रपति के विचारार्थ रोके हुए विधेयक—जब राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक ले तो राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह उस पर स्वीकृति दे, या स्वीकृति रोक ले। धन सम्बन्धी विधेयक को छोड़कर, अन्य किसी भी विधेयक के सम्बन्ध में राष्ट्रपति राज्यपाल को यह आदेश दे सकेगा कि वह विधेयक को यथास्थिति विधान-मंडल के सदन या सदनों की सिफारिश सहित लौटा दे। इस पर छः माह की अवधि के अन्दर सदन या सदनों द्वारा उस विधेयक पर फिर विचार किया जायगा। यदि विधेयक, संशोधन सहित या उसके बिना, सदन या सदनों द्वारा फिर से पास हो जाता है तो वह राष्ट्रपति के सामने पुनः विचारार्थ उपस्थित किया जायगा। संशोधन सहित स्वीकृत विधेयक को तो राष्ट्रपति स्वीकृति प्रदान कर ही देगा, पर यदि विधेयक संशोधन सहित स्वीकृत न हो तो राष्ट्रपति स्वीकृति देने के लिए बाध्य नहीं है।

राज्य का आय-व्यय निश्चित करना—गवर्नर या राज्यपाल सरकार के प्रत्येक आर्थिक वर्ष के अनुमानित आय और व्यय के सम्बन्ध में

एक वक्तव्य राज्य के विधान-मण्डल के सामने उपस्थित कराता है। इसमें व्यय के अनुमान के सम्बन्ध में दो प्रकार की मदों की रकमें अलग-अलग दिखायी जाती हैं—(१) जिन्हें खर्च करना अनिवार्य है, जिन पर विधान-मंडल केवल विचार या बहस कर सकेगा, परन्तु मत नहीं दे सकेगा, और (२) जिन्हें खर्च करने का प्रस्ताव किया जाता है, जिन पर विधान-सभा का मत लिया जायगा।

इनमें से प्रथम प्रकार की मदें निम्नलिखित हैं :—

(१) राज्यपाल का वेतन, भत्ता और उसके पद से सम्बन्धित दूसरे व्यय।

(२) विधान-सभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, और विधान-परिषद के सभापति; उपसभापति के वेतन तथा भत्ते।

(३) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्ते।

(४) राजाओं को निजी खर्च के लिए दी जाने वाली ऐसी रकमें, जिनको राष्ट्रपति ने निर्धारित किया हो।

(५) उच्च न्यायालयों का खर्च।

(६) राज्य के लोक-सेवा आयोग (कमीशन) के खर्च।

(७) सरकारी ऋण पर दिया जाने वाला ब्याज।

(८) किसी न्यायालय के निर्णय, आज्ञा या किसी भुगतान के लिए धन-राशि।

(९) संविधान द्वारा अथवा विधान-मंडल द्वारा घोषित किया गया कोई अन्य व्यय।

इन मदों को छोड़ कर शेष सब मदों का खर्च विधान-सभा के सामने माँग के रूप में पेश किया जायगा। विधान-सभा को अधिकार है कि वह किसी माँग पर स्वीकृति प्रदान करे, अस्वीकार कर दे, अथवा उसमें कमी कर दे। कोई भी माँग राज्यपाल की अनुमति बिना उपस्थित नहीं की जा

सकती। यदि राज्यपाल विधान-सभा द्वारा स्वीकृत धन-राशि को पर्याप्त न समझे और उसके विचार में भविष्य में अधिक धन की आवश्यकता है तो वह अतिरिक्त व्यय के लिए अतिरिक्त या पूरक माँग भी कर सकेगा। पूरक माँगों की कार्यवाही साधारण माँगों की भांति होगी। विधान-सभा को अधिकार है कि वह भविष्य सम्बन्धी माँग या असाधारण माँग स्वीकार कर दे। इन माँगों की स्वीकृति के लिए साधारण माँग की प्रक्रिया ही व्यवहार में आयेगी।

विधान-मंडलों की विधि-निर्माण सम्बन्धी सीमा—यद्यपि राज्यों के विधान-मंडल अपने-अपने क्षेत्र में यथेष्ट अधिकार-सम्पन्न हैं, तथापि निम्नलिखित विषयों में उनके अधिकार सीमित हैं :—

१—राज्य द्वारा स्वीकृत निम्नलिखित विधि तब तक अवैध होंगी, जब तक कि उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिल जाये :—(१) जिन विधियों का सम्बन्ध राज्य द्वारा संपत्ति प्राप्त करने से होगा (२) समवर्त्ती सूची के किसी विषय सम्बन्धी विधि, जिसका संसद द्वारा स्वीकृत विधि से विरोध हो, और (३) वे विधि, जिनका उद्देश्य उन वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर कर लगाना हो, जिन्हें संसद ने जनता के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक ठहराया हो।

२—कुछ विधेयकों को विधान-मंडल में प्रस्तावित करने से पहले राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होगी। इस कोटि में वे विधेयक होंगे, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक हित में राज्य के अन्दर या विभिन्न राज्यों के बीच वाणिज्य, व्यापार या समागम की स्वतंत्रता पर रुकावट लगाना होगा।

३—संसद को राज्य-सूची के विषय पर भी विधि निर्माण करने का अधिकार है, बशर्ते कि राज्यपरिषद दो-तिहाई बहुमत से उन विषयों पर विधि बनाने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास कर दे। ऐसी विधियों का प्रभाव एक निश्चित अवधि तक ही रह सकेगा।

४—विधान-मंडल में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के

न्यायाधीशों के किसी कार्य के बारे में, जो उन्होंने अपने कर्तव्य-पालन के लिए किया हो, विवाद नहीं हो सकेगा।

५—संकटकालीन घोषणा की अवधि में संसद राज्य-सूची के सभी विषयों पर विधि बना सकेगी।

६—राज्यों में वैधानिक शासन की असफलता की घोषणा की अवधि में राष्ट्रपति राज्य के विधान-मंडल के अधिकार अपने हाथों में ले सकता है और संसद को सब अधिकारों का प्रयोग करने का अधिकार दे सकता है।

दूसरे सदन की उपयोगिता का विचार—जैसे संसद का दूसरा सदन राज्य-परिषद है, ऐसे ही राज्यों के विधान-मंडलों का दूसरा सदन विधान-परिषद है। इसके मुख्य कार्य ये हैं—पहले सदन (विधान-सभा) द्वारा पास विधेयकों पर पुनः विचार करना और उनकी उचित परीक्षा करके उनमें संशोधन करना तथा विधेयक की अन्तिम स्वीकृति में देर लगाना, जिससे उस अवधि में उस पर जनमत अच्छी तरह प्रगट हो सके और विधेयक में जनता के हित और इच्छा की दृष्टि से उचित परिवर्तन किये जा सकें। परन्तु संविधान में राज्यपाल को किसी विधेयक को प्रथम बार अस्वीकृत कर सकने का अधिकार देकर अनावश्यक शीघ्रता पर नियंत्रण रखने की व्यवस्था कर ही दी गयी है। फिर, द्वितीय सदन अनावश्यक देर भी लगा सकता है। इस प्रकार इसका व्यय बहुत-कुछ व्यर्थ ही है।

'ख' वर्ग के राज्यों के विधान-मंडल

विधान-मंडलों का संगठन—'ख' वर्ग के राज्यों के विधान-मंडल 'क' वर्ग के राज्यों के से ही हैं। हाँ, इनका अभिन्न अंग राजप्रमुख होगा, जब कि 'क' वर्ग के राज्यों में राज्यपाल होगा। मैसूर को छोड़कर इनमें एक-एक ही सभा अर्थात् विधान सभा है। इन विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है :—

१—हैदराबाद	१७५
२—मध्यभारत	६६

३—मैसूर ९९
४—पटियाला और पंजाब राज्य-सङ्घ (पेप्सू) ६०
५—राजस्थान १६०
६—सौराष्ट्र ६०
७—त्रावनकोर-कोचीन १०८
८—जम्मू-कश्मीर ७५

मैसूर राज्य के विधान-मंडल में विधान-परिषद भी है, उसके सदस्यों की संख्या ४० है—स्थानीय संस्थाओं के सदस्य १३, स्नातक ३, अध्यापक ३, विधान-सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित १३, नामजद ८।

कार्य-क्षेत्र—इन राज्यों के विधान-मंडलों का कार्यक्षेत्र लगभग वैसा ही है, जैसा 'क' भाग के राज्यों का। इन्हें भी राज्य-सूची और समवर्ती सूची के सब विषयों पर विधि या कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के कानून बनाने में संसद को प्राथमिकता और प्रधानता रहेगी, अर्थात् राज्यों के विधान-मंडल उनके सम्बन्ध में कानून उसी दशा में बना सकेंगे, जब संसद न बनाये। संसद उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकती है, और उन्हें रद्द भी कर सकती है।

जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में संसद को सङ्घ-सूची और समवर्ती सूची के अन्तर्गत केवल विदेश-सम्बन्ध, रक्षा और संचार के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार है। वह उन विषयों की भी विधि बना सकेगी, जिनके बारे में राष्ट्रपति इस राज्य की सरकार की सम्मति से तय कर दे; ऐसे विषयों को राज्य की विधान-सभा के सामने रखा जायगा और उसका निर्णय लिया जायगा।

'ग' वर्ग के राज्यों की विधान सभाएँ—इन राज्यों में से कुर्ग में पहले से ही विधान परिषद है। [अब विधान-परिषद का अर्थ दूसरी सभा होता है, इसलिए इसे विधान सभा समझना चाहिए]। अन्य राज्यों में प्रतिनिधि-संस्थाएँ (विधान-सभाएँ) स्थापित की जाने की माँग की गयी थी।

इस पर सन् १९५१ में संसद ने इस विषय का कानून बनाया। उसके अनुसार कच्छ, मणिपुर और त्रिपुरा में विधान-सभाएँ उस समय बनेगीं, जब केन्द्रीय सरकार उसकी तारीख निश्चित करे। अन्य राज्यों में से बिलासपुर को छोड़कर शेष छः में विधान सभाएँ स्थापित हो गयी हैं। इसके सदस्यों की संख्या आगे नक्शे से मालूम हो जायगी।

विधान-सभाओं के निर्वाचन बालिग मताधिकार के आधार पर होंगे। दिल्ली को छोड़कर अन्य राज्यों की विधान-सभाएँ राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों के कानून बना सकेंगी, और प्रायः सब बातों में उनके अधिकार और कार्यप्रणाली 'क' वर्ग के राज्यों की विधानसभाओं जैसी होगी। [दिल्ली की विधान सभा इन विषयों पर कानून न बना सकेगी—सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा, पुलिस तथा रेलवे पुलिस, नगरपालिकाओं (म्युनिसपैलटियों) का संगठन और अधिकार, दिल्ली और नई दिल्ली से सम्बन्धित इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, पानी की पूर्ति और नालियाँ, बिजली तथा सार्वजनिक उपयोगिता की अन्य बातें, संघ की इमारतें तथा जमीनें, उन जमीनों पर कर वसूली, इन बातों से सम्बन्धित न्यायालयों या अधिकार-क्षेत्र इत्यादि। वास्तव में यहाँ द्वैध शासन होगा, कई मुख्य विभाग चीफ-कमिश्नर के ही अधीन रहेंगे।]

विशेष वक्तव्य—इन राज्यों में विधान-सभाओं (और मन्त्रिपरिषदों) की स्थापना को प्रायः आदमी सरकार का लोकतंत्र की दिशा में बढ़ा हुआ कदम समझते हैं। पर इसका दूसरा भी पहलू विचारणीय है। जैसा ऊपर कहा गया है, इन राज्यों की विधानसभाओं का कार्य-क्षेत्र बहुत परिमित है और मंत्रिपरिषद यथेष्ट स्वतंत्र नहीं है। फिर छोटे-छोटे राज्यों में इन संस्थाओं का खर्च बहुत भार-रूप होता है। इससे उनके राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यों में तो बाधा होती ही है; इसके अतिरिक्त यह एक सीमा तक दूसरे राज्यों के हित में भी बाधक हैं, क्योंकि केन्द्र को अपने कोष से इनके लिए सहायता देनी पड़ती है, जिसका उपयोग केन्द्र सारे देश के लिए चलने वाली उन्नति की योजना में कर सकता था। यह भी विचारणीय है कि इन राज्यों में मन्त्रि-

परिषद और विधानसभाएँ स्थापित होने का परिणाम यह होगा कि अब इन राज्यों का अपने पड़ोसी राज्यों में मिलना अधिक कठिन होगा; कारण लोगों में क्षुद्र प्रान्तीयता या स्थानीय भक्ति-भावना जोर पकड़ेगी; दूसरे, अनेक पदाधिकारियों का निजी स्वार्थ इस बात में होगा कि ये राज्य अलग-अलग ही बने रहें।

भूत-पूर्व रियासतों के संसदीय सदस्यों के सम्मेलन की बात पहले कही गयी है। उसने राज्यों का वर्गीकरण मिटाने पर जोर देते हुए यह सुझाव दिया है कि 'ग' वर्ग के राज्यों की अलग श्रेणी न रख कर, केन्द्रीय सरकार उन्हें स्थानीय सरकार के रूप में माने और जब उचित प्रतीत हो, नजदीक के राज्य में मिला दे।

× × ×

विधान-सभाओं का चुनाव; विविध दलों की शक्ति— नये संविधान के अनुसार विविध राज्यों की विधान-सभाओं का पहला चुनाव सन् १९५१-५२ में हुआ। सब राज्यों में 'राजनैतिक' दलों की संख्या कुल मिला कर ७० से अधिक थी। वास्तव में अधिकांश दलों को राजनैतिक नहीं कहा जा सकता। उनके सामने कोई खास राजनैतिक, या आर्थिक कार्यक्रम नहीं था। वे जाति, सम्प्रदाय आदि के आधार पर संगठित थे। कितने ही तो चुनाव से कुछ ही समय पहले बने थे, और चुनाव के बाद जल्दी ही समाप्त हो गये। ऐसे दलों का होना ठीक नहीं है। अस्तु, यहाँ केवल चार खास दलों के तथा स्वतन्त्र रूप से चुने हुए सदस्यों के ही अंक दिये गये हैं। शेष सब दलों के सदस्यों का योग 'अन्य दल' में दिया गया है। अन्य दलों में कृषक मजदूर प्रजा पार्टी (मद्रास, प० बङ्गाल, और मैसूर में), राम राज्य प्रजा परिषद (सौराष्ट्र में), और जनसंघ (प० बङ्गाल और राजस्थान में) मुख्य हैं। अकाली दल केवल पंजाब में है।

आसाम के १०५ सदस्यों के चुनाव का ब्योरा दिया गया है। इस नक्शे को तैयार करते समय इस राज्य के तीन सदस्यों का चुनाव होना शेष था।

विधान सभाएँ	कांग्रेस	समाजवादी	कम्युनिस्ट	स्वतंत्र	अन्य दल	कुल जोड़
(क वर्ग के राज्य)						
१ आसाम	७६	४	१	१४	१०	१०५
२ बिहार	२४०	२३	—	१३	५४	३३०
३ बम्बई	२६९	९	—	१८	१९	३१५
४ मध्यप्रदेश	१९४	२	—	२३	१३	२३२
५ मद्रास (आंध्र सहित)	१५२	१३	६२	६२	८६	३७५
६ पंजाब	९७	१	४	४	२०	१२६
७ उड़ीसा	६७	१०	७	२१	३५	१४०
८ पश्चिमी बंगाल	१५०	—	२८	१६	४४	२३८
९ उत्तर प्रदेश	३९०	१९	—	१४	७	४३०
(ख वर्ग के राज्य)						
१० हैदराबाद	९३	११	४२	१४	१५	१७५
११ मध्य भारत	७५	४	—	३	१७	९९
१२ मैसूर	७४	३	१	११	१०	९९
१३ पेप्सू	२६	—	२	८	२४	६०
१४ राजस्थान	८२	१	—	३५	४२	१६०
१५ सौराष्ट्र	५५	२	—	२	१	६०
१६ त्रावनकोर-कोचीन	४३	११	३२	११	११	१०८
(ग वर्ग के राज्य)						
१७ अजमेर	२०	—	—	४	६	३०
१८ भोपाल	२५	—	—	४	१	३०
१९ कुर्ग	१५	—	—	९	—	२४
२० दिल्ली	३९	२	—	३	४	४८
२१ हिमाचल प्रदेश	२४	—	—	८	४	३६
२२ विन्ध्य प्रदेश	४०	११	—	२	७	६०
निर्वाचक मंडल						
२३ कच्छ	२८	—	—	१	१	३०
२४ मणिपुर	१०	१	२	१	१६	३०
२५ त्रिपुरा	९	—	१२	६	३	३०
कुल जोड़	२२९३	१२७	१९२	२०७	४५०	३३७०

सतरहवाँ अध्याय

राज्यों की न्यायपालिकाएँ

देश के वर्तमान उच्च न्यायालयों ने अपने आप को स्वाधीनता का गढ़ सिद्ध कर दिया है।

—एन. एम. जोशी

पिछले दो अध्यायों में राज्यों की कार्यपालिका और विधान-मण्डलों के बारे में लिखा जा चुका है। अब इनकी न्यायपालिकाओं का विचार करते हैं। पहले 'क' वर्ग के राज्यों को लें।

'क' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका

उच्च न्यायालय—'क' वर्ग के राज्यों में से प्रत्येक में एक हाईकोर्ट या उच्च न्यायालय होगा। संविधान लागू होने से पहले जिन राज्यों में उच्च न्यायालय थे, वे संविधान द्वारा उन राज्यों के उच्च न्यायालय स्वीकार कर लिये गये हैं। प्रत्येक न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीश होंगे। न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या राष्ट्रपति नियत करेगा।

न्यायाधीशों की नियुक्ति और वेतन—प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा राज्य के राज्यपाल के परामर्श से करेगा और राज्य के मुख्य न्यायाधिपति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति राज्य के मुख्य न्यायाधिपति का भी परामर्श लेगा।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होना आवश्यक है :—वह (१) भारत का नागरिक हो, (२) कम से कम १० वर्ष तक भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी नैयायिक पद पर रहा

हो या राज्यों के उच्चन्यायालयों में कम से कम १० वर्ष तक एडवोकेट (अधिवक्ता) रह चुका हो ।

प्रत्येक न्यायाधीश ६० वर्ष की आयु तक अपने पद पर बना रह सकेगा। वह इसके पूर्व भी राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर अपने पद से हट सकता है। उसे उसके पद से हटाने का कार्य राष्ट्रपति भी कर सकता है; वह उसे उसके पद से उसी दशा में हटा सकेगा, जब संसद के दोनों सदन अलग-अलग अपने कुल सदस्यों के बहुमत तथा संसद के सदनों की बैठक में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई मत से प्रमाणित अयोग्यता अथवा दुराचरण के कारण उसे पदच्युत करने की प्रार्थना करें । संविधान लागू होने के उपरान्त जो व्यक्ति किसी भी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका है, वह भारत के किसी भी न्यायालय या अधिकारी के सामने वकालत न कर सकेगा । यह नियम इसलिए रखा गया है कि न्यायाधीश निष्पक्ष रहें और अपना कार्य स्वतन्त्रता-पूर्वक करें ।

उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश को ४०००), तथा अन्य न्यायाधीशों को ३५००) मासिक वेतन मिलता है और उनके कार्यकाल के अन्दर इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती ।

न्यायाधीशों की शपथ—प्रत्येक न्यायाधीश पद ग्रहण करने से पूर्व उस राज्य के राज्यपाल के सामने अपने पद सम्बन्धी निम्नलिखित शपथ ग्रहण करेगा :—

'मैं........अमुक........जो उच्चन्यायालय का न्यायाधिपति (न्यायाधीश) नियुक्त हुआ हूँ ईश्वर की शपथ लेता हूँ, (या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, तथा मैं सम्यक् प्रकार से और श्रद्धा-पूर्वक तथा अपनी पूर्ण योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों को भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करूँगा तथा मैं संविधान और विधियों की मर्यादा बनाये रखूँगा ।'

उच्च न्यायालयों का अधिकार; न्याय सम्बंधी—प्रत्येक उच्च न्यायालय दो प्रकार के कार्य करता है—न्याय सम्बन्धी और प्रबन्ध सम्बन्धी

न्याय सम्बन्धी अधिकारों की दृष्टि से उसके दो भाग होते हैं :—प्रारम्भिक ('ओरिजिनल') और अपील भाग। साधारणतया 'ओरिजिनल' भाग का कार्य-क्षेत्र हाईकोर्ट वाले नगर की सीमा के बाहर नहीं होता। इस भाग में उस स्थान के ऐसे सब दीवानी मामले जाते हैं, जो 'स्माल काज कोर्ट' (लघुवाद न्यायालय या अदालत खफीफा) में नहीं जा सकते; तथा ऐसे सब फौजदारी मुकदमे जाते है, जिनका फैसला अन्य स्थानों में सेशन जज की अदालतों में हो। इसी भाग में फौजदारी मामलों के उन अपराधियों का विचार होता है, जिनका विचार मुफस्सिल अदालतों में नहीं हो सकता। हाईकोर्ट वादी प्रतिवादी की प्रार्थना पर, अथवा न्याय के विचार से, मुकदमों को सब-जजों की अदालतों से उठा कर अपने इस (ओरिजिनल) भाग में ले सकते हैं।

अपील भाग में 'ओरिजिनल' भाग की तथा मुफस्सिल अदालतों की अपील सुनी जाती है।

उच्च न्यायालयों के क्षेत्र और अधिकार विधि द्वारा निश्चित हैं। संसद उनके क्षेत्राधिकार में परिवर्तन कर सकती है, उसे घटा या बढ़ा सकती है। उच्चन्यालयों से सब प्रकार के मुकदमों की अन्तिम अपील उच्चतम न्यायालय में जायेगी। जो मुकदमे प्रारम्भिक रूप में उच्च न्यायालय में ही आरम्भ होंगे, उनकी अपील उसी न्यायालय में दो या अधिक न्यायाधीशों के सामने जायेगी।

प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार, अधीन न्यायालयों का नियंत्रण—उच्च न्यायालय को अपने अधीन सब न्यायालयों के निरीक्षण का अधिकार है। इस अधिकार से द्वारा वह (१) अपने अधीन अदालतों से किसी मामले के कागजों को मांग सकता है, (२) अदालती कार्य-पद्धति के नियम निश्चित कर सकता है, (३) अदालतों के रजिस्टर हिसाब आदि रखने के सम्बन्ध में नियम बना सकता है, (४) उसके एटार्नी, शेरिफ, क्लर्क आदि कर्मचारियों की फीस नियत कर सकता है। इसके अतिरिक्त उसे नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए किसी व्यक्ति या अधिकारी को और सरकार को भी, आदेश देने का अधिकार है।

उच्च न्यायालय अपने अधिकार-क्षेत्र के अन्दर किसी मुकदमे को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में भेज सकता है। यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि उसके अधीन न्यायालय में कोई ऐसा मामला पेश है, जिसमें कोई ऐसा कानूनी प्रश्न उपस्थित है जिसमें संविधान की व्याख्या की आवश्यकता है तो वह उस मुकदमे को अपने पास मँगाकर स्वयं निपटा सकता है, अथवा उस मामले में कानून का जो प्रश्न उपस्थित है, उस पर अपना निर्णय देकर उसी न्यायालय के पास, उस निर्णय के अनुसार उसे निपटाने के लिए वापिस भेज सकता है। उच्च न्यायालय को फांसी की सजा देने का अधिकार है; अपने अधीन न्यायालयों द्वारा दी हुई फाँसी तथा कालेपानी की सजा पर उसकी स्वीकृति आवश्यक है।

जिला-न्यायालयों और उनसे छोटी अदालतों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण रहेगा। इस नियंत्रण के अंतर्गत नियुक्ति, तरक्की, छुट्टी आदि देने के सभी अधिकार सम्मिलित हैं, जो न्याय-विभागीय कर्मचारियों के लिए काम में लाये जायेंगे।

जिला-न्यायाधीश—उच्च न्यायालय के अधीन, प्रायः हरेक जिले में एक जिला-जज होता है। जिले में वह न्याय सम्बन्धी सबसे बड़ा अधिकारी होता है। उसके न्यायालय में किसी भी रकम के दीवानी मुकदमे आरम्भ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त वह अपने अधीन न्यायालयों से आयी हुई दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार की अपीलें सुनता है।

दीवानी के केवल वही मुकदमे उसके पास अपील के लिए जाते हैं, जो पाँच हजार रुपये से अधिक के न हों; अधिक रकम के मामलों की अपीलें सब-जज के न्यायालय से सीधी उच्च न्यायालय में जाती है।

जिला-न्यायाधीश की नियुक्ति तरक्की आदि, उच्च न्यायालय के परामर्श से, राज्यपाल करेगा। जिलाधीश के पद पर ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जायेगा, जो राज्य या संघ की नौकरी में न हो, और जो या तो सात वर्ष तक वकील या एडवोकेट (अधिवक्ता) रह चुका हो, या जिसकी इस पद के लिए न्यायालय सिफारिश करे।

स्मरण रहे कि 'जिला-न्यायाधीश' पदावली के अंतर्गत नगर-व्यवहार न्यायालय (सिटी सिविल कोर्ट) का न्यायाधीश, अपर ज़िला-न्यायाधीश (एडिशनल डिस्ट्रिक्ट जज), संयुक्त जिला-न्यायाधीश, सहायक जिला-न्यायाधीश), लघुवाद न्यायालय (स्माल काज कोर्ट) का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेन्सी-दंडाधिकारी (चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट), अपर मुख्य प्रेसीडेन्सी दंडाधिकारी, सत्र न्यायाधीश (सेशन जज) और सहायक सत्र न्यायाधीश भी हैं।

अन्य न्याय-विभागीय कर्मचारी—जिला-जज के पद को छोड़कर अन्य न्याय-विभागीय कर्मचारियों की नियुक्ति सम्बन्धी नियम, उच्च न्यायालय और लोक-सेवा-आयोग (पब्लिक सर्विस कमीशन) के परामर्श से, राज्यपाल बनायेगा। 'न्याय विभागीय कर्मचारियों' के अंतर्गत केवल वे पदाधिकारी आते हैं, जो जिला-न्यायाधीशों का या उससे छोटा पद ग्रहण करते हैं।

जिला-जज के अधीन, जिले में दीवानी और फौजदारी के न्यायालय होते हैं, इनका आगे क्रमशः विचार किया जाता है।

दीवानी अदालतें (व्यवहार न्यायालय)—जिला-जज की अदालत के नीचे सब-जज और उसके नीचे मुन्सिफ की अदालत होती है। सब-जज को उत्तर-प्रदेश में सिविल जज कहा जाता है। उसकी अदालत में किसी भी रकम के मुकदमे दायर हो सकते हैं। मुन्सिफ की अदालत में दो हजार रु० तक के, और विशेष अधिकार दिये जाने पर पाँच हजार रु० तक के, मुकदमे दायर हो सकते हैं। कुछ बड़े-बड़े जिलों में लघुवाद न्यायालय भी हैं, जो छोटे-छोटे मामलों में जल्दी तथा कम खर्च से अपना निर्णय सुना देती हैं। प्रायः इनके फैसलों की अपील नहीं होती।

फौजदारी अदालतें (दंड-न्यायालय)—हरेक जिले में या कुछ जिलों के एक समूह में, एक 'सेशन्स कोर्ट' रहता है। इसका प्रधान भी जिला-जज ही होता है, जो सेशन जज का काम करता है। उसे अन्य

सहायक सेशन-जजों से सहायता मिल सकती है। सेशन जज की अदालत अपने क्षेत्र (जिले या जिला-समूह) में सबसे ऊँची फौजदारी अदालत है। इसमें उससे नीचे की फौजदारी अदालतों की अपील होती है। सेशन जज मृत्यु-दंड भी दे सकता है, पर ऐसा दंड दिये जाने से पूर्व उसकी पुष्टि राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा होनी चाहिए। इसकी अदालत में फैसला जूरी या असेसरों की सहायता से होता है। असेसर जज को अपनी सम्मति पर चलने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।

सेशन जज के नीचे मजिस्ट्रेट रहते हैं। बम्बई, कलकत्ता, और मद्रास में 'प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट', छावनियों में 'छावनी मजिस्ट्रेट', एवं कुछ नगरों और कस्बों में पहले, दूसरे, या तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट रहते हैं। प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेटों तथा अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेटों को दो साल तक की कैद और एक हजार रुपये तक जुर्माना करने का अधिकार होता है। दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट छः मास तक की कैद और दो सौ रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं। तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट एक मास तक की कैद और पचास रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं।

दूसरे और तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के फैसले के विरुद्ध, जिला-मजिस्ट्रेट के यहाँ अपील हो सकती है; और अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के फैसले की अपील सेशन्स कोर्ट में चल सकती है। जिन मनुष्यों को मुकदमे की प्रारम्भिक दशा में सेशन्स कोर्ट ने दोषी ठहराया हो, उनकी अपील उस राज्य के उच्च न्यायालय में हो सकती है।

रेवन्यू कोर्ट—राजस्व या मालगुजारी सम्बन्धी सब बातों का फैसला करने के लिए कहीं-कहीं रेवन्यू कोर्ट और कहीं-कहीं सेटलमेंट (बन्दोबस्त) कमिश्नर हैं। इनके अधीन कमिश्नर, कलेक्टर, तहसीलदार आदि रहते हैं, जिन्हें लगान, मालगुजारी और आबपाशी आदि के मामलों का फैसला करने का निर्धारित अधिकार है।

पंचायती अदालतों के सम्बन्ध में आगे लिखा जायेगा।

'ख' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका

'ख' वर्ग के प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय है। इन राज्यों की न्यायपालिका 'क' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका की ही तरह होगी। दोनों के उच्च न्यायालयों के कार्य और अधिकार लगभग समान होंगे; अन्तर यह होगा कि 'क' वर्ग के राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का वेतन संविधान द्वारा निश्चित किया गया है, किन्तु 'ख' वर्ग के राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का वेतन राष्ट्रपति राजप्रमुखों के परामर्श से नियत करेगा। इन राज्यों के न्यायाधीशों के भत्ते, पेंशन आदि के नियम संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी, और जब तक वह ऐसा कोई निश्चय न करे, तब तक राष्ट्रपति राजप्रमुख के परामर्श से निश्चित करेगा।

'ग' वर्ग के राज्यों की न्याय-व्यवस्था

इन राज्यों के लिए उच्च न्यायालय संसद बनायेगी, अथवा वह किसी मौजूदा उच्च न्यायालय को ही उस राज्य का उच्च न्यायालय घोषित कर देगी। इन राज्यों के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में वे सब नियम और उपबन्ध लागू होंगे, जो 'क' वर्ग के राज्यों के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में लागू होते हैं। जो उच्च न्यायालय इन राज्यों में से किसी राज्य के सम्बन्ध में संविधान लागू होने से पूर्व कार्य करते रहे हैं, वे वैसे ही कार्य करते रहेंगे।

कुछ विचारणीय बातें—न्यायपालिका को निष्पक्ष और स्वतंत्र अर्थात् कार्यपलिका के हस्तक्षेप से मुक्त तो होना ही चाहिए, इसके अतिरिक्त ये बातें आवश्यक हैं—(१) न्याय प्राप्त करना ऐसा खर्चीला, और कष्टसाध्य न हो कि वह सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर हो। वह काफी सस्ता होना चाहिए। (२) नैयायिक कार्यवाही में बहुत अधिक समय लगने से अनेक बार उसका उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। इसलिए यह कार्य जल्दी होने की व्यवस्था होनी चाहिए। (३) अपराध को केवल कानून की दृष्टि से ही नहीं, मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। आखिर, कानून भी लोकहित के लिए ही है। इस सम्बन्ध में हमने विस्तार-पूर्वक विचार अपनी 'अपराध-चिकित्सा' पुस्तक में किया है।

अठारहवाँ अध्याय

राज्यों का संघ से सम्बन्ध

संघात्मक शासन-प्रणाली वाले देश में संघ-सरकार और राज्यों की सरकार के अधिकार बँटे हुए होते हैं। उनके आपस के सम्बन्ध अधिकार-विभाजन के आधार पर होते हैं। ये सम्बन्ध चार प्रकार के हैं :—

१—विधायी सम्बन्ध।

२—शासकीय सम्बन्ध।

३—नैयायिक सम्बन्ध।

४—वित्तीय सम्बन्ध।

इन पर क्रमशः विचार किया जाता है। यद्यपि 'ग' वर्ग के कुछ राज्यों में अब विधान-सभाएँ और मन्त्रिपरिषदें स्थापित हो गयी हैं, ये राज्य विशेषतः राष्ट्रपति द्वारा ही शासित हैं। इस प्रकार आगे की बातें 'क' और 'ख' वर्ग के (स्वायत्त) राज्यों से ही सम्बन्धित हैं, इनमें से भी कश्मीर के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।

विधायी सम्बंध

संघीय संविधान में यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि किन-किन विषयों पर संघ सरकार विधि-निर्माण करेगी और किन-किन विषयों पर राज्यों की सरकार। साधारणतया इन अधिकारों के विभाजन की दो व्यवस्थाएँ अपनायी जाती हैं। पहली व्यवस्था में कुछ विशेष अधिकार संघ को दे दिये जाते हैं और शेष विषयों पर राज्यों की सरकार विधि बनाने की अधिकारी होती है। दूसरी व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ निश्चित विषयों पर विधि बनाने का अधिकार राज्यों को, और शेष सब विषयों पर संघ को होता है। भारत में, अधिकांश में दूसरी व्यवस्था अपनायी गयी है। यहाँ शक्ति-वितरण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि जो विषय सम्पूर्ण भारत के लिए महत्व के हैं, वे संघ-

सूची में दिये गये हैं; जिन विषयों का महत्व केवल प्रादेशिक है, वे राज्य-सूची के अन्तर्गत किये गये हैं। जो विषय दोनों के महत्व के हैं, या जो वैसे तो प्रादेशिक महत्व के हैं, परन्तु जिनके सम्बन्ध में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विभिन्न राज्यों में उनकी व्यवस्था सार्वजनिक दृष्टि से एकसी हो, वे समवर्ती सूची में रखे गये हैं। जो विषय इन सूचियों में नहीं आये हैं, उन्हें अवशिष्ट विषय कहा गया है, और वे संघ के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। उनपर विधि-निर्माण करने का अधिकार संसद को है।

उपर्युक्त तीनों सूचियों का परिचय पहले दिया जा चुका है। संघ-सूची में ७४, राज्य-सूची में ६६ और समवर्ती सूची में ४७ विषय हैं। इन बड़ी-बड़ी संख्याओं से ही यह स्पष्ट है कि इन सूचियों का निर्माण बहुत सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है। कुछ विशेष दशाओं में, तथा राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन स्थिति की घोषणा की जाने पर, राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को कहाँ तक प्राप्त हो जाता है, यह पहले बताया जा चुका है। निदान, संविधान के अनुसार कानून-निर्माण में संसद की सत्ता सर्वोपरि है; शक्तियों का केन्द्रीकरण बहुत अधिक है। राज्यों के अधिकार बहुत सीमित हो गये हैं।

हाँ, संविधान का पालन करते हुए संघ और ('क' तथा 'ख' वर्ग के) राज्यों का अपने-अपने क्षेत्र में प्रभुत्व है। संसद और राज्यों के विधान-मंडल एक-दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकते; यदि वे ऐसा करें तो न्यायपालिका उनके कार्य को अवैध घोषित कर देगी।

शासकीय सम्बन्ध

संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस भाँति करे कि संसद की विधियों का, तथा संसद द्वारा निर्मित जो विधि उस राज्य में लागू हों उनका, उचित रीति से पालन हो सके और उसके कारण सङ्घ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में किसी प्रकार व्याघात या बाधा उपस्थित न हो। सङ्घ इस सम्बन्ध में राज्यों को आवश्यक आदेश दे सकेगा। वह राष्ट्रीय महत्व के आवागमन के साधनों के निर्माणतथ

उनकी रक्षा करने के लिए और राज्य की सीमाओं के अन्दर रेलों की रक्षा के लिए भी राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सकेगा। इन निर्देशों के पालन में राज्य को जो अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा, वह सङ्घ-सरकार देगी।

राष्ट्रपति, राज्य की सरकार की अनुमति से, और संसद विधि बनाकर राज्य के कर्मचारियों को सङ्घ-सरकार के किसी भी काम को करने का आदेश दे सकती है। इस प्रकार के आदेशों के पालन में राज्य को जो भी अतिरिक्त धन-व्यय करना होगा उसे सङ्घ-सरकार देगी।

रियासतों के पास संविधान आरम्भ होने से पहले जो सेनाएँ थीं, वे उनके पास उस समय तक बनी रहेंगी, जब तक संसद विधि द्वारा उनकी कोई दूसरी व्यवस्था न कर दे। ऐसी सभी सेनाएँ भारतीय सेना का अङ्ग समझी जायँगी, उन पर सङ्घ-सरकार का नियन्त्रण रहेगा।

भारत की सीमा के बाहर के प्रदेशों पर उनकी सरकारों के साथ समझौता करके, सङ्घ का क्षेत्राधिकार बढ़ाया जा सकता है।

संसद को अन्तर्राज्यिक नदियों या नदी की घाटियों के सम्बन्ध में उठने वाले झगड़ों को निपटाने के लिए विधि बनाने का अधिकार है। वह चाहे तो विधि बनाकर उच्चतम न्यायालय और अन्य न्यायालयों को ऐसे झगड़ों के विषय में निर्णय देने से अलग कर सकती है।

यदि विभिन्न राज्यों के मध्य अथवा राज्यों और सङ्घ के मध्य ऐसे विषयों में कोई झगड़े उठें, जिनमें सामान्य हित हो, तो राष्ट्रपति को उनकी जाँच करने तथा उन पर सिफारिश करने के लिए एक अन्तर्राज्यिक परिषद बनाने का अधिकार है।

राज्यों को जो निर्देश समय-समय पर दिये जायेंगे; उनका पालन यदि समुचित रीति से नहीं हुआ तो राष्ट्रपति इसका अर्थ यह समझेगा कि राज्य में वैधानिक शासन असफल हो गया है और वह संकटकालीन घोषणा द्वारा राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में लेगा।

इस भाँति यह स्पष्ट ही है कि स्वायत्त अर्थात् क और ख वर्ग के राज्यों को अपने क्षेत्र में पूर्ण अधिकार होते हुए भी संघ-सरकार को राज्यों के प्रशासन क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के अवसर हैं। 'ख' वर्ग के राज्यों पर संविधान

लागू होने के १० वर्ष पर्यन्त सङ्घ-सरकार का प्रशासकीय विषयों में नियंत्रण रहेगा; केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशों का प्रशासन तो वह स्वयं करेगी ही। इस प्रकार संघ की कार्यपालिका शक्ति की प्रधानता स्पष्ट है।

नैयायिक सम्बन्ध

सङ्घ तथा प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक कार्यों, लेख-पत्रों तथा न्याय सम्बन्धी कार्रवाइयों को भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में पूर्ण मान्यता प्राप्त होगी। इनके प्रमाणित करने की रीति और शर्तों का, तथा इनके प्रभाव का निश्चय संसद के कानून द्वारा किया जायगा। भारत के किसी भी राज्य के दीवानी न्यायालयों के अंतिम निर्णयों या आदेशों पर देश भर में अमल कराया जा सकेगा।

वित्तीय सम्बन्ध

अब संघ और राज्य के वित्तीय और धन विषयक सम्बन्धों को लें। इस प्रसंग में संचित निधि और आकस्मिक निधि का आशय जान लेना चाहिए।

संचित और आकस्मिक निधि—भारत सरकार की जो आय होगी या वह जो ऋण लेगी, वह भारत की संचित निधि होगी। इसी प्रकार किसी राज्य की सरकार की आमदनी और कर्ज की रकमें उस राज्य की संचित निधि होगी।

[संघ-सरकार अथवा राज्य-सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सब रकमें क्रमशः भारत के या राज्य के लोक-लेखों (सार्वजनिक हिसाब) में जमा की जायँगी।]

संचित निधि से जो द्रव्य खर्च किया जायगा, वह जन-प्रतिनिधियों (विधान-मंडल) की स्वीकृति से ही किया जायगा।

यदि कभी संघ या राज्य को ऐसे समय कुछ व्यय तुरन्त ही खर्च करने की आवश्यकता हो, जब संसद या विधान-सभा का अधिवेशन न हो रहा हो तो उसके लिए यह व्यवस्था की गयी है कि संसद या राज्यों द्वारा 'आकस्मिक निधि' की स्थापना कर सकेंगे। भारत की और राज्यों की आकस्मिक निधियां अलग-अलग होंगी। ये निधियाँ राष्ट्रपति, राज्यपाल और राजप्रमुख के हाथ

में रहेंगी। इन्हें अधिकार होगा कि भूकम्प, बाढ़ या अकाल आदि के आकस्मिक कार्यों के लिए इस धन-राशि में से खर्च करने की मन्जूरी दें।

आय के समस्त साधन केन्द्र और स्वायत्त राज्यों के बीच में बाँट दिये गये हैं। राज्यों को जो आय के साधन दिये गये हैं, उनकी आय उन्हीं के पास रहेगी, परंतु संघ को जो साधन दिये गये हैं, उनमें से कुछ की कुल आय या उसका निश्चित भाग राज्यों को दिया जायगा या दिया जा सकेगा।

संघ-सरकार के आय के साधन—संघ सरकार की आय के मुख्य-मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—आयकर; (शराब-अफीम, भाँग आदि मादक द्रव्यों को छोड़कर) देश में उत्पन्न होनेवाली तम्बाकू तथा अन्य वस्तुओं पर उत्पत्ति कर; (कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य) सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर; रेल के किराये पर कर, तथा रेल या समुद्र या वायु से ले जायी जाने वाली वस्तुओं या यात्रियों पर बीमा-कर; स्टाक एक्सचेंज और वादा बाजार के सौदों पर कर, और स्टाम्प-ड्यूटी (चेक, बीमा-पत्र, ऋण-पत्र आदि पर।)

स्वायत्त राज्यों की आय के साधन—राज्यों को जो आय के साधन दिये गये हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य ये हैं—भूमि-कर; कृषि-आय पर कर; कृषि-भूमि के उत्तराधिकार पर कर; कृषि-भूमि पर सम्पत्ति कर; भूमि और भवनों पर कर; खनिज अधिकार पर कर; मानव उपयोग के लिए बनायी जाने वाली शराब, अफीम, भाँग तथा अन्य मादक द्रव्यों पर कर; किसी स्थानीय क्षेत्र में प्रवेश करने वाली विक्रययोग्य वस्तुओं पर कर; विद्युत शक्ति के उपयोग या विक्रय पर कर; समाचार-पत्रों को छोड़कर वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर कर; समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर; सड़कों तथा अन्तर्देशीय जलपथों पर ले जाये जाने वाले यात्रियों तथा वस्तुओं पर कर; सवारियों, पशुओं और नौकाओं पर कर; वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर; पथ-कर ('टोल'); तथा मुद्रांक-शुल्क, आय-कर तथा अन्य करों की आमदनी में से संघ सरकार की ओर से मिलने वाले भाग आदि।

संघ तथा राज्यों में आय का वितरण—१—निम्नलिखित कर संघ की ओर से लगाये जायँगे, परन्तु उन्हें राज्य की सरकार वसूल करेगी और अपने लिए ही खर्च करेगी—मुद्रांक (स्टाम्प) शुल्क, तथा दवाइयों और शृंगार की वस्तुओं पर लगने वाला उत्पत्ति-कर।

२—निम्नलिखित कर संघ द्वारा लगाये जायँगे और वसूल किये जायँगे परन्तु इन मदों से प्राप्त समस्त आय संसद द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, जिन राज्यों में वे कर वसूल किये जायेंगे, उन्हीं में बाँट दी जायगी—(१) कृषि-सम्पत्ति को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर उत्तराधिकार कर; (२) कृषि-सम्पत्ति को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर कर (३) रेल, समुद्र तथा वायुमार्ग से ले जाये जाने वाले यात्रियों तथा वस्तुओं पर सीमा कर (४) रेल किराये पर कर (५) श्रेष्ठिचत्वर (स्टाक ऐक्सचेंज) और वादा-बाजार पर कर (६) समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।

३—कृषि-आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर संघ-सरकार लगायेगी और वसूल करेगी परन्तु उससे होने वाली आमदनी को राष्ट्रपति निश्चित विधि द्वारा स्वायत्त राज्यों और संघ के बीच वितरण करेगा।

[केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्यों से प्राप्त आमदनी संघ की ही होगी और उसका कोई विभाजन नहीं किया जायगा।]

अनुसूचित तथा आदिम जातियों के हितार्थ संघ-सरकार द्वारा अनुमोदित योजनाओं पर राज्यों का जो व्यय होगा उसे संघ सरकार देगी। इसी भाँति आसाम के स्वायत्त जिलों के शासन की उन्नति के लिए जो व्यय होगा, उसे भी संघ-सरकार देगी। इसके अतिरिक्त आसाम के स्वायत्त जिलों के शासन में पहले दो वर्षों की औसत आमदनी से अधिक जो व्यय होगा उसे भी संघ-सरकार देगी।

संसद को अधिकार है कि वह सहायता के रूप में उन राज्यों को केन्द्रीय आय में से अनुदान देना स्वीकार करे, जिन्हें वह इस सहायता के योग्य समझे।

बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा ऐसे राज्य हैं, जिनसे पटसन, या पटसम की बनी हुई चीजें निर्यात की जाती हैं। ऐसे निर्यात पर निर्यात-कर संघ द्वारा वसूल किया जायगा। इस से जो आमदनी होगी, उसका एक भाग उन राज्यों को दिया जायगा; इसका निर्णय राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर करेगा। इस मद की रकमें उपर्युक्त राज्यों को दस वर्ष तक ही दी जायँगी। यदि इससे पूर्व निर्यात-कर समाप्त कर दिया गया तो ये रकमें भी बन्द कर दी जायँगी।

'ख' वर्ग के राज्यों से समझौते—उपरोक्त वित्त सम्बन्धी व्यवस्था समस्त स्वायत्त राज्यों के लिए है। परन्तु 'ख' वर्ग के राज्यों के सम्बन्ध में संविधान ने प्रथम दस वर्ष के लिए सङ्घ-सरकार को निम्नलिखित विषयों में समझौता करने का अधिकार दिया है :—

[१] उस राज्य में संघ-सरकार द्वारा लगाये जाने वाले किसी कर को लगाना, उसे वसूल करना और उससे होने वाली आमदनी का वितरण।

[२] यदि किसी राज्य की आय का कोई साधन सङ्घ-सरकार को मिल गया है तो उससे होने वाली हानि की पूर्ति के लिए संघ की ओर से आर्थिक सहायता।

[३] उस राज्य की ओर से राज्यों के निजी खर्च के लिए संघ को दिया जाने वाला धन।

राष्ट्रपति को अधिकार है कि यदि वित्त-आयोग सिफारिश करे कि यह व्यवस्था आवश्यक नहीं है तो वह दस वर्ष से पहले भी (पाँच वर्ष के बाद) उस समझौते में परिवर्तन कर दे या उसे समाप्त कर दे।

वित्त-आयोग—संविधान आरम्भ होने के दो वर्ष के अन्दर और उसके पश्चात प्रति पाँच वर्ष के बाद राष्ट्रपति एक वित्त-आयोग की नियुक्ति करेगा। उसमें एक सभापति और चार सदस्य रहेंगे। सदस्यों की योग्यता संसद निश्चित करेगी। आयोग का कार्य राष्ट्रपति से निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में सिफारिश करना है—[१] संघ तथा राज्यों के बीच वितरण-योग्य करों की आमदनी का वितरण [२] संघ द्वारा राज्यों को सहायता देने के सिद्धान्त [३] 'ख' वर्ग के राज्यों के साथ किये गये आर्थिक समझौतों में परिवर्तन तथा

[४] अन्य कोई ऐसा अर्थ सम्बन्धी विषय जिसके सम्बन्ध में राष्ट्रपति उससे परामर्श चाहे।

राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशें तथा उन सिफारिशों के आधार पर किये हुए कामों का विवरण संसद के सामने पेश करेगा।

आयकर का बँटवारा—अक्तूबर १६५१ में नियुक्त वित्त-आयोग ने आयकर का निम्नलिखित प्रतिशत भाग विविध राज्यों को दिये जाने की सिफारिश की—

बम्बई १७·५०; उत्तर प्रदेश १५·७५; मद्रास १५·२५; पश्चिमी बंगाल ११·२५; बिहार ६·७५; मध्यप्रदेश ५·२५; पंजाब ३·२५; उड़ीसा ३·५०; हैदराबाद ४·५०; मध्यभारत १·७५; मैसूर २·२५; पेप्सू ०·७५; राजस्थान ३·५०; सौराष्ट्र १·००; त्रावनकोर-कोचीन २·५०; आसाम २·२५।

पटसन-निर्यात कर का बँटवारा—पटसन के निर्यात-कर से होने वाली आय इस प्रकार विभाजित होगी—

पश्चिमी बंगाल १ करोड़ ५० लाख रु०; आसाम ७५ लाख रु०; बिहार ७५ लाख रु०; उड़ीसा १५ लाख रु०।

कुछ उपबंध—संविधान द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि संघ और राज्यों की संपत्ति पर तथा उसकी बिक्री और खरीद पर एवं राजाओं को दी जाने वाली धन-राशि पर कोई भी कर नहीं लगेगा।

संघ की सम्पत्ति, जब तक संसद कोई अन्य व्यवस्था न कर दे, स्वायत्त राज्य के समस्त करों से मुक्त रहेगी। उसी भाँति स्वायत्त राज्यों की भी संपत्ति संघ के कर से मुक्त होगी। परन्तु इससे संघ को स्वायत्त राज्य द्वारा संचालित किसी भी व्यापार पर कर लगाने में कोई बाधा उपस्थित न होगी, जब तक संसद उस व्यापार को सरकार के कार्यों में से ही एक न समझे।

स्वायत्त राज्यों की किसी भी विधि द्वारा किसी वस्तु की बिक्री या खरीद पर कर न लगाया जा सकेगा, यदि ऐसी बिक्री या खरीद [अ] उस राज्य के बाहर हुई हो, अथवा [आ] आयात-निर्यात के रूप में भारत में अथवा

भारत से बाहर हुई हो। इसके साथ ही, कोई राज्य किसी वस्तु की खरीद या बिक्री पर कर न लगा सकेगा, यदि यह खरीद या बिक्री अन्तर्राज्यी व्यापार के सिलसिले में हुई हो। संसद विधि बनाकर इसमें परिवर्तन कर सकती है।

राज्य की ऐसी कोई भी विधि वैध न समझी जायगी जो किसी ऐसी वस्तु की खरीद या बिक्री पर कर लगाती हो, जो संसद द्वारा जनता के जीवन के लिए आवश्यक ठहरा दी गयी हो। हाँ, ऐसी विधि उस दशा में वैध समझी जा सकेगी, जब उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो जाय।

राजाओं का निजी व्यय—यदि किसी रियासत के राजा को समझौते के रूप में भारत सरकार द्वारा निजी खर्च की कुछ निश्चित कर-मुक्त धन-राशि देने का वचन दिया गया है, तो उस पर कोई भी कर नहीं लिया जायगा। यह धन-राशि भारत की संचित निधि से अनिवार्य रूप से दी जायगी, उस पर संसद का मत नहीं लिया जायगा। यदि कोई रियासत किसी स्वायत्त राज्य के बीच में आगयी है तो वह राज्य उसके निजी व्यय की रकम देगा—जब तक के लिए राष्ट्रपति आदेश करे।

संघ-सरकार तथा राज्यों की सरकार का व्यय—संघ-सरकार की व्यय की मुख्य-मुख्य मदें निम्नलिखित हैं—(१) थल, जल और नभ की सेनाओं पर व्यय (२) संघीय ऋण पर व्याज (३) केन्द्रीय शासन व्यय (४) डाकखाना, तार, टेलीफोन (५) पेन्शन (६) कर्ज का भुगतान (७) राज्यों की सहायता (८) विकास की योजनाएँ (६) रेल।

राज्यों के खर्च की मुख्य मदें ये हैं—(१) पुलिस और जेल (२) शिक्षा (३) कृषि उन्नति (४) सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा (५) स्थानीय स्वराज्य (६) अस्पताल (७) राज्यों के सार्वजनिक ऋण का व्याज (८) राज्य-शासन-व्यय आदि।

ऋण सम्बन्धी व्यवस्था—संघ-सरकार को अधिकार है कि वह निर्धारित सीमाओं के अन्दर भारत की संचित निधि की जमानत पर ऋण ले ले। सघ-सरकार राज्यों को ऋण दे सकती है और उसके ऋणों की गारन्टी भी दे सकती है। किन्तु जब तक किसी राज्य पर संघ-सरकार का ऋण हो या

कोई ऐसा ऋण न चुक पाया हो, जिसकी जमानत संघ-सरकार ने दी हो, वह राज्य संघ-सरकार की स्वीकृति के बिना ऋण नहीं ले सकेगा।

वित्त-व्यवस्था की आलोचना—इस व्यवस्था में कुछ दोष हैं। संघीय वित्त-व्यवस्था सिद्धान्त से ऐसी होनी चाहिए जिसमें प्रत्यक्ष कर राज्यों को और अप्रत्यक्ष कर संघ को मिलने चाहिएँ, परन्तु इस व्यवस्था में ऐसा नहीं हुआ है।

राज्यों की आमदनी के साधन पर्याप्त और स्वतंत्र नहीं हैं और उन्हें इसी कारण संघ की ओर से सहायता देने की व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार उनकी आर्थिक स्वतंत्रता घट गयी है, क्योंकि उन्हें केन्द्र की सहायता पर आश्रित रहना होता है। केन्द्र यथेष्ट आर्थिक सहायता देने में समर्थ नहीं है। इससे राज्यों को कठिनाई का अनुभव होता है। यह भी विचारणीय है कि राष्ट्र-निर्माण-कार्यों और विकास का उत्तरदायित्व राज्यों पर है, और जिन श्रोतों की आय बढ़ने वाली है, वे केन्द्र के अधीन हैं। हाँ, देश की आर्थिक अवस्था की यथेष्ट जांच हो जाने पर इस व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन आसानी से हो सकता है।

———

उन्नीसवाँ अध्याय

आदिम जातियों और हरिजनों का शासन*

यह नहीं हो सकता कि आप तो आधुनिक जगत के नवीनतम साधनों और उपकरणों का भोग करें, और ये बेचारे आदिवासी उन सुख-साधनों से वञ्चित रहें।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

निश्चय ही न तो मताधिकार, न धारा सभाएँ, न डालर और स्टर्लिङ्ग क्षेत्र से आने वाली वस्तुएँ उनके लिए लुभावनी हैं। उनकी माँग तो केवल इतनी है कि क्यों न अब अधिक स्कूल, अस्पताल, पीने के पानी के कुएँ, सिंचाई के लिए अधिक नहरें और अधिक विद्युत शक्ति दी जाय।

—ठक्कर बापा

आदिम जातियों की उपेक्षा—भारतीय जनता में हरिजन और आदिम जातियाँ बहुत ही उपेक्षित रही हैं। हरिजन तो अन्य लोगों से साथ गांवों और नगरों में रहते थे, इस लिए उनकी दशा सर्व-साधारण से छिपी नहीं रही। क्रमशः उनमें सुधार हुआ, चाहे उसकी गति मन्द ही रही। पर आदिम जातियों के बहुत से आदमी तो अन्य भारतीय जनता के सम्पर्क में ही नहीं आये। इन जातियों में लगभग दो करोड़ भारत-सन्तान की गणना है। ये अधिकांश में बिहार, उड़ीसा, आसाम, मध्यप्रदेश, मद्रास तथा राजस्थान में निवास करती हैं। इन जातियों की कुल संख्या ३०० के लगभग

---

*इस अध्याय में आदिम जातियों और हरिजनों से हमारा अभिप्रायः उन लोगों से है जिन्हें संविधान में क्रमशः अनुसूचित जन-जातियाँ ('शेड्यूल्ड ट्राइब्स्') और अनुसूचित जातियाँ (शेड्यूल्ड कास्ट्स') कहा गया है।

है। ये प्रायः पहाड़ी हैं एवं बन-प्रदेशों में गंवारू ढङ्ग से रहती हैं। कुछ आदमी शिकार करके, कुछ कृषि करके तथा कुछ शहरों के निकट होने पर मजदूरी आदि करके जीवन-निर्वाह कर लेते हैं। इन जातियों को राष्ट्रीय जीवन में समुचित स्थान देने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुआ। ब्रिटिश सरकार ने इसकी घोर उपेक्षा की; यही नहीं, उसने ईसाइयों को छोड़कर अन्य कार्य-कर्ताओं का उनसे सम्पर्क नहीं होने दिया और ईसाई मिशनारियों ने जो कार्य किया वह खासकर अपने धर्म का प्रचार करने के लिए किया। हाँ, पीछे श्री ठक्कर बापा ने आदिवासियों की सेवा व उद्धार का प्रशंसनीय कार्य किया। आप के तत्वावधान में देहली में इनकी उन्नति के लिए भारतीय आदिम जाति के सेवक संघ की स्थापना भी हुई। अब तो और भी कई संस्थाएँ इस दिशा में अच्छा कार्य कर रही हैं। इन जातियों तथा इनमें कार्य करने वालों का, तथा जो काम हो रहा है या होने की आवश्यकता है, उसका परिचय हमारी 'हमारी आदिम जातियाँ' पुस्तक में दिया गया है।

ये जातियाँ और नया संविधान—नये संविधान ने सरकार पर इन जातियों की भलाई के लिए विशेष प्रयत्न करने की जिम्मेवारी डाली है। उसके अनुसार केन्द्रीय सरकार प्रति वर्ष एक विशेष रकम इस कार्य में खर्च करती है, [यह रकम सन् १९५२ में दो करोड़ रुपये निश्चित की गयी थी]। वह राज्य-सरकारों को इस विषय में विशेष आदेश दे सकती है। इन जातियों को संसद तथा राज्य-विधान-सभाओं में विशेष प्रतिनिधित्व और नौकरियों में विशेष संरक्षण दिया गया है। इन जातियों की उन्नति सम्बन्धी कार्य को संगठित करने के लिए सरकार ने एक विशेष पदाधिकारी (कमिश्नर) भी नियुक्त कर रखा है।

भारतीय संविधान ने इन्हें अन्य देश-बंधुओं की समानता के स्तर पर लाने के वास्ते इन संरक्षणों की अवधि निश्चित की गयी है। अनुसूचित जन-जातियों और अनुसूचित क्षेत्रों के शासन के लिए विशेष उपबन्धों की रचना की गयी है, ये समस्त उपबन्ध आसाम राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं होंगे।

अनुसूचित जन-जातियाँ और क्षेत्र—प्रत्येक राज्य की अनुसूचित जन-जाति और अनुसूचित क्षेत्र वे होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति ऐसा होना घोषित करे। वह इस घोषणा में समय-समय पर परिवर्तन भी कर सकेगा। अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन के लिए राज्य की कार्यपालिका संघ की कार्यपालिका के नियंत्रण में रहेगी। राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख को इन क्षेत्रों में शान्ति और सुव्यवस्था रखने के लिए नियम बनाने का अधिकार होगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह संघ और राज्य की, इन क्षेत्रों पर लगाने वाली विधियों में परिवर्तन कर सकेगा। ये नियम राष्ट्रपति की अनुमति के बगैर लागू न हो सकेंगे। संघ की कार्यपालिका को भी इन क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में विशेष निर्देश देने का अधिकार होगा, राज्य का कर्तव्य होगा कि उन निर्देशों का पूर्णतः पालन करे।

आदिम जाति मंत्रणा परिषद—प्रत्येक ऐसे राज्य में जिसमें अनुसूचित क्षेत्र हैं, एक 'आदिम जाति मंत्रणा-परिषद' होगी। राष्ट्रपति ऐसे राज्यों में भी ऐसी परिषद स्थापित कर सकेगा, जिनमें अनुसूचित जन-जातियाँ तो हों परन्तु अनुसूचित क्षेत्र नहीं होंगे। इस परिषद में २० से अधिक सदस्य नहीं होंगे। इसके तीन-चौथाई सदस्य राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जन-जाति के प्रतिनिधि सदस्य होंगे। यदि अनुसूचित जन-जातियों के प्रतिनिधि विधान-सभा में उतने नहीं होंगे, जितने आदिम जाति मंत्रणा-परिषद के रिक्त स्थानों की पूर्ति कर सकें तो वे स्थान अन्य जन-जातियों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जायँगे। इस परिषद का कार्य राज्य में आदिम जातियों के सुधार व जन-कल्याण सम्बन्धी ऐसे विषयों में परामर्श देना है, जिन्हें राज्यपाल या राजप्रमुख उसके पास भेजेगा। राज्यपाल या राजप्रमुख परिषद के सदस्यों की संख्या, उनकी और परिषद के अध्यक्ष की नियुक्ति की पद्धति तथा उसके अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति और कार्यविधि आदि के नियम बनायेगा।

संसद को अधिकार है कि वह उपर्युक्त उपबन्धों में परिवर्तन कर दे।

आदिम जातियों की उन्नति की योजना—राष्ट्रपति को स्वायत्त राज्यों की आदिम जातियों एवं उनके क्षेत्रों की उन्नति के लिए आदेश देने का अधिकार है। संघ सरकार इन क्षेत्रों की उन्नति के लिए विशेष योजना भी बनायेगी, जिससे कालान्तर में शासन की दृष्टि से ये क्षेत्र स्वायत्त राज्यों के समान स्तर पर आ जायँ। इन आदेशों का पालन करने और योजनाओं को अमल में लाने में जो विशेष व्यय होगा, वह संघ-सरकार देगी। संघ-सरकार आदिम जातियों के क्षेत्र वाले राज्यों की उन्नति के लिए विशेष अनुदान सहायता के रूप में प्रदान करेगी।

बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा के राज्यों की मंत्रिपरिषद में एक-एक मंत्री आदिम जातियों की उन्नति और देख-भाल के लिए रहेगा।

आयोग की व्यवस्था—राष्ट्रपति कभी भी स्वायत्त राज्यों में आदिम जातियों की रक्षा की जांच तथा उनकी कठिनाइयों की जांच-पड़ताल करने के लिए एक कमीशन या आयोग नियुक्त करेगा। यह आयोग उनकी अवस्था में सुधार तथा तत्सम्बन्धी आर्थिक सहायता के लिए सिफारिशें करेगा। यह अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देगा और वह उसे संसद के सामने अपने स्मृति-पत्र के साथ प्रस्तुत करायेगा, जिसमें वह रिपोर्ट के सम्बन्ध में की गई कार्यवाही का उल्लेख करेगा।

आसाम राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहले भाग में निम्नलिखित छः स्वायत्त जिले हैं :—(१) संयुक्त खासी जयन्तियाँ पहाड़ी जिले (२) गारो पहाड़ी जिले (३) लुशाई पहाड़ी जिले (४) नागा पहाड़ी जिले (५) उत्तरी कचार पहाड़ी जिले (६) मिकिर पहाड़ी। राज्यपाल इन जिलों की हदें निश्चित कर सकता है और बदल सकता है और नये जिले भी बना सकता है। यदि एक ही जिले के अंतर्गत कई अनुसूचित जन-जातियाँ हों तो राज्यपाल उन क्षेत्रों को स्वायत्त क्षेत्रों में बाँट सकता है।

प्रत्येक स्वायत्त जिले के लिए एक जिला-परिषद होगी जिसमें २४ से अधिक सदस्य नहीं होंगे, जिनमें से तीन-चौथाई सदस्य वयस्क मत-

धिकार के आधार पर निर्वाचित किये जायेंगे। प्रत्येक स्वायत्त क्षेत्र के लिए एक प्रादेशिक परिषद होगी। जिला या प्रादेशिक परिषद अपने क्षेत्रों के लिए निम्नलिखित विषयों सम्बन्धी विधि बना सकेंगी :—(१) कृषि-भूमि, गोचर भूमि तथा निवास के लिए भूमि पर अधिकार या प्रयोग या प्राप्ति। इसमें सुरक्षित बन-भूमि शामिल नहीं है। (२) बन-प्रदेश का प्रबन्ध; (३) कृषि के लिए नहर के जल का प्रयोग। (४) झूम* प्रथा का नियम। (५) ग्राम व नगर-समितियों की स्थापना व उनके अधिकार। (६) ग्राम व नगर सम्बन्धी अन्य विषय; जैसे ग्राम-पुलिस; सार्वजनिक स्वास्थ्य; स्वच्छता। (७) ग्राम-सभाओं व न्यायालयों द्वारा मुकदमों की व्यवस्था। (८) जाति के प्रमुखों की नियुक्ति। (९) सम्पत्ति का उत्तराधिकार। (१०) विवाह। (११) अन्य सामाजिक रिवाज। परिषद द्वारा उपर्युक्त विषयों सम्बन्धी जो नियम बनाये जायँगे उन पर राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। अन्य विषयों में राज्यपाल को संसद द्वारा या विधान-मंडलों द्वारा इन प्रदेशों के लिए निर्मित उन विधियों में संशोधन करने का अधिकार होगा, जो इन पर लागू हों।

जिला और प्रादेशिक परिषदों को अपनी सीमा के अन्तर्गत मालगुजारी निर्धारित करने तथा उसके संग्रह करने का अधिकार होगा। जिला-परिषद को निम्नलिखित प्रकार के कर लगाने का अधिकार होगा—(क) व्यवसायों, व्यापार-उद्योग व धंधों पर कर (ख) पशु, सवारी या वाहन अथवा नौका पर कर (ग) बाजार में बिक्री के लिए आने वाली वस्तुओं पर कर तथा नौका द्वारा आने जाने वाली वस्तुओं व व्यक्तियों पर कर। (घ) विद्यालय, चिकित्सालय तथा राजपथों के निमित्त कर। इन करों के अतिरिक्त आसाम की सरकार को जिला-परिषदों के क्षेत्रों में स्थित खानों से जो रायल्टी प्राप्त होगी उसमें से परिषदों को भी, समझौते द्वारा निर्धारित भाग मिलेगा।

---

*आदिम जातियों के कुछ आदमी बरसात शुरू होने से पहले पेड़ों और झाड़ियों को काट कर जला देते हैं। फिर राख से ढकी हुई जमीन पर अनाज के दाने बखेर देते हैं। वर्षा के बाद कुदरती तौर पर कुछ पैदा हो जाता है। इसे 'झूम', 'पोडू', या 'बेवर' कहते हैं।

जिला-परिषदों एवं प्रादेशिक परिषदों को न्याय सम्बन्धी अधिकार भी होंगे। राज्यपाल जिला-परिषदों को व्यवहार संहिता (जाब्ता दीवानी) तथा दंड संहिता (जाब्ता फौजदारी) के अधीन प्रचलित विधियों के सम्बन्ध में मामले की सुनवाई के अधिकार दे सकेगा। जिला-परिषद एवं प्रादेशिक परिषद को अपने क्षेत्र में ग्राम-समितियाँ या ऐसे मामलों पर विचार करने वाले न्यायालय स्थापित करने का अधिकार होगा, जिनमें दोनों पक्ष आदिम जाति के हों। जिला-परिषदों को अपने क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा-शालाएँ, चिकित्सालय, बाजार, मीनशालाएँ, पशुशालाएँ, राजपथ आदि निर्माण करने तथा उनकी व्यवस्था करने का अधिकार होगा। राज्यपाल जब उचित समझे, राज्य में जिला-परिषदों के शासन-प्रबन्ध की जाँच के लिए एक आयोग नियुक्त करेगा। इस आयोग की रिपोर्ट राज्य की विधान सभा के सामने रखी जायगी।

आसाम के दूसरे भाग के अनुसूचित क्षेत्र निम्नलिखित है—(१) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त इलाका जिसके अन्तर्गत बालीपारा सीमान्त इलाका, तिराप सीमान्त इलाका, अबोर पहाड़ी जिला और मिसिमि पहाड़ी जिला भी हैं। (२) नागा आदिम जाति क्षेत्र। ये ऐसे क्षेत्र हैं जिनमे अभी तक कोई व्यवस्थित प्रशासन नहीं है। यहाँ इस युग में भी मनुष्यों का शिकार किया जाता है। इस प्रदेश का शासन-कार्य राज्यपाल, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि रूप में, चलायेगा। उसे मन्त्रिपरिषद का परामर्श मानना आवश्यक न होगा।

आसाम के अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन—आसाम के अनुसूचित क्षेत्रों की प्रशासन व्यवस्था अन्य राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों से पृथक् की गयी है; कारण उनके निवासियों की अपनी एक अलग ही संस्कृति है, उस पर हिन्दुओं का ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा, जैसा देश के अन्य भागों की अनुसूचित जातियों पर पड़ा है।

आदिम जातियों और हरिजनों का विधान-मंडलों में प्रतिनिधित्व—भारतीय संसद के ४९७ सदस्यों में से इस समय ७२ अनुसूचित जातियों के तथा २६ आदिम जातियों के प्रतिनिधि हैं और विभिन्न राज्यों में

विधान-सभाओं के सदस्यों में पौने पाँच सौ हरिजन तथा लगभग दो सौ अन्य पिछड़ी जातियों के प्रतिनिधि हैं। केन्द्र और राज्यों में मिलाकर लगभग १५ मन्त्री भी इन जातियों के हैं।

आगे नक्शे में यह दिखाया जाता है कि लोक-सभा तथा राज्य-विधान-सभाओं में इन जातियों के लिए विविध राज्यों के कितने-कितने स्थान (दस वर्ष के वास्ते) निर्धारित हैं।

राज्य	लोक सभा			विधान सभाएँ		
	कुल सदस्य	आदिम जातियों के सदस्य	हरिजन सदस्य	कुल सदस्य	आदिम जातियों के सदस्य	हरिजन सदस्य
[क वर्ग]						
१. आसाम	१२	२	१	१०८	२७	५
२. बिहार	५५	६	७	३३०	३५	४४
३. बम्बई	४५	४	४	३१५	२६	२७
४. मध्यप्रदेश	२६	३	४	२३२	२७	३२
५. मद्रास (आंध्र सहित)	७५	१	१२	३७५	४	६२
६. उड़ीसा	२०	४	३	१४०	२८	२१
७. पंजाब	१८	०	३	१२६	०	२१
८. पश्चिमी बंगाल	३४	२	६	२३८	१२	४०
९. उत्तर प्रदेश	८६	०	१७	४३०	०	८३
[ख वर्ग]						
१. जम्मू-कश्मीर	६	०	०	०	०	०
२. हैदराबाद	२५	०	४	१७५	२	३१
३. मध्य भारत	११	१	२	९९	१२	१७
४. मैसूर	११	०	२	९९	०	१९
५. राजस्थान	२०	१	२	१६०	५	१६
६. सौराष्ट्र	६	०	०	६०	१	४
७. त्रावणकोर-कोचीन	१२	०	१	१०८	०	११
८. पेप्सू	५	०	१	६०	०	१०

राज्य	लोक सभा			विधान सभाएँ		
	कुल सदस्य	आदिम जातियों के सदस्य	हरिजन सदस्य	कुल सदस्य	आदिम जातियों के सदस्य	हरिजन सदस्य
[ग वर्ग]						
१. अजमेर	२	०	०	३०	०	६
२. भोपाल	२	०	०	३०	२	५
३. बिलासपुर	१	०	०	०	०	०
४. कुर्ग	१	०	०	२४	३	३
५. देहली	४	०	१	४८	०	६
६. हिमाचल प्रदेश	३	०	१	३६	०	८
७. कच्छ	२	०	०	०	०	०
८. मनिपुर	२	१	०	०	०	०
९. त्रिपुरा	२	०	०	०	०	०
१०. विन्ध्य प्रदेश	६	१	१	६०	६	६
[घ वर्ग]						
१. अन्दमान-निकोबार	१	०	०	०	०	०

बीसवाँ अध्याय

जिले का शासन

"जिलाधीश जिले के शासन का केन्द्र-बिन्दु है; वह जनता और सरकार के बीच की कड़ी है।"

राज्य के भाग—पहले बताया जा चुका है कि स्वायत्त राज्य का सर्वोच्च अधिकारी राज्यपाल (या राजप्रमुख) है, जो एक मंत्रिपरिषद् की सहायता से शासन-कार्य करता है। मन्त्रिपरिषद का काम केवल शासन-नीति निर्धारित करना और राज्य की उन्नति की योजना बनाना है। शासन-कार्य कई विभागों में बँटा होता है, और प्रत्येक मंत्री एक-एक या अधिक की देखरेख करता है। मंत्री के नीचे स्थायी सेक्रेटरी होता है, जो उक्त विभाग या विभागों का प्रबन्ध करता है। मंत्री के अधीन छोटे-बड़े अनेक कर्मचारी राज्य भर में काम करते हैं ये मन्त्रिपरिषद द्वारा निर्धारित शासन-नीति को अमल में लाते हैं। राज्य की शासन-नीति पर अच्छी तरह अमल कराने के लिए राज्यों को छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया है।

कमिश्नरियाँ—यहाँ मद्रास राज्य को छोड़कर प्रत्येक बड़े राज्य में चार-छः कमिश्नरियाँ हैं। कमिश्नरी के अफसर को कमिश्नर कहते हैं। वह शासन संबंधी कोई कार्य स्वयं नहीं करता, केवल जिला-अफसरों के काम की जाँच-पड़ताल करता है। जिलों से जो रिपोर्ट या पत्रादि राज्य-सरकार के पास जाते हैं, वे सब कमिश्नरों के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नरों को म्युनिसपेलटियों का काम देख-भाल के भी कुछ अधिकार हैं; परन्तु इनका विशेष सम्बन्ध मालगुजारी से रहता है, ये उसके बन्दोबस्त में सरकार को परामर्श देते हैं और विशेष दशा में उसे वसूल करने के कार्य को स्थगित करने

की सिफारिश हैं। ये माल के मुकदमों की अपील भी सुनते हैं। कमिश्नरियाँ विशेष आवश्यक नहीं समझी जातीं, इन्हें तोड़ने का प्रयत्न हो रहा है।

जिले; उनका क्षेत्रफल और जनसंख्या—प्रत्येक कमिश्नरी में एक या अधिक जिले हैं। इस प्रकार किसी राज्य में, खासकर 'ग' वर्ग के राज्यों में एक-दो ही जिले हैं और किसी में बहुत अधिक। उत्तरप्रदेश में तो जिलों की संख्या पचास से ऊपर है। यह संख्या समय-समय पर घटती-बढ़ती है। कभी मितव्ययिता के विचार से जिलों की संख्या घटाना आवश्यक समझा जाता है तो कभी कोई जिला शासन की दृष्टि से बहुत बड़ा मालूम होने पर उसका कुछ भाग अलग करके दूसरे जिले में मिला दिया जाता है, अथवा एक नया ही जिला बना दिया जाता है। देशी रियासतों की स्थिति बदलने और राज्यों का पुनस्संगठन होने से कुछ स्थानों में आवश्यकतानुसार जिलों की पुनर्रचना हुई है।

प्रत्येक जिले का औसत क्षेत्रफल चार हजार वर्गमील, तथा उसकी औसत मनुष्य-संख्या नौ लाख है; कोई जिला छोटा होता है, कोई बड़ा। इसी प्रकार किसी की आबादी कम है, किसी की बहुत अधिक। जिलों की सीमा निश्चित करने में प्रायः यह विचार रखा जाता है कि प्रत्येक जिले के शासक को मालगुजारी तथा प्रबन्धादि का काम बहुत-कुछ समान ही करना पड़े।

शासन-व्यवस्था में जिले का स्थान—राज्यों में शासन की इकाई जिला ही है। शासन की कल जैसी एक जिले में चलती दिखलायी पड़ती है, वैसी ही प्रायः अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं, वैसे ही दूसरों में भी। जनता के कामकाज का मुख्य स्थान और लोक-व्यवहार का केन्द्र जिला है। जो मनुष्य अन्य जिलों या राज्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें भी बहुधा अपने जिले के भिन्न-भिन्न स्थानों में, शासन या न्याय सम्बन्धी कुछ-न-कुछ काम पड़ जाता है। यहाँ के प्रबन्ध को देखकर जनसाधारण देश के राजप्रबन्ध का अनुमान किया करते हैं।

जिलाधीश का महत्व—प्रत्येक जिला एक जिलाधीश के अधीन होता है। अंग्रेजों के शासन-काल में उसका एक मुख्य कार्य मालगुजारी वसूल करना होने के कारण उसे साधारण बोलचाल में 'कलेक्टर' कहने लगे। कलेक्टर का अर्थ है, वसूल करनेवाला। (पूर्वी पंजाब, अवध और मध्यप्रदेश में वह डिप्टी कमिश्नर कहलाता है।)

जिले के लोगों के लिए जिलाधीश ही सरकार का प्रतिनिधि है। उच्च कर्मचारियों को वे भले ही न जानें, जिलाधीश से तो उन्हें काम पड़ता ही रहता है। इसी की योग्यता पर सरकार के नियमों से प्रजा का यथेष्ट लाभ होना अथवा न होना, निर्भर है; और, जैसा इसका बर्ताव रहता है, उसी से अधिकांश जन-समाज सरकार की नीति का अन्दाज लगाते हैं। यह जो कार्य करता है, उसे सरकार का कार्य कहा जाता ही। सरकार को बहुत-सी बातों का ज्ञान उतना या वैसा ही होता है, जैसा वह कराता है। इससे यह कहा जा सकता है कि वह सरकार का हाथ-मुँह ही नहीं, आँख-कान भी है। यह तो स्पष्ट ही है कि वह जनता और सरकार के बीच की कड़ी है, वह एक की बात दूसरे के सामने रखता है। जिले में अधिकारों के विचार से, वही सबसे बड़ा माना जाता है।

राजस्व या माल सम्बन्धी अधिकार—जिलाधीश को कई प्रकार के अधिकार होते हैं। उसका एक मुख्य कार्य जिले का राजस्व एकत्र करना है। इस कार्य के प्रसङ्ग में उसका संबंध जिले के गाँव-गाँव की जनता से होता है। वह मालगुजारी घटा-बढ़ा नहीं सकता; हाँ अकाल महामारी आदि संकट के समय वह राज्य की सरकार से उसे घटाने का अनुरोध कर सकता है।

मालगुजारी वसूल करने में कलेक्टर का संबंध किसानों से तथा उन सब लोगों से हो जाता है, जो किसी प्रकार खेती से संबंधित हों। भारतवर्ष में गाँवों का और खेती का विस्तार ध्यान में लाने से कलेक्टर के इस अधिकार-क्षेत्र का सहज ही अनुमान हो सकता है। किसानों को तकावी देने का काम उसी के द्वारा किया जाता है। वह माल (मालगुजारी) के बड़े-बड़े मामलों का फैसला करता है, और छोटे मामलों की अपील सुनता है।

न्याय और शान्ति सम्बन्धी अधिकार—जिलाधीश की संयुक्त उपाधि 'कलेक्टर-मजिस्ट्रेट' उसके डबल कार्य की बोधक है। कलेक्टर की हैसियत से किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख ऊपर किया गया है। जिला-मजिस्ट्रेट की हैसियत से वह जिले भर की छोटी अदालतों का निरीक्षण करता है। उसे अव्वल दर्जे की मजिस्ट्रेटी के अधिकार होते हैं, जिनसे वह एक अपराध पर साधारणतः दो साल तक की कैद और एक हजार रुपये तक जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार की सुख-शान्ति का वही उत्तरदाता है। वह स्थानीय पुलिस का निरीक्षण भी करता है। पुलिस उसकी आज्ञा मानती है। जुलूसों की व्यवस्था और दंगों का दमन करने में वह पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट की सलाह से काम करता है, और समय-समय पर आवश्यक आदेश जारी करता रहता है। वही पेट्रोल या बन्दूक आदि का लाइसेन्स देता है।

अन्य अधिकार—जैसा पहले कहा गया है, जिले में शासन सम्बन्धी कोई विभाग ऐसा नहीं है, जिसका जिलाधीश से संबंध न हो। वह सब का ही निरीक्षण या नियंत्रण करता है। उदाहरण के लिए स्थानीय आबकारी, स्टाम्प, ड्यूटी, जिला-कोष आदि भी उसी के अधीन हैं। यद्यपि जिले में राज्य-शासन के भिन्न-भिन्न विभागों के बड़े-बड़े पदाधिकारी, अपने-अपने विभागों की देखरेख के लिए रहते हैं—जैसे पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट, जेलों का सुपरिंटेन्डेन्ट, स्कूल इंस्पेक्टर, इंजीनियर; सिविल सर्जन, जंगलों के चीफ-कन्जरवेटर इत्यादि—तो भी इन सब विभागों की सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व जिलाधीश पर है। प्रत्येक विभाग का प्रधान अपने कार्यों के लिए स्वतन्त्र होते हुए भी अपने आप को उससे नीचे समझता है। जिलाधीश स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का भी निरीक्षण करता है। जिला-बोर्ड तथा म्युनिस्पेलटियाँ साधारणतया उसकी निगरानी में काम करती हैं। इस बात का निश्चय करने में, कि कहाँ पुल, सड़क इत्यादि बनने चाहिएँ, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए, तथा जिले के किन-किन भागों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। जिले में जो भी प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार करना, और हरेक बात की रिपोर्ट

उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। जिले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों में दौरा करना होता है।

इस प्रकार इतने भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य उसके सुपुर्द हैं कि उसके लिए उन सब को स्वयं भली प्रकार चलाना दुस्तर है। इसलिए बहुत से काम उसके अधीन कर्मचारी ही कर डालते हैं, और वह उनके कागजों पर हस्ताक्षर कर देता है। हाँ, सब कार्यों का उत्तरदाता वही होता है। आजकल सरकारी काम में कागजी कार्रवाई बहुत बढ़ गयी है, इससे जिलाधीश को जनता की वास्तविक दशा जानने के लिए, उससे सीधे सम्पर्क में आने का अवकाश बहुत कम मिलता है। वह प्रायः अपने अधीन कर्मचारियों की रिपोर्ट या कुछ खास-खास लोगों की बातों के आधार पर ही अपनी राय कायम कर लेता है।

शासन और न्याय का पृथक्करण—पहले बताया जा चुका है कि जिलाधीश को शासन सम्बन्धी अधिकार भी हैं, और न्याय सम्बन्धी भी। वह अपने जिले की शान्ति का उत्तरदाता है, इसलिए पुलिस पर उसका नियंत्रण रहता है। पुलिस उसे इस बात की सूचना देती रहती है कि जिले में किस-किस व्यक्ति का व्यवहार या आचरण उसकी दृष्टि से आपत्तिजनक है। जिस व्यक्ति को पुलिस अपराधी ख्याल करती है, उसकी गिरफ्तारी के लिए वह जिलाधीश की अनुमति ले सकती है, अथवा जिलाधीश चाहे तो वह भी किसी व्यक्ति को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करा सकता है। जब जिलाधीश ऐसे मुकदमों का फैसला करता है तो मानो वादी स्वयं ही न्यायाधीश बन जाता है। ऐसी दशा में न्यायकार्य स्वतन्त्रता-पूर्वक न होना, पुलिस की बात रखने का प्रयत्न होना और अभियुक्त के साथ अन्याय होना स्वाभाविक ही है। इसलिए यह आवश्यक है कि शासन और न्याय-कार्य पृथक्-पृथक् हों, जिलाधीश या उसके सहायक या अधीन पदाधिकारियों को मजिस्ट्रेट के अधिकार न रहें। फौजदारी मुकदमों का फैसला (दीवानी मुकदमों की तरह) मुन्सफी की अदालतों द्वारा हुआ करे; मुन्सिफ जिलाधीश के अधीन नहीं होते, वे स्वतन्त्रता-पूर्वक फैसला कर सकते हैं।

इससे यह भी लाभ होगा कि जिलाधीशों को अपने अन्य कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिक अवकाश मिलेगा। निस्सन्देह इस सुधार को अमल में लाने से खर्च कुछ अधिक होगा, परन्तु न्याय और जनहित के लिए वह आवश्यक है। अब राज्य-सरकारें क्रमशः इस सुधार को अमल में ला रही हैं। संविधान ने नीति निर्देशक तत्वों में राज्य को इस विषय का निर्देश भी किया है।

जिले के अन्य कार्यकर्त्ता—जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, यथा :—शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, मालगुजारी वसूल करना, रोगियों का इलाज करना, म्युनिसपल और लोकल बोर्डों की निगरानी, जेल-खाना और पाठशाला आदि का निरीक्षण करना इत्यादि। इन विविध कार्यों के लिए जिले में कई एक अफसर रहते हैं, जैसे पुलिस सुपरिंटेन्डन्ट, डिस्ट्रिक्ट-जज, मुन्सिफ, एक्जीक्यूटिव इंजिनयर, सिविल सर्जन, जेल-सुपरिंटेन्डन्ट, तथा स्कूल-इन्सपेक्टर आदि। ये अफसर अपने अलग-अलग विभागों के उच्च अधिकारियों के अधीन होते हैं, परन्तु शासन के विचार से जिला-जज और मुन्सिफ आदि नैयायिक अधिकारियों को छोड़कर, सब पर जिला-मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। 'जिले का हाकिम' वही कहा जाता है। उसके कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट रहते हैं।

जिले के कार्यकर्ताओं को कानून बनाने का अधिकार नहीं होता। इनका मुख्य काम यह है कि ये राज्य-सरकार के कानून को व्यवहार में लायें तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें; हाँ, कानून बनाने में अप्रकट रूप से इतना भाग इनका अवश्य रहता है कि इनकी रिपोर्ट के आधार पर सरकार स्थानीय परिस्थिति का अनुमान करती है, और तदनुसार कानून बनाती या सुधारती है।

जिले के भाग और उनके अधिकारी—शासन की दृष्टि से प्रत्येक जिले के जो भाग होते हैं, उन्हें सबडिविजन कहते हैं। हरेक सबडिविजन एक डिप्टीकलेक्टर, अथवा 'एक्सट्रा एसिस्टेंट कमिश्नर' के अधीन रहता है। अपनी-अपनी अमलदारी में, सबडिविजनों के अफसरों के अधिकार थोड़े-बहुत भेद से, कलेक्टर-मजिस्ट्रेटों जैसे ही होते हैं। इन्हें

एस० डी० ओ० भी कहते हैं, यह 'सबडिविजनल आफीसर' का संक्षेप है। बिहार को छोड़कर, अन्यत्र प्रत्येक जिले के अंतर्गत ५-६ तहसील या ताल्लुके हैं। जिले के वे भाग सब-डिप्टी-कलेक्टरों या तहसीलदारों के अधीन हैं, ये कर्मचारी प्रजा और सरकार को एक दूसरे के विषय में आवश्यक सूचना देते रहते हैं, और अपने इलाके के माल और फौजदारी के काम के भी उत्तरदाता हैं। ये अपने हल्के में दौरा करके म्युनिसपेलटियों और जिला-बोर्डों का भी काम देखते हैं। इनके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, कानूनगो, रेवन्यू इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। प्रायः एक तहसील में एक या अधिक परगने, और कई सर्कल या हल्के होते हैं। परगने का अधिकारी 'हाकिम परगना' कहलाता है।

गाँवों के अधिकारी—तहसीलदारों के अधीन, गाँवों में नम्बरदार (पटेल), चौकीदार और पटवारी रहते हैं। नम्बरदार गाँव का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। यह जमींदारों से मालगुजारी तथा आबपाशी की रकम वसूल करके तहसील में भेजता है, वहाँ से वह जिले में भेजी जाती है। यह अपने गाँव में शान्ति रखने का प्रयत्न करता है। चौकीदार पहरा देता है और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितनी मौतें हुईं, और कितने बालकों का जन्म हुआ। वह गाँव की चोरी, कत्ल तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है। चौकीदारों का अफसर 'मुखिया' कहलाता है। पटवारी अपने हल्के (ग्राम या ग्राम-समूह) के किसानों और जमींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज तथा रजिस्टर आदि रखता है। कोई खेत या उसका कुछ हिस्सा बिक जाय या किसी खेत का मालिक बदल जाय या मर जाय तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है, और अपने कागजों में उचित सुधार कर लेता है। वह खेतों के नक्शे तथा 'खेवट' 'खतौनी' आदि रखता है। इन सब कर्मचारियों के यथेष्ट कर्तव्य-पालन पर ही तहसील और जिले का शासन अच्छा होना निर्भर है।

अधिकार-विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता—जिले का शासन, भारत के स्वतंत्र होने पर भी, बहुत कुछ उसी ढंग स हो रहा है, जैसा पहले,

अंग्रेजों के समय में होता था। ब्रिटिश सरकार ने कलेक्टर या डिप्टी-कमिश्नर में जिले भर के शासन को केन्द्रित किया। यही नहीं, उसने कुछ हद तक गाँव के शासन को भी, नम्बरदार पटेल या मुकदम में केन्द्रित कर दिया था, इस पदाधिकारी पर गाँव का लगान वसूल करने के साथ शान्ति और सुरक्षा की जिम्मेदारी भी रहती थी। यह एक प्रकार से 'गाँव का हाकिम' था, जैसे कि जिलाधीश जिले का हाकिम था।

इस समय जिलाधीश को निम्नलिखित कार्य रहते हैं:—(१) लगान वसूल करना, (२) शान्ति और सुव्यवस्था, (३) न्याय, और (४) जिले का विकास। इन सब कामों का उत्तरदायित्व एक व्यक्ति पर रहना ठीक नहीं। विकेन्द्रीकरण या जनतंत्री नीति की जरूरत है। अच्छा हो कि जिला-पंचायतें जिलाधीश को सलाह देने वाली संस्थाएँ बन जायँ। शासन और न्याय को पृथक् करने की उपयोगिता पहले बतायी जा चुकी है। जमींदारी-उन्मूलन से, जमींदारों और किसानों के बीच होनेवाले मुकदमे बन्द हो जायँगे; इससे जिलाधीश का इन मुकदमों सम्बन्धी कार्य स्वयं ही हट जायेगा। उसे जिले के विकास-कार्य में सहायता देने के लिए विकास-बोर्ड स्थापित हो रहे हैं। पंचायतों की उन्नति से गाँवों में पटेल (नम्बरदार) की सत्ता मर्यादित होगी ही।

इक्कीसवाँ अध्याय

स्थानीय शासन-संस्थाएँ; (१) पंचायतें आदि

ग्राम-स्वराज्य की जो मेरी कल्पना है, उसके अनुसार गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पाँच आदमियों की पंचायत चुनी जायगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास योग्यता वाले गाँव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपना पंच चुन लें। इस पंचायत को सब प्रकार की सत्ता और अधिकार रहेंगे—यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारा-सभा, न्याय-सभा, और कार्यकारणी-सभा का सारा काम करेगी।

—गांधी जी

'स्थानीय स्वराज्य'—'स्थानीय स्वराज्य' और 'स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ' शब्द खासकर सन् १८७० से चले हुए हैं, जब यह देश अंग्रेजों के अधीन था और जनता को केवल कुछ स्थानीय विषयों में स्वाधीनता मिली थी। ये शब्द चल पड़े हैं, आदमी इनका प्रयोग करने में विशेष तर्क से काम नहीं लेते। यदि विचार किया जाय तो अब भारत के स्वराज्य-प्राप्त हो जाने पर इन शब्दों की जगह हमें क्रमशः 'स्थानीय शासन' और 'स्थानीय शासन-संस्थाएँ' शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

स्थानीय शासन-संस्थाओं का महत्व—इन संस्थाओं का बड़ा महत्व है। भिन्न-भिन्न शहरों और देहातों की परिस्थिति तथा आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार को उनके विषय में ब्योरेवार ज्ञान नहीं होता, और वे इन कार्यों की ऐसी अच्छी तथा मितव्ययिता-पूर्वक व्यवस्था नहीं कर सकतीं, जैसी स्थानीय व्यक्तियों की संस्थाएँ कर सकती हैं। आदमियों को अपने स्थान की समस्याओं और आवश्यकताओं का ज्ञान

अधिक होता है, और उन्हें उनकी पूर्ति करने में रुचि भी विशेष होती है। वे स्थानीय कार्यों को बड़े उत्साह से करते हैं, और उनका अनुभव प्राप्त करके वे प्रान्त और देश के विविध राजनैतिक कार्य करने के अधिक योग्य हो जाते हैं। स्थानीय संस्थाओं के द्वारा अनेक आदमियों को लोकसेवा का अवसर सहज ही मिल सकता है।

स्थानीय संस्थाओं की एक और विशेषता है। गाँव या नगर में हर एक आदमी अपने यहाँ के बहुत से आदमियों को निजी तौर पर जानता है, और उनके गुण-दोषों तथा स्वभाव आदि से परिचित रहता है। इसलिए स्थानीय संस्था का कोई कर्मचारी जनता से अपने व्यवहार की बातें छिपी नहीं रख सकता, वह सहज ही धोखा-धड़ी नहीं कर सकता, वह रिश्वत या घूस आदि नहीं ले सकता तथा किसी प्रकार का अनैतिक व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता। वह जानता है कि ऐसा करने से तुरन्त ही स्थानीय लोकमत उसके विरुद्ध हो जायगा, जिसे कोई भला आदमी कभी पसन्द नहीं करता।

स्थानीय शासन-संस्थाओं की स्थापना के मुख्य कारण ये होते हैं—

(क) राज्य-सरकार के कार्य-भार को हल्का करने की आवश्यकता।

(ख) प्रत्येक गांव या नगर की स्थानीय समस्याओं की अलग-अलग विशेषता।

(ग) खर्च में किफायत करने की जरूरत।

(घ) लोगों को व्यावहारिक राजनीति का अनुभव कराने तथा उसकी शिक्षा देने की आवश्यकता।

वर्तमान स्थानीय-शासन-संस्थाएँ—भारतवर्ष की वर्तमान स्थानीय-शासन-संस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

१—पंचायतें,

२—जिला-बोर्ड आदि,

३—म्युनिसपेलटियाँ, म्युनिसपल कारपोरेशन, नोटीफाइड एरिया,

४—इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, और पोर्ट-ट्रस्ट।

इनके दो भेद किये जा सकते हैं—(१) पञ्चायतें और जिला-बोर्ड आदि जो गाँवों के लिए हैं और—(२) अन्य संस्थाएँ जो शहरों के लिए हैं। मध्यप्रदेश में जनपद सभाएँ स्थापित की गयी हैं, जिनका कार्यक्षेत्र ग्राम्य और शहरी दोनों प्रकार है।

(क) पंचायतें

प्राचीन काल में यहाँ स्थानीय कार्य गांवों में पंचायतों द्वारा, और नगरों में व्यवसाय-संघों आदि द्वारा होता रहा। अँग्रेजों के शासन-काल में स्थानीय संस्थाओं की आय और अधिकार प्रान्तीय सरकारों द्वारा ले लिये गये। सन् १९२१ के लगभग, प्रत्येक प्रान्त में पंचायत-कानून बना और बहुत सी पंचायतें खुलीं। पर उनके अधिकार बहुत कम थे। वे एक प्रकार से सरकारी संस्थाएँ थीं। सन् १९३७ में 'प्रान्तीय स्वराज्य' होने पर प्रान्तीय सरकारों ने इस ओर अच्छा ध्यान दिया, पर १९३९ में उनका काम रुक गया।

स्वतंत्र भारत और पंचायत-राज—सन् १९४७ में भारतवर्ष के स्वतंत्र हो जाने पर यहाँ की सरकार ने यह अनुभव किया कि यह देश गाँवों का देश है; यहाँ की ८८ प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है, उसमें नव-जीवन का संचार करने के लिए गाँवों में पञ्चायत-राज कायम किया जाय, जिससे आदमी अपने-अपने गाँव की उन्नति तथा स्थानीय शासन-कार्य अपने हाथ में लें। पहले कहा जा चुका है कि संविधान ने नीति-निर्देशक तत्वों में राज्य को आदेश किया है कि वह ग्राम-पंचायतों के संगठन का प्रयत्न करे और उन्हें ऐसे-ऐसे अधिकार प्रदान करे जिनसे वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में काम कर सकें। उत्तरप्रदेश ने तो संविधान बनने से भी पूर्व सन् १९४७ में 'संयुक्त प्रान्तीय पंचायत राज' कानून बना कर पंचायतों के संगठन सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ कर दिया था।

उत्तरप्रदेश का उदाहरण—अब हम उत्तरप्रदेश की पंचायतों की मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख करते हैं। इससे भारत भर की वर्तमान

पंचायतों के सम्बन्ध में साधारण ज्ञान हो जायगा। इस समय गांवों या ग्राम-समूहों के लिए तीन-तीन संस्थाएँ हैं—(१) गांव-सभा, (२) गांव पंचायत और (३) पंचायती अदालत। जहाँ तक गांवों का सम्बन्ध है, ये कुछ वैसी ही हैं, जैसी राज्यों की (१) विधान मंडल, (२) मंत्रिपरिषद और (३) न्यायपालिका।

ग्राम-सभा का संगठन—पहले ग्राम-सभाओं के विषय में जान लेना चाहिए, क्योंकि इनसे ही ग्राम-पंचायतों का निर्माण होता है। साधारणतया लगभग एक-एक हजार आबादी वाले गाँव या ग्राम-समूह में ग्राम-सभा स्थापित की जाती है। यदि किसी गांव की आबादी एक हजार से कम हो और उसे निकटवर्ती (तीन मील के भीतर) गांव या गांवों में न मिलाया जा सके, तो उसमें एक पृथक-ग्राम-सभा होती है। हिसाब लगाने पर तीन गांवों में एक ग्राम-सभा की औसत आती है। ग्राम-क्षेत्र के सब प्रौढ़ अर्थात् इक्कीस वर्ष या अधिक आयु के व्यक्ति ग्राम-सभा के आजीवन सदस्य होते हैं। लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति किसी ग्राम-सभा का सदस्य नहीं होता—(क) जिसका दिमाग खराब हो, या (ख) जिसे कोढ़ हो, या (ग) जो दिवालियापन से बरी नहीं किया गया हो, या (घ) जो सरकारी कर्मचारी हो, या (च) जिसे चुनाव संबन्धी किसी अपराध के लिए दंड मिल चुका हो, या (छ) जो नैतिक अपराध का दोषी हो और जिसे नेकचलनी के लिए जमानत जमा करने की आज्ञा दी गयी हो। (ग), (च) और (छ) अयोग्ताएँ सरकारी आज्ञा से रद्द की जा सकती हैं।

सदस्यता की अवधि—यह कहा जा चुका है कि ग्राम-सभा के सदस्य आजीवन होते हैं। परन्तु यदि किसी सदस्य में ऊपर बतायी हुई कोई अयोग्यता उत्पन्न हो जाय तो वह व्यक्ति सदस्य नहीं रहेगा। यदि कोई सदस्य ग्राम-सभा के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहने लगे तो भी वह सदस्यता से वंचित हो जायगा। हाँ इन अयोग्यताओं के हट जाने पर यदि वह दर्खास्त दे तो सभापति उसकी जांच करा कर उस व्यक्ति को फिर सदस्य होने की अनुमति दे सकता है।

सभापति और उपसभापति—ग्राम-सभा अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उपसभापति चुनती है, जो तीन-तीन वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। सभा उन्हें अपने साधारण अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मत से हटा सकती है। ऐसी दशा में उसे इन स्थानों की पूर्ति करने के लिए तुरन्त ही नया चुनाव करना होगा।

ग्राम-सभा के अधिवेशन—ग्राम-सभा की प्रति वर्ष दो बैठकें अवश्य होती हैं—खरीफ की बैठक और रबी की बैठक। खरीफ की बैठक में अगले वर्ष के वजट पर विचार होकर उसे स्वीकार किया जाता है; रबी की बैठक में पिछले वर्ष के हिसाब पर विचार होता है। सभापति अपनी इच्छा से या कुल सदस्यों में से पाँचवें हिस्से के सदस्यों के निवेदन पर, निवेदन-तिथि के तीस दिन के अन्दर सभा की अतिरिक्त बैठक भी करा सकता है। सभा के सदस्यों की कार्य-निर्वाहक संख्या (कोरम) उनकी कुल संख्या का पाँचवाँ हिस्सा होती है।

गाँव-पञ्चायत की स्थापना और सङ्गठन—प्रत्येक गाँव-सभा अपने मेम्बरों में से एक कार्यकारिणी कमेटी का चुनाव करती है। यह कमेटी गाँव-पंचायत कही जाती है। इसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या सभा के सभापति और उप सभापति के अतिरिक्त, सभा के क्षेत्र की जन-संख्या के अनु-पात से ३० से ५१ तक होती है।*

(१) यदि जनसंख्या १००० से अधिक न हो .... ३० सदस्य
(२) यदि जनसंख्या १००० से अधिक हो,
किन्तु २००० से अधिक न हो .... ३६ ”
(३) यदि जनसंख्या २००० से अधिक हो,
किन्तु ३००० से अधिक न हो .... ३९ ”
(४) यदि जनसंख्या ३००० से अधिक हो,
किन्तु ४००० से अधिक न हो .... ४५ ”

---

* हमारे विचार से यह संख्या ५ से २१ तक रहे तो कार्य-संचालन में अधिक सुविधा हो।

(५) यदि जनसंख्या ४००० से अधिक हो.........................५१ सदस्य

चुनाव संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली से होगा। अनुसूचित जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात से सुरक्षित स्थानों की संख्या का हिसाब लगाते समय आधे से कम राशि-भागों को छोड़ दिया जाएगा और जो पूर्णाङ्क आधे से कम न हों, उन्हें पूर्णाङ्क गिना जायगा। अल्पसंख्यक जाति का एक मेम्बर अवश्य होगा।

गाँव-सभा के सभापति तथा उपसभापति गाँव-पंचायत के भी सभापति और उपसभापति होंगे।

पंचायत के निर्वाचित सदस्य तीन वर्ष के लिए सदस्य रहेंगे परन्तु कुल सदस्यों में से एक-तिहाई हर वर्ष अवकाश ग्रहण करते जायेंगे।

निर्वाचन—जिलाधीश प्रत्येक ग्राम-सभा के लिए एक निर्वाचन-अध्यक्ष की, और हरेक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए एक सहायक निर्वाचन-अध्यक्ष की नियुक्ति करता है। वह उस क्षेत्र के अन्तर्गत पंचायत के सभापति उपसभापति तथा सदस्यों और पंचायती अदालत के पंचों की उम्मेदवारी तथा चुनाव के निमित्त इसकी बैठक के लिए एक तारीख, समय और स्थान नियत करता है। इसकी घोषणा डुग्गी पिटवा कर या अन्य प्रकार से की जाती है।

निर्वाचन-अध्यक्ष प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए आवश्यक पोलिंग अफसरों (मत-गणनाधिकारियों) को नियुक्त करता है।

उम्मेदवारी का प्रस्ताव साधारण कागज पर होता है, जिसमें उम्मेदवार का नाम, विवरण, तथा उस पद का नाम जिसके लिए वह खड़ा हो रहा है, दिया जाता है। उस पर उम्मेदवार के तथा प्रस्ताव और अनुमोदन करने वाले दो प्रौढ़ व्यक्तियों के हस्ताक्षर होते हैं।

विभिन्न पदों अर्थात् (क) सभा के सभापति, (ख) उपसभापति, (ग) पञ्चायत के सदस्य, और (घ) पञ्चायती अदालत के पञ्च के चुनाव की कार्रवाई अलग-अलग की जाती है।

निर्वाचन-क्षेत्र के प्रत्येक मतदाता को उतने ही मत देने का अधिकार

होता है, जितने कि उस क्षेत्र के पञ्चायत के सदस्यों तथा ग्राम-सभा के अन्य पदों के लिए, जैसी भी दशा हो, उम्मेदवार हों।

प्रत्येक समूह का मत-गणनाधिकारी सभा के सभापति, उपसभापति, पञ्चायत के सदस्य तथा पञ्चायती अदालत के पदों के लिए खड़े होने वाले प्रत्येक स्वीकृत उम्मेदवार के लिए हाथ उठवा कर मत लेता है, और निर्वाचन-अध्यक्ष को लिखित सूचना देता है कि प्रत्येक उम्मेदवार को कितने मत प्राप्त हुए। जब उम्मेदवारों को मिलने वाले मतों की समानता हो तो उनमें से कौनसा उम्मेदवार सफल घोषित किया जाय—इसका निर्णय लाटरी द्वारा (चिट्ठी डालकर) निर्वाचन-अध्यक्ष और उम्मेदवारों के सामने किया जाता है।

पञ्चायत के कर्मचारी—पञ्चायत को अधिकार है कि वह तहसीलदार द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार कर्मचारियों को नियुक्त करे। नियुक्ति के समय कर्मचारी की आयु २० से ३५ वर्ष तक की होनी चाहिए। पञ्चायत के मंत्री की इन्टरमिजियट (एफ० ए०) तक की योग्यता होनी आवश्यक है, दूसरे कर्मचारियों को हिन्दुस्तानी मिडल या एंग्लोवर्नाक्यूलर की आठवीं कक्षा पास होना चाहिए।

पञ्चायत के अधिकार और कर्तव्य—पञ्चायत के अपने क्षेत्र में विविध कर्तव्य हैं, इन्हें पूरा करने के लिए उन्हें आवश्यक अधिकार दिये गये हैं। पञ्चायतों के कार्यों के दो भाग किये जा सकते हैं—अनिवार्य और ऐच्छिक। पहले उनके ऐसे कार्यों का विचार करते हैं, जो उन्हें करने ही चाहिएँ।

अनिवार्य कार्य—पंचायत का नियन्त्रण ऐसे सब सार्वजनिक मार्गों तथा जन-मार्गों पर होता है जो उसके अधिकार-क्षेत्र में हों। वह उनको अच्छी दशा में बनाये रखने और उनकी मरम्मत करने के लिए आवश्यक काम करती है, और वह

(१) नये पुल या पुलिया बनायेगी; उन्हें आवश्यकतानुसार बदल देगी, छोड़ देगी या बन्द कर देगी; उन्हें चौड़ा या गहरा करेगी।

(२) ऐसी झाड़ी या पेड़ की शाखा को काटेगी, जो सार्वजनिक मार्ग पर झुक आयी हो।

(३) सार्वजनिक उपयोग में आने वाले किसी श्रोत (चश्मे) का पानी केवल पीने या खाना बनाने आदि के काम के लिए सुरक्षित रखने की घोषणा करेगी।

गाँव-पंचायत को यह अधिकार है कि वह नोटिस द्वारा किसी भूमि या इमारत के मालिक को निम्नलिखित बातें करने के लिए आदेश दे :—

(क) किसी पाखाने, पेशाबखाने, नाबदान, नाली, चहबच्चा या दूसरी गन्दगी का बर्तन, मोरी का गन्दा पानी, कूड़ा-करकट या मैल जमा करने की जगह जो ऐसी भूमि या इमारत से संबन्धित हो, को बन्द करना, हटाना, उसमें परिवर्तन करना, उसकी मरम्मत करना, उसकी सफाई करना, कीटाणुनाशक दवाइयों द्वारा उसे शुद्ध करना या अच्छी दशा में रखना; या किसी ऐसे पाखाने, पेशाबखाने या नाबदान को जो किसी सड़क या नाली पर खुलता हो, हटाना या उसके किसी दरवाजे आदि को बदलना या उसके लिए नाली बनाना, या उसे एक उपयुक्त छत और दीवार या आड़ द्वारा राहगीरों या पड़ोस में रहने वालों की दृष्टि से छिपाना।

(ख) किसी निजी कुएँ, तालाब, हौज, जोहड़ (पोखर) गड्ढा या खुदी हुई गहरी जगह को जो उस भूमि या इमारत में हो जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो, पड़ोस में रहने वालों के लिए नागवार हो, साफ करना, उसकी मरम्म्त करना, उसे ढक देना, भरना, गहरा करना या उसमें से पानी निकालना।

(ग) वहाँ से वनस्पति, पेड़ों के नीचे उगने वाली छोटी झाड़ियाँ, नागफनी आदि को साफ करा देना।

(घ) वहाँ से धूल, गोबर, गलीज, खाद या किसी बदबूदार चीज को हटाना और भूमि या इमारत की सफाई करना।

पंचायतों के ऐच्छिक कार्य—कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनका करना पंचायतों की इच्छा और सुविधा पर निर्भर है। उदाहरण के लिए कोई पंचायत नीचे दी हुई बातों के सम्बन्ध में भी व्यवस्था कर सकती है :—(क) जन

मार्ग के दोनों ओर तथा दूसरे सार्वजानिक स्थानों में पेड़ों को लगाना और
उन्हें अच्छी दशा में रखना। (ख) मवेशियों की नस्ल सुधारना, उनकी
चिकित्सा और उनके रोगों की रोक-थाम करना। (ग) गन्दे गड्ढों को भर-
वाना और भूमि को समतल कराना। (घ) गाँव की रक्षा और चौकी पहरे
के लिए, पंचायत और पंचायती अदालतों को उनके काम में सहायता करने
के लिए और उनके द्वारा जारी किये हुए सम्मनों और नोटिसों की तामील
करने के लिए गाँव-स्वयंसेवक दल का संगठन करना। (च) सरकारी ऋण
प्राप्त करने, उसे आपस में बाँटने और उसके चुकाये जाने के सम्बन्ध में
किसानों की सहायता करना और उन्हें परामर्श देना। (छ) सहकारिता
सम्बन्धी कामों की उन्नति और बढ़िया बीज और औजारों के गोदाम (भण्डार)
स्थापित करना। (ज) पुस्तकालय, वाचनालय, अखाड़े और क्लब आदि
का संचालन करना। (झ) सार्वजनिक उपयोगिता के ऐसे अन्य कार्य करना,
जिससे गाँव वालों की नैतिक और भौतिक उन्नति हो। (ट) जिला-बोर्ड की
अनुमति से लोगों की भलाई के ऐसे अन्य कार्य करना जो जिला-बोर्ड के
कार्यों के अन्तर्गत हों।

आय के साधन—गाँव-पञ्चायत के कोष को गाँव-कोष कहते हैं।
इसमें निम्नलिखित रकमें जमा होती हैं :—

(१) जो पञ्चायत द्वारा जमीन के लगान या इमारतों पर लगाये करों से
हैसियत-टैक्स आदि से वसूल हों।
(२) जो प्रान्तीय सरकार गाँव-सभा के सुपुर्द करे।
(३) जो किसी अदालत के हुक्म से जमा की जायें।
(४) जो किसी अपराध के सम्बन्ध में राजीनामा होने पर प्राप्त हों।
(५) जो पञ्चायत के कर्मचारियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ कूड़ा, गोबर
खाद, तथा मरे हुए जानवरों की लाशें बेचने से मिलें।
(६) जो नजूल की जमीन के लगान आदि के भाग के रूप में मिलें।
(७) जो सरकार, जिला-बोर्ड या दूसरे स्थानीय अधिकारी दें।
(८) जो ऋण या दान के रूप में प्राप्त हों।

पञ्चायत के नये अधिकार और कर्तव्य—जमींदारी-उन्मूलन से ऐसी जमीन, तालाब, कुएँ, बाग, पेड़, आदि जो निजी नहीं हैं, और सर्व-साधारण के सामूहिक उपयोग के लिए हैं—इन सब का स्वामित्व ग्राम-सभा को प्राप्त होगा। इनके साथ ही सार्वजनिक संपत्ति की देख-रेख, प्रबंध और विकास का उत्तरदायित्व भी अब ग्राम-सभा पर है। बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों की चकबन्दी कराना और उन्हें लाभप्रद बनाना है। सहकारी खेती और ग्रामोद्योग बढ़ाने हैं। पड़ती भूमि का उपयोग करना है। उत्तर प्रदेश की राज्य-सरकार ने निश्चय किया है कि प्रत्येक जिले में या कुछ जिलों में एक-दो पञ्चायतों को प्रयोगात्मक रूप में लगान वसूल करने का काम सौंपा जाय; अन्त में यह कार्य पूर्ण रूप में ही सौंपा जाना है, वे इसके लिए सब से अधिक उपयुक्त हैं।

पञ्चायतों की आर्थिक स्थिति—यह स्पष्ट है कि जमींदारी-उन्मूलन से पञ्चायतों की मिल्कियत बढ़ेगी, इसका अर्थ है कि उनकी आय में बहुत वृद्धि होगी। परन्तु इसके साथ ही उनके कर्तव्य भी बहुत बढ़ गये हैं। बहुत सम्भव है उसकी आवश्यताओं के विचार से कुल आय कम ही रहे। जब ऐसा हो तो पञ्चायतों को हिम्मत से काम लेना और स्वावलम्बी बनना चाहिए। गाँव में जो आदमी सम्पन्न या धनवान हों, उनसे दान के रूप में यथेष्ट सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जो भाई पैसा खर्च नहीं कर सकते, वे लोक-हित के कामों में अपने शारीरिक श्रम से सहयोग प्रदान कर सकते हैं। मिसाल के तौर पर वे सड़क बताने, कुएँ खोदने और नालियों आदि के बनवाने में सहायता कर सकते हैं। अस्तु, यह आवश्यक है कि पञ्चायत के अधिकारी और कार्यकर्त्ता अपने सद्व्यवहार, ईमानदारी और मितव्ययिता से गाँव वालों के विश्वास-पात्र हों, और गाँव-फंड का एक-एक पैसा खूब सोच समझ कर खर्च करें।

पञ्चायती अदालतें, उनका सङ्गठन—यहाँ पञ्चायती अदालतों का परिचय उत्तर प्रदेश की दृष्टि से ही दिया जा रहा है। इससे अन्य राज्यों की स्थिति का स्थूल अनुमान हो जायगा। इस राज्य में साधारणतया तीन से

लेकर पाँच गांवों तक के क्षेत्र का एक सर्किल होता है। प्रत्येक सर्किल में एक पञ्चायती अदालत स्थापित होती है। किसी क्षेत्र की प्रत्येक ग्राम-सभा उस क्षेत्र की पंचायती अदालत के लिए निर्धारित योग्यता वाले प्रौढ़ आयु के पांच पञ्च चुनती है, जो आसानी से हिन्दी पढ़-लिख सकते हों। उनका चुनाव तीन साल के लिए होता है। उस क्षेत्र की सब ग्राम-सभाओं के इस प्रकार चुने हुए पञ्चों का पंच-मंडल ('पेनल') होता है। सब पंच अपने में से एक व्यक्ति को सरपंच चुनते हैं। सरपंच वही व्यक्ति चुना जाता है, जिसमें कार्यवाही लिखने की योग्यता हो।

सरपंच हरेक मुकदमे के लिए पंच-मंडल में से पाँच पंचों का एक बेंच नियुक्त करता है, उसमें कम-से-कम एक पंच ऐसा होता है, जो गवाही और कार्यवाही लिख सके। प्रत्येक बेंच के पंचों में एक-एक पंच गाँव-सभा के ऐसे इलाकों का रहने वाला होता है, जिसमें वादी और प्रतिवादी रहते हैं।

पंचायती अदालत के अधिकार—पंचायती अदालतों को दीवानी, फौजदारी तथा माल के निर्धारित अधिकार हैं। दावे लिखित या जबानी हो सकते हैं। पंचायती अदालत के फैसले की अपील नहीं होती। परन्तु यदि किसी मामले में अन्याय हो तो उसकी निगरानी हो सकती है—दीवानी के मामलों की निगरानी मुन्सिफ के यहाँ, माल के मामलों की निगरानी हाकिम-परगना-माल के यहाँ, और फौजदारी के मामलों की निगरानी हाकिम परगना फौजदारी के यहाँ होती है। यदि कोई गवाह सम्मन तामील होने पर हाजिर न हो तो उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है और २५) तक जमानती वारन्ट भी जारी हो सकता है। पंचायती अदालत को दीवानी के १००) तक की मालियत के ऐसे मुकदमों का फैसला करने का अधिकार होता है* जो चल सम्पत्ति या उसके मूल्य या उसकी हानि के सम्बन्ध में हों, या मवेशियों द्वारा की गई क्षति की पूर्ति के लिए हों। परन्तु वह साझेदारी के, वसीयत या गैर-वसीयत जायदाद के, सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध, नाबालिग की ओर से या उसके विरुद्ध, या कब्जा-आराजी के दावे नहीं सुन सकती।

---

*सरकार इस अधिकार को ५००) तक बढ़ा सकती है।

फौजदारी के कुछ मुकदमों के उदाहरण ये हैं—सार्वजनिक मार्ग पर लड़ाई, सम्मन तामील न करना या उल्लंघन करना, अश्लील क्रिया या गीत, मारपीट, हमला, किसी को बन्द करने के लिए हमला, जबरदस्ती बेगार, ५०) से कम मूल्य की चोरी, भूमि या मकान में अनधिकार-प्रवेश या अधिकार कर लेना, धमकी, स्त्री की लज्जा-अपहरण करने की चेष्टा आदि। जुर्माने में अदालत वादी का खर्चा दिला सकती है और क्षति-पूर्त्ति भी दिला सकती है। यदि अदालत को विश्वास हो जाय कि दावा निरर्थक, झूठा या केवल परेशान करने को किया गया है तो वह अभियुक्त को वादी से मुआवजा दिला सकती है, जो ५) से अधिक न हो। यदि अदालत की राय में कोई मुकदमा ऐसा हो जिसे सुनने का उसे अधिकार नहीं है, अथवा जिसमें वह अपराधी को उचित दण्ड नहीं दे सकती तो वह उस मुकदमे के वादी को उसका दावा वापिस कर देती है, ताकि वह उसे किसी मजिस्ट्रेट के सामने पेश करे। यदि अदालत के सरपंच का ऐसा विश्वास हो कि किसी व्यक्ति की ओर से शान्ति भङ्ग की जाने की आशंका है तो जांच के बाद पंचायत उस व्यक्ति से १००) तक की जमानत मुचलका, १५ दिन तक के लिए, ले सकती है। पंचायती अदालत को कैद की सजा देने का अधिकार नहीं है; वह केवल १००) तक जुर्माना कर सकती है।

सरकारी नियंत्रण—राज्य-सरकार को गाँव-सभा, पंचायत और पंचायती अदालती के नियंत्रण करने का बहुत अधिकार है। वह गाँव-सभा की किसी अचल सम्पत्ति का निरीक्षण करा सकती है, उससे कागजात या किसी विषय की रिपोर्ट मांग सकती है। वह इन संस्थाओं की जाँच करा सकती है, उन्हें आवश्यक आदेश कर सकती है, तथा अनुचित कार्य करने से रोक सकती है। यदि यह सिद्ध हो जाए कि पंचायत या पंचायती अदालत अपना कर्तव्य ठीक तरह पालन नहीं कर रही है तो सरकार इन्हें भङ्ग कर सकती है।

भारत के पराधीनता-काल में लोगों को अपने क्षेत्र के सार्वजनिक कार्य अच्छी तरह ईमानदारी, लगन और परिश्रम से करने का अभ्यास नहीं

रहा। ऐसी दशा में उपर्युक्त सरकारी नियंत्रण अभी अनुचित नहीं कहा जा सकता, तथापि यह लोक-राज्य की भावना के विरुद्ध है, और उत्तरोत्तर घटाया जाना चाहिए।

(ख) जिला-बोर्ड आदि

बोर्डों के भेद—'बोर्ड' का अर्थ मंडली या समिति है, चाहे वह किसी भी कार्य संबंधी हो, परन्तु यहाँ इससे केवल उसी संस्था का आशय लिया जाता है, जो गाँव वालों की शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं और उन्नति की व्यवस्था करे तथा उनके दैनिक जीवन में सहायक हो।

बोर्डों के निम्नलिखित तीन भेद हैं; किसी-किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं; और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं :—

१—लोकल बोर्ड। यह एक गाँव में या कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिविजनल बोर्ड। यह एक ताल्लुके या सब-डिविजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देखभाल करता है।

३—जिला-बोर्ड। यह एक जिले में होता है, और जिले भर के लोकल बोर्डों का, ताल्लुका-बोर्डों का निरीक्षण करता है।

आसाम में केवल ताल्लुका-बोर्ड ही हैं। मद्रास में कुछ गाँवों को मिला कर उनकी यूनियन-कमेटियाँ बनायी गयी हैं।

बोर्डों का सङ्गठन; सदस्य—जिला-बोर्ड स्थापित करने का अधिकार राज्य-सरकार को है। उत्तर-प्रदेश में पचास से अधिक जिला-बोर्ड हैं। प्रत्येक बोर्ड में कुछ सदस्य, एक सभापति, एक सेक्रेटरी तथा कुछ अन्य कर्मचारी रहते हैं। सदस्यों की संख्या राज्य के जिला-बोर्ड कानून से निश्चित रहती है। जिले के शहरी इलाके को छोड़कर शेष भाग को कुछ निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है, और प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से दो-तीन सदस्य चुने जाते हैं। इस प्रकार एक जिला-बोर्ड में चालीस-पैंतालीस सदस्य हो जाते हैं। सदस्यों का चुनाव लगभग चार वर्ष में होता है, पर राज्य-सरकार

चुनाव की अवधि को बढ़ा सकती है। सदस्य अवैतनिक होते हैं; हाँ, उन्हें दौरे का भत्ता मिलता है।

सदस्यों का चुनाव संयुक्त प्रणाली से होता है। निर्वाचन या मतदान के लिए बालिग होना आवश्यक है, पर कोई ऐसा व्यक्ति निर्वाचित नहीं हो सकता, जो भारतीय नागरिक न हो, अथवा जो पागल या दिवालिया हो। जिला-बोर्ड का उद्देश्य गाँवों की जनता की असुविधाएँ दूर करना तथा उसकी सेवा और उन्नति करना है; इसलिए मतदाताओं को उनका चुनाव करते समय अपने उत्तरदायित्व को भली भाँति ध्यान में रखना चाहिए।

सभापति—जिला-बोर्ड के सदस्यों के नये चुनाव के साथ ही एक व्यक्ति बोर्ड का सभापति चुना जाता है। उसे जिला-बोर्ड के क्षेत्र के सब निर्वाचक प्रत्यक्ष मत से चुनते हैं। उपसभापति का निर्वाचन सदस्यों द्वारा ही होता है, और वह सभापति की अनुपस्थिति में उसका कार्य करता है। सदस्यों की तरह सभापति भी अवैतनिक होता है, और उसे दौरे के लिए भत्ता दिया जाता है। अस्तु, वर्तमान दशा में प्रायः सभापति और सदस्यों को नियमानुसार विशेष आय नहीं होती, तो भी इन पदों को प्राप्त करने के लिए प्रायः बहुत जोर का संघर्ष रहता है। कुछ आदमी इसलिए ही इन पदों के लिए चुनाव लड़ते हैं कि वे इनसे अनुचित लाभ उठा सकें,—अपने यार-दोस्त या सगे-सम्बन्धियों को सड़क आदि का ठेका दे सकें, या किसी प्रकाशक की पुस्तक अपने जिले के स्कूलों में जारी करा सकें। यह भावना लोकहित-घातक है इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि निर्वाचन खूब सोच-समझ कर किया जाय।

सेक्रेटरी आदि—प्रत्येक जिला-बोर्ड का एक सेक्रेटरी होता है। यद्यपि वह सभापति के अधीन होता है, वास्तव में सब काम की देख-भाल का काम उसी पर रहता है। बोर्ड के सब कर्मचारी उसके निरीक्षण में काम करते हैं। इस प्रकार उसके पद का महत्व स्पष्ट है। उसे निर्धारित वेतन मिलता है। बोर्ड में उसके अतिरिक्त एक इंजिनियर, एक स्वास्थ्य-पदाधिकारी, एक सफाई-निरीक्षक आदि विविध कर्मचारी रहते हैं। इनके अलावा बहुत

से क्लर्क और चपरासी आदि भी काम करते हैं। इन्हें भी निर्धारित वेतन दिया जाता है।

कार्यपद्धति; कमेटियाँ—जिला-बोर्ड अपना कार्य कई कमेटियों या समितियों द्वारा करता है। नया चुनाव होने के बाद जब बोर्ड की पहली मीटिंग होती है तो सदस्य विविध कार्यों के लिए अलग-अलग कमेटियाँ बना देते हैं, यथा शिक्षा-कमेटी, स्वास्थ्य-कमेटी, सफाई-कमेटी, पानी-कमेटी, निर्माण-कमेटी आदि। प्रत्येक कमेटी में तीन-चार या अधिक सदस्य होते हैं, और एक सभापति होता है। कमेटियों में शिक्षा-कमेटी बड़ी मानी जाती है; इसका सभापति जिला-बोर्ड के शिक्षा-विभाग का चेयरमेन कहलाता है। इसका सम्बन्ध सैकड़ों अध्यापकों और हजारों विद्यार्थियों से होता है। इन कमेटियों की मीटिंग समय-समय पर होती रहती है, और इनमें आवश्यक विषयों पर विचार होता है। बोर्ड के सदस्यों की मीटिंग महीने में एक बार होती है, आवश्यकता होने पर अधिक बार भी हो सकती है।

जिला-बोर्ड के कार्य—बोर्ड अपने क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात और सफाई आदि के कार्य करता है, इसके अतिरिक्त उसे कृषि और पशुओं की उन्नति भी करनी होती है। इस प्रकार उसके मुख्य कार्य ये हैं :—१—सड़कें बनवाना और उनकी मरमम्त करवाना, पेड़ लगवाना तथा उनकी रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना (देहातों में प्राइमरी या मिडिल स्कूल आदि खोलना।) ३—चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु-चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाजार, मेला, नुमायश या कृषि-प्रदर्शनी आदि का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के प्रबन्ध के लिए तालाब या कुएँ खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—कांजी हौज अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि को नुकसान पहुँचाने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं। [जिस आदमी का, पशु नुकसान करते हैं, वह उन्हें इस स्थान में भेज देता है। जब उनका मालिक उन्हें लेजाने के लिए आता है, तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है।] ७—घाट,

नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना। ८—सार्वजनिक सुभीते के अन्य आवश्यक कार्य करना।

बोर्डों की आय—बोर्डों की आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है, और जो सरकारी वार्षिक राजस्व या मालगुजारी के साथ ही प्रायः एक आना या अधिक फी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए सरकार उन्हें कुछ रकम कुछ शर्तों से प्रदान कर देती है। मकान बनाने आदि की सुधार-योजनाओं के लिए वे खुले बाजार में ऋण भी ले सकते हैं। आय के अन्य साधन तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फीस, काँजी हौज की आमदनी, मेले नुमायशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमिकर हैं। प्रायः लोकल-बोर्डों या ताल्लुका-बोर्डों की कोई स्वतन्त्र आय नहीं होती; उन्हें समय-समय पर जिला-बोर्डों से ही कुछ रुपया मिल जाता है। वे उस रुपये को जिला-बोर्डों की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियंत्रण—जिला-बोर्डों के काम की देखभाल कलेक्टर (या डिप्टी-कमिश्नर) अथवा कमिश्नर करते हैं। कलेक्टर को इस सम्बन्ध में बहुत अधिकार हैं; जब वह यह समझे कि जिला-बोर्डों का कोई काम, या प्रस्ताव आदि ऐसा है, जिससे सार्वजनिक हित की हानि होगी तो वह उस काम को बन्द कर सकता है, तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाये जाने से रोक सकता है। यदि प्रान्तीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना काम ठीक तरह नहीं करता और अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, तो वह उसे तोड़ सकती है। इस दशा में उसका नया चुनाव होगा।

बोर्डों और पञ्चायतों का सम्बन्ध—लोकल बोर्ड, तालुका-बोर्ड और जिला-बोर्डों आदि के कर्तव्य अपने-अपने क्षेत्र में उसी प्रकार के हैं, जैसे पंचायतों के हैं। वास्तव में दो प्रकार की संस्थाओं के कार्यों में स्पष्ट भेद होना चाहिए, इस दृष्टि से हमारा सुझाव है कि स्थानीय प्रबन्ध की सारी जिम्मेवारी गाँव-पंचायतों पर रहे, जिला-बोर्ड अपने क्षेत्र की पंचायतों

के लिए नीति निर्धारित करे और ऐसी योजनाओं में सहायक और पथ-प्रदर्शक हो जिनका सम्बन्ध कई पञ्चायतों के क्षेत्र से, अथवा जिले भर से हो। ऐसा होने की दशा में जिला-बोर्ड का नाम जिला-पंचायत हो सकता है। यह जिला-पंचायत जिला-मजिस्ट्रेट के लिए ग्राम-सम्बन्धी विषयों में एक अच्छी प्रभावशाली सलाहकार कमेटी का काम दे सकती है।

(ग) जनपद-सभाएँ

जनपद-सभा का क्षेत्र और सदस्य—मध्यप्रदेश में जिला-बोर्ड को पहले जिला-कौंसिल कहा जाता था। सन् १६४८ से जिला-कौंसिलों, तथा लोकल और तालुका-बोर्डों को समाप्त करके जनपद योजना काम में लायी जा रही है। प्रत्येक तहसील या तालुका में जनपद सभा स्थापित की गयी है। इस इकाई का क्षेत्रफल मोटे तौर पर डेढ़ सौ, दो सौ वर्ग मील के लगभग है। राज्य की म्युनिसपेलटियाँ पूर्ववत अपनी स्वतंत्र अवस्था में हैं। प्रत्येक जनपद सभा में उस क्षेत्र की जनसंख्या के अनुसार २० से ४० तक सदस्य होंगे। इसका चुनाव नागरिक तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों से बालिग मताधिकार के अनुसार हुआ करेगा।

स्थायी समितियाँ—प्रत्येक जनपद सभा में विविध कार्यों के लिए स्थायी समितियाँ होंगी, तथा स्वतः उनके द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष होगा। यद्यपि स्थायी प्रबन्ध सम्बन्धी नीति सम्पूर्ण जनपद सभा द्वारा ही निर्धारित की जायगी तथापि उसका कार्यान्वित करना इन्हीं स्थायी समितियों के हाथ में रहेगा तथा इसमें इन्हें सरकारी कर्मचारियों की सहायता भी प्राप्त होती रहेगी।

आर्थिक व्यवस्था—म्युनिसपेलटियाँ जनपद-सभा को नियमित रूप से निश्चित धन-राशि देंगी। व्यक्तिगत बाजारों को सार्वजनिक बाजार घोषित करने के उपरान्त मिलने वाले कर, तथा मालिक-मकबूजा जमीन के मालिक या ठेकेदार से उनके लगान पर प्रति रुपया १८ पाई का 'सेस' जनपद सभाओं की आय के प्रधान स्रोत हैं। वह कृषि-इतर आय पर शिक्षा-कर तथा प्रति रुपये पीछे बारह पाई का ऐच्छिक कर भी लगा सकती है। सरकार की अनुमति से अन्य प्रकार के कर भी लगाये जा सकते हैं।

जनपद-सभा के अधिकार—नागपुर और जबलपुर म्युनिसपल कारपोरेशन—केवल ये दो संस्थाएँ जनपद-सभाओं से पूर्ण स्वतंत्र रहेंगी, शेष सब क्षेत्र में जनपद सभाओं को म्युनिसपेलटियों से अधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा गया है। यदि कोई नगरपालिका अपने क्षेत्र में जल-पूर्ति, रोग-प्रतिबन्ध, औषधि-प्रचार, सड़कों के निर्माण आदि विशिष्ट कार्य को ठीक ढंग से न चला रही हो तो जनपद-सभा को अधिकार है कि वह तत्सम्बन्धी शिकायतों को सरकार के पास भेजे और सरकारी जाँच के बाद आवश्यक कार्रवाई के लिए स्थानीय अधिकारियों को उचित आदेश दे। आवश्यक होने पर सरकार सम्बन्धित कार्य को कुछ निर्धारित समय के लिए इस सभा के अधिकार में दे सकती है; सभा इस कार्य के लिए खर्च की गयी रकम नगर-पालिका से वसूल कर सकती है। राज्य-सरकार नगरपालिका के सम्बन्ध में अपने अन्य अधिकार भी जनपद सभाओं को सौंप सकती है।

जनपद-सभा को यह अधिकार है कि वह अपने क्षेत्र की ग्राम-पंचायतों के कार्य का परीक्षण, निरीक्षण तथा नियंत्रण करे। उसका यह प्रमुख कर्तव्य होगा कि वह ग्राम-पंचायतों के द्वारा उन कार्यों को उचित रूप से सम्पन्न कराए।

गाँव वालों का उत्तरदायित्व—भारत के स्वाधीन होने पर गाँव वालों को स्थानीय संस्थाओं द्वारा अपने क्षेत्र की भौतिक तथा नैतिक उन्नति करने का अपूर्व अवसर मिला है। उन्हें चाहिए कि अपने उत्तरदायित्व को समझें और अपने नये अधिकारों का सोच-समझ कर सावधानी से उपयोग करें। बहुत से स्थानों में जातिगत, साम्प्रदायिक या अन्य प्रकार की दलबन्दी का रोग बुरी तरह घुसा हुआ है, आदमी तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए हैं। इन बातों का परित्याग होना चाहिए। हम सर्वोदय की भावना रखें। तभी उक्त संस्थाओं का उद्देश्य पूरा होगा; गाँव भले आदमियों के रहने योग्य बनेंगे और ग्राम-जीवन की महिमा बढ़ेगी।

बाइसवाँ अध्याय

स्थानीय शासन-संस्थाएँ

(२) म्युनिसपेलटियाँ आदि

स्थानीय संस्थाओं का काम है कि नागरिक जीवन के प्राथमिक दायित्व और कर्तव्य का आप स्वयं पालन करें और उन सब लोगों को बताएँ जो नित्य आपके निकट सम्पर्क में आते हैं। जहाँ तक सम्भव हो, स्वावलम्बन, और जहाँ आवश्यक हो सहयोगात्मक उद्योग, दोनों नागरिक जीवन की कुंजी हैं।

—सरदार पटेल

(क) म्युनिसपेलटियाँ

शहरों का विचार—इस अध्याय में हम ऐसी संस्थाओं का विचार करेंगे, जिनका कार्य-क्षेत्र शहर या नगर है। इस समय भारत की १२ प्रतिशत आबादी शहरों में रहती है, पर यह बहुत बढ़ती जा रही है। शहरों में मकानों की बहुत तंगी है, खुली और ताजी हवा तथा रोशनी कम मिलती है। गंदा पानी बहने के लिए नालियाँ अच्छी और काफी नहीं। पीने के पानी की व्यवस्था असन्तोषजनक है। लोगों का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। अधिकतर सड़कें कम चौड़ी हैं। आदमियों में नागरिकता के ज्ञान और व्यवहार की ऐसी कमी है कि नालियों और सड़कों को हर समय साफ बनाये रखना एक बड़ी समस्या हो गयी है। कहाँ तक गिनायें; शहरों का बाहरी रूप चाहे जितना आकर्षक हो, यहाँ के जीवन में अनेक असुविधाएँ हैं, जिन्हें दूर करने का दायित्व म्युनिसपेलटियों आदि संस्थाओं पर है।

म्युनिसपेलटियों का संगठन—नगरों में प्रत्येक म्युनिसपेलटी की सीमा निश्चित की गयी है। म्युनिसपेलटियों का नया संगठन प्रायः चार

साल में होता है, अर्थात् उनके सभापति, उपसभापति तथा सदस्यों (मेम्बरों) का चार साल के बाद नया निर्वाचन या चुनाव होता है। उसमें पुराने सदस्य तथा सभापति भी चुने जा सकते हैं।

म्युनिसपेलटियों के लिए निर्वाचक या मतदाता (वोटर) होने के वास्ते, किसी आदमी की प्रायः वैसी ही बातें अयोग्यता मानी जाती हैं, जैसी जिला-बोर्डों के निर्वाचक होने के वास्ते अयोग्यता बतलायी गयी हैं। प्रत्येक राज्य में निर्वाचकों की योग्यता सम्बन्धी साधारण नियम समान हैं, ब्योरेवार बातों में थोड़ी-बहुत भिन्नता है। साधारणतया ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) निर्वाचक हो सकता है, जो म्युनिसपेलटी की सीमा में कम-से-कम छः मास से रहता हो, और इक्कीस या अधिक वर्ष का हो। चुनाव संयुक्त प्रणाली से होता है।

सदस्य—सदस्यों के चुनाव के लिए प्रत्येक नगर कुछ मोहल्लों या 'वार्डों' में बँटा होता है। किस 'वार्ड' से कितने सदस्य चुने जायेंगे, यह निश्चित रहता है। प्रत्येक निर्वाचक, म्युनिसपेलटी का सदस्य बनने के लिए उम्मेदवार हो सकता है। जिसके पक्ष में अधिक मत या 'वोट' आते हैं, वह सदस्य चुना जाता है। सदस्य 'म्युनिसपल कमिश्नर' कहलाते हैं। म्युनिसपल कमिश्नर होकर आदमी अपने नगर के सुधार तथा उन्नति का बहुत काम कर सकते हैं, उन्हें जनता की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। जो सज्जन शिक्षित हों और इस कार्य के लिए यथेष्ट समय देकर जनता की सेवा करना चाहें, उन्हें ही यह पद प्राप्त करना चाहिए। केवल प्रतिष्ठा के लिए 'म्युनिसपल कमिश्नर' बनना, और पीछे अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व ठीक तरह न निभाना अनुचित है।

सभापति, उपसभापति—सभापति म्युनिसपल बोर्ड के निर्वाचकों के प्रत्यक्ष मत से चुना जाता है। उपसभापति सदस्यों द्वारा ही चुना जाता है। इस पद के लिए प्रायः दो व्यक्ति चुने जाते हैं—एक सीनियर वाइस-चेयरमेन कहलाता है; दूसरा, जिसका पद इससे छोटा होता है, जूनियर वाइस-चेयरमेन

कहा जाता है। सभापति और उपसभापति अवैतनिक होते हैं, अर्थात् इन्हें कुछ वेतन नहीं मिलता; हाँ, दौरे का भत्ता दिया जाता है।

कर्मचारी—सभापति और उपसभापति के अतिरिक्त प्रत्येक म्युनिसपैलटी में कुछ वेतन पाने वाले कर्मचारी होते हैं। इनमें सेक्रेटरी का पद बहुत महत्व का होता है। वह म्युनिसपल आफिस का प्रधान कर्मचारी होता है। उसकी नियुक्ति तो म्युनिसपल कमेटी द्वारा ही होती है, परन्तु उसमें प्रायः शर्त यह रहती है कि उस आदमी को सरकार पसंद कर ले।

सफ़ाई के काम की देखभाल के लिए हेल्थ-आफिसर तथा सेनिटरी इन्स्पेक्टर, और मेहतरों के काम की निगरानी के लिए जमादार रहते हैं। नल या पानी के इन्तजाम के लिए तथा सड़क, पुल आदि की मरम्मत के लिए इन्जिनियर और ओवरसियर होते हैं। इनके अलावा कुछ और भी कर्मचारी रहते हैं।

म्युनिसपेलटियों के कार्य—साधारण तौर से म्युनिसपेलटियों के मुख्य कार्य ये हैं :—

(१) सर्वसाधारण की सुविधा की व्यवस्था करना। सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उन पर छिड़काव कराना और पेड़ लगवाना, डाक-बँगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना, कहीं आग लग जाय तो उसे बुझवाना, अकाल में या जल की बाढ़ या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना, व्यापार और उद्योग-धन्धों की उन्नति, मकान बनवाना या नगर-निर्माण योजना अमल में लाना, सिनेमाघर बनवाना, मजदूरों का कुशल-क्षेम।

(२) स्वास्थ्य-रक्षा। अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी बहने का प्रबन्ध करना, और छूत की बीमारियाँ रोकने के लिए उचित उपाय काम में लाना, पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलायी गयी है—इसका निरीक्षण करना, जनता की शारीरिक उन्नति के उपाय, व्यायाम आदि की व्यवस्था।

(३) शिक्षा। विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था करना, मेले और नुमायश करना।

(४) रोशनी (जिसमें बिजली की रोशनी भी सम्मिलित है) कराना, ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना।

कार्य पद्धति—म्युनिसपेलटी अपने कार्य की सुविधा के लिए सारा प्रबन्ध विविध कमेटियों द्वारा करती है। प्रत्येक कमेटी में प्रायः ५ से १० तक सदस्य होते हैं। हर एक कमेटी का एक सभापति होता है। कमेटियों की नियुक्ति बोर्ड स्वयं करता है। कमेटी में ऐसे आदमी भी मिला लिये जाते हैं जो म्युनिसपेलटी के सदस्य न हों, पर उस विषय में अनुभवी हों, जिसकी कि वह कमेटी है। ऐसे सदस्य को 'को-आप्टेड' या मिलाये हुए सदस्य कहते हैं। मुख्य कमेटियाँ निम्नलिखित होती हैं—(१) वित्त (फाइनेन्स) कमेटी, (२) शिक्षा कमेटी, (३) स्वास्थ्य कमेटी, (४) निर्माण-कार्य (पब्लिक वर्क्स) कमेटी, (५) चुङ्गी ('आक्ट्राय') कमेटी।

राज्य-सरकार म्युनिसपेलटी के काम की देखभाल और नियन्त्रण करती है। कमिश्नर बजट की जाँच करता है और अनुचित समझे जाने वाले खर्च को रोक सकता है।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य-मुख्य साधन ये हैं :—(१) चुङ्गी। अधिकतर उत्तर-भारत, बम्बई और मध्यप्रदेश में; यह इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आनेवाले माल तथा जानवरों पर लगती है। उत्तरप्रदेश में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ जिलों में म्युनिसपेलटियों का नाम ही चुङ्गी पड़ गया है। (२) मकान और जमीन पर कर (विशेषतया आसाम, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्यप्रदेश और पश्चिमी बंगाल में)। (३) व्यापार और पेशों पर कर (विशेषतया मद्रास, उत्तरप्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, और पश्चिमी बंगाल में)। (४) सड़कों और नदियों के पुलों पर कर (विशेषतया मद्रास, बम्बई, और आसाम में)। (५) सवारियों—गाड़ी, बग्घी, साइकिल, मोटर और नाव का शुल्क। (६) पानी, रोशनी, हाट-बाजार, कसाईखाने, पाखाने आदि का शुल्क (७) हैसियत,

जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर। यह कर निर्धारित दूरी से अधिक के फ़ासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (९) म्युनिसिपल स्कूलों की फीस। (१०) कांजी हौस की फीस।

इसके अतिरिक्त म्युनिसिपल बोर्डों को राज्य की सरकार से भी आर्थिक सहायता मिलती है और वे स्वयं भी व्यापार करके अपनी आय बढ़ा सकते है। प्रत्येक बोर्ड के पास कुछ निजी सम्पत्ति भी होती है, जिसे बेच कर या किराये पर देकर वह आय प्राप्त कर सकता है। राज्य-सरकार की अनुमति से वह नये कर भी लगा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वह उससे, अपनी स्थिति के अनुसार, ऋण भी ले सकता है।

खर्च और उसका ढङ्ग—म्युनिसपेलटियों का विशेष व्यय सार्वजनिक सुविधा, सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक शिक्षा, सामान्य प्रशासन में और आय एकत्रित करने में तथा ऋण चुकाने आदि में होता है। म्युनिपेलटियों द्वारा प्रति वर्ष लाखों रुपया खर्च किया जाता है। परन्तु बहुत सी म्युनिस-पेलटियों में संतोषप्रद कार्य नहीं होता। इसका मुख्य कारण म्युनिसपल कर्मचारियों तथा बोर्ड के सदस्यों की असावधानी, तथा अनुत्तरदायी ढंग से कार्य करना है। उन्हें अपनी स्वार्थपरता को छोड़कर ईमानदारी से काम करना चाहिए।

सरकारी नियन्त्रण—प्रायः म्युनिसपेलटियों को धन की बड़ी जरूरत रहती है। जिन कामों के लिए वे सरकार से सहायता लेती हैं, उनके सम्बन्ध में उन्हें सरकारी शर्तों का पालन करना पड़ता है। कुछ म्युसिपेलटियों को अपना वार्षिक बजट सरकार से स्वीकार कराना होता है, तथा कुछ के लिए यह आवश्यक है कि यदि वे कोई नया कर लगायें तो पहिले उसकी स्वीकृति ले लें। म्युनिसपेलटियों के कामों की देखरेख सरकार करती है, यदि किसी का काम ठीक न हो तो सरकार उसे तोड़ भी सकती है।

(ख) म्युनिसपल कारपोरेशन

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास शहरों में बहुत समय से म्युनिसपल कारपोरेशन स्थापित हैं। साधारण बोलचाल में इन्हें कारपोरेशन ही कहा जाता है। इनके कार्य तथा कार्यपद्धति आदि म्युनिसपेलटियों के ही सामान हैं; केवल इनका दर्जा ऊँचा है। बड़े शहरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के विचार से इनका संगठन प्रभावशाली बनाया जाता है। इनके सदस्यों का चुनाव तीन साल के लिए होता है। कारपोरेशन के चेयरमेन को 'मेयर' और वाइस-चेयरमेन को 'डिप्टी मेयर' कहते हैं। ये दोनों पदाधिकारी इसके सदस्यों में से ही चुने जाते हैं। इनका चुनाव प्रतिवर्ष होता है। इन्हें वेतन नहीं दिया जाता। कारपोरेशन अपने सारे कामों की देखरेख के लिए एक वैतनिक पदाधिकारी नियुक्त करती है, जिसे 'एक्जीक्यूटिव अफसर' कहते हैं। इसके अतिरिक्त एक इंजीनियर, स्वास्थ्य-अफसर, एक सहायक एग्जीक्यूटिव अफसर होते हैं। सब को कारपोरेशन स्वयं नियुक्त करती है, परन्तु राज्य-सरकार से इनकी मंजूरी लेनी होती है। कारपोरेशन अपने सदस्यों की विविध कमेटियों का संगठन करके उन्हें भिन्न-भिन्न कार्य बाँट देती है।

मध्यप्रदेश सरकार ने अपने राज्य में नागपुर, जबलपुर आदि मुख्य नगरों में म्युमिसपेलटियों की जगह कारपोरेशन स्थापित कर दिया है। उत्तरप्रदेश में कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, आगरा और लखनऊ में कारपोरेशन संगठित करने की योजना बनी है। म्युनिसपेलटी और कारपोरेशन का अन्तर समझ लेना चाहिए। कारपोरेशन का अध्यक्ष (मेयर) तथा सदस्य उसके रोजमर्रा के प्रबन्ध-कार्य तथा आय-व्यय में हस्तक्षेप नहीं करते। वे संस्था की नीति निर्धारित करते हैं। जिस प्रकार म्युनिसपल बोर्ड की समय-समय पर होनेवाली सभाओं में छोटी-से-छोटी नियुक्ति से लेकर बड़े से बड़े आर्थिक प्रश्नों पर विचार होता है, वैसा कारपोरेशन में नहीं होता। उसमें यह कार्य उसका चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर करता है, जो प्रायः सरकारी कर्मचारी होता है और जिसकी नियुक्ति, स्थानान्तरण (तबादला) आदि राज्य-सरकार ही करती है। वह कारपोरेशन को इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट आदि का काम भी दे सकती

है। कारपोरेशन स्थापित होने पर सरकार को मनोरंजन-कर आदि कुछ कर उसे दे देने होते हैं।

(ग) टाउन-एरिया और नोटिफाइड एरिया

जिन कस्बों की जनसंख्या दस हजार से लेकर बीस हजार तक होती है, उनकी स्थानीय शासन-संस्थाएँ 'टाउन-एरिया' कही जाती हैं, और जिनकी जनसंख्या पाँच हजार और दस हजार के बीच में होती है, उनकी स्थानीय शासन-संस्थाएँ 'नोटिफाइड एरिया' कहलाती हैं। ये अधिकतर पंजाब और उत्तरप्रदेश में हैं। इन्हें म्युनिसपेलटियों के थोड़े-थोड़े अधिकार होते हैं। ये अपने-अपने क्षेत्र में स्वच्छता, पीने के पानी का प्रबन्ध, सड़कों का प्रबन्ध, हानिकारक व्यापार एवं व्यवसाय पर नियंत्रण रखने आदि का कार्य करती हैं। म्युनिसपेलटियों की अपेक्षा इनकी आय कम होती है, और इनके अधिकतर सदस्य मनोनीत होते हैं।

टाउन-एरियां के लिए एक टाउन-कमेटी होती है। इसमें एक चेयरमेन, पाँच से सात तक चुने हुए सदस्य, और दो मनोनीत सदस्य होते हैं। इन सदस्यों की अवधि चार साल की होती है। इनका निर्वाचन तथा काम म्युनिसपेलटी के समान ही होता है।

नोटिफाइड एरिया के लिए तीन या चार सदस्यों की एक समिति होती है। इसके सदस्य या तो सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार, वोटरों द्वारा निर्वाचित होते हैं, या कमिश्नर द्वारा मनोनीत, या कुछ निर्वाचित और कुछ मनोनीत होते हैं। इसका चेयरमेन या तो सरकार द्वारा मनोनीत होता है या जनता द्वारा निर्वाचित। इसमें अन्य विविध कर्मचारी होते हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र का कार्य करते हैं।

इन समितियों के अधिकार और कर्तव्य सीमित होते हैं। ये केवल छोटे-छोटे कर—जैसे घर, भूमि, तथा जायदाद पर कर—लगा सकती हैं। प्रत्येक एरिया का एक फंड या कोष होता है। इसे नीचे लिखे स्रोतों से आय होती है:—न्यायालय द्वारा दिलवायी हुई रकम, करों की आय, जुर्मानों की आय, एरिया के कर्मचारियों द्वारा एकत्रित गोबर आदि की बिक्री की आय,

नजूल की भूमि का किराया, उसकी बिक्री की आय, जिला-बोर्ड और सरकार की दी हुई सहायता। इस कोष का रुपया सड़कों का निर्माण कराने, उनकी मरम्मत कराने, कुएँ तथा तालाब खुदवाने और उनको सुरक्षित रखने, पीने का पानी का प्रबन्ध करने, सफाई तथा रोशनी आदि का प्रबन्ध करने में और अपने क्षेत्र की उन्नति में खर्च किया जाता है। सरकारी कर्मचारी एस० डी० ओ० (सब-डिवीजन-अफसर) या तहसीलदार इनके कार्यों की देख-रेख करते हैं।

(घ) केन्टूनमेंट बोर्ड

बड़े नगरों के वे भाग, जिनमें सेना रहती है, म्युनिसपेलटी के अधिकार-क्षेत्र से बाहर होते हैं। ऐसे क्षेत्र की स्थानीय शासन-संस्थाएँ 'केन्टूनमेंट (छावनी) बोर्ड' कहलाती है। इसका सभापति कोई सरकारी कर्मचारी होता है। इस बोर्ड के अधिकार और कर्तव्य म्युनिसपेलटी की तरह के होते हैं। इसके प्रबन्ध पर अन्तिम नियंत्रण सेना-विभाग का रहता है।

(च) इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट

बड़े-बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी-कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे सड़कों को चौड़ी करना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, गरीबों और मजदूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना आदि। इन कामों को म्युनिसपेलटियाँ नहीं कर सकतीं; उन्हें तो अपना रोजमर्रा का काम ही बहुत है। अतः इनके वास्ते 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट' बनाये जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ और कानपुर आदि में हैं। इनके सदस्य प्रान्तीय सरकार, म्युनिसपेलटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामजद किये जाते हैं। इनकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। ट्रस्ट की बैठक साधारण-तया प्रति मास होती है। सदस्य अपने में से किसी को चेयरमेन चुन लेते हैं। ट्रस्ट एक वैतनिक सेक्रेटरी तथा अन्य कर्मचारियों को नियुक्त करता है। यह अपने अधिकारगत भूमि आदि का किराया या कीमत तथा आवश्यकता-नुसार ऋण या सहायता लेता है।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना इसलिए की जाती है कि वह शहर को या उसके खास-खास हिस्सों को नये ढंग से, एक निर्धारित योजना के अनुसार, बसाने का प्रबन्ध करे, जिससे घरों की बनावट में हवा और रोशनी का काफी ध्यान रखा जाय। शहर को नये ढंग से बसाने या उसमें कुछ परिवर्तन करने में उन लोगों को बहुत हानि भी सहनी पड़ती है, जिनके मकान गिराये जाते हैं और मुआवजे में मामूली रकम मिलती है। इसलिए अनेक स्थानों में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट का बहुत विरोध होता है। समर्थ लोगों को लोकहित की भावना से एक सीमा तक अपनी निजी हानि सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

(छ) पोर्ट ट्रस्ट

उन बड़े-बड़े नगरों में जो समुद्र के किनारे पर हैं—जैसे कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में—कारपोरेशन, तथा इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के अतिरिक्त पोर्टट्रस्ट भी स्थापित किये गये हैं। इन संस्थाओं का मुख्य कार्य, समुद्र के किनारे घाट बनवाना, मालगोदाम बनवाना, माल की लदाई और उतराई की समुचित व्यवस्था रखना, माल को गोदामों में सुरक्षित रखना और उसकी देखभाल रखना, यात्रियों की सुविधा का प्रबन्ध करना और बन्दरगाहों की अन्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। इन ट्रस्टों के सदस्य कुछ तो सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं, कुछ चेम्बर-आफ-कामर्स जैसी व्यापारिक संस्थाओं से और कुछ कार्पोरेशन द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सब पोर्टट्रस्टों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या मनोनीत सदस्यों से अधिक रहती है। समुद्रतट, नगर के निकटवर्ती समुद्र-भाग या नदी पर इनका अधिकार होता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहलाते हैं। उनके प्रबन्ध में सरकारी नियंत्रण अधिक रहता है। पोर्ट ट्रस्ट की आय के साधन ये हैं :—माल की लदाई और उतराई, गोदामों के किराये तथा जहाजों के कर। इन्हें आवश्यक कामों के लिए कर्ज लेने का भी अधिकार है।

स्थानीय शासन-संस्थाओं की आर्थिक स्थिति—पंचायतों के विषय में पहले लिखा जा चुका है। अधिकतर जिला-बोर्डों और म्युनिसिपल

बोर्डों को भी धन की कमी की शिकायत रहती है। आवश्यकता है कि वे अपने आय के साधनों का पूरा उपयोग करें, जितने कर या महसूल लगाने का उन्हें अधिकार है, उन्हें पूरी तरह वसूल करें। इसके साथ ही खर्च में जहाँ तक भी सम्भव हो, किफायत करें और अपने सामने अपनी आय से ही काम चलाने का सिद्धान्त रखें। केवल बड़ी-बड़ी या दीर्घकालीन योजनाओं के लिए ही उन्हें सरकार से सहायता मांगनी चाहिए। ऐसा होने पर ही वास्तविक स्वराज्य का अनुभव होगा।

विशेष वक्तव्य—जिस प्रकार राज्यों में विधान-मण्डल, मंत्रिपरिषद और न्यायपालिका हैं, और उनके ढंग पर अब गाँवों में गाँव-सभा, पंचायत और पंचायती अदालतों की स्थापना की गयी है, उसी प्रकार नागरिक क्षेत्रों के लिए भी इन तीनों प्रकार की संस्थाएँ स्थापित की जानी चाहिएँ, जिससे इनके निवासियों के सामने स्थानीय स्वराज्य का पूरा चित्र रहे और वे लोक-तन्त्री भावना और विकेन्द्रीकरण पद्धति का अनुभव और विकास करें। म्युनिसपेलटियों और कारपोरेशनों के सदस्यों को 'नगर-पिता' ('सिटी-फादर्स') कहा जाता है। यह याद रखते हुए सभी स्थानीय शासन-संस्थाओं के सदस्यों को चाहिए कि वे अपने-अपने क्षेत्र के निवासियों के हित और उन्नति में उसी प्रकार लीन रहें, जैसे एक सुयोग्य पिता अपनी प्यारी संतान के कल्याण-साधन में लगा रहता है।

तेइसवाँ अध्याय

सरकारी नौकरियाँ, (१) असैनिक

सरकारी कर्मचारी मंत्रिमंडल के न केवल हृदय और मस्तिष्क हैं, वरन् उनके हाथ, पाँव, कान और आँखें भी हैं, क्योंकि मंत्रिमंडल जनता की सेवा उनके द्वारा ही कर सकता है।

—भीमसेन सच्चर

सरकारी नौकरियाँ दो प्रकार की होती हैं—असैनिक (सिविल या मुल्की), और सैनिक या फौजी। यहाँ असैनिक सेवकों का विचार करते हैं।

असैनिक सेवकों का महत्व—लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली में मंत्रि-परिषद तो समय-समय पर बदला करती है परन्तु राज्य के कर्मचारी अपने स्थानों पर बने रह कर इस परिवर्तन से प्रशासन-कार्य में कोई अव्यवस्था होने से रोक सकते हैं। मंत्रिपरिषद का कार्य नीति निर्धारित करना होता है। राज्य के स्थायी कर्मचारी ही उस नीति के अनुसार शासन-कार्य चलाते हैं। इससे इनका महत्व स्पष्ट है। भारत अब स्वतंत्र हो गया है। तथापि सरकारी नौकरियों का ढांचा बहुत-कुछ वही है, जो अंग्रेजों के समय में था; अंग्रेजों की चलायी हुई कुछ परम्पराएँ अभी बनी हुई हैं। अंग्रेज सरकार सिविल सर्विस को शासन का 'फौलादी चौखटा' कहती थी। उसका संगठन केन्द्रित ढंग पर किया गया था जिससे जनता पर मजबूती से हकूमत हो सके। अधिकारियों में हकूमत की भावना भरी होती थी, इसीलिए यहाँ के शासन को नौकरशाही कहा जाने लगा था।

वर्तमान व्यवस्था—भारत के स्वतन्त्र होने पर 'इंडियन सिविल सर्विस' समाप्त कर दी गयी, अब उसकी जगह भारतीय शासकीय सेवा या 'इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' (आई० ए० एस०) की व्यवस्था की गयी

है। अब सब नियुक्तियाँ तथा परीक्षाएँ ट्रेनिंग आदि यहाँ ही होती हैं। सरकारी नौकरियाँ यहाँ की सभी जातियों तथा सम्प्रदायों के लिए समान रूप से खुली हुई हैं। स्त्रियाँ भी उन्हें प्राप्त कर सकती हैं, और कर रही हैं। अब सरकारी सेवाओं पर बाहरी नियंत्रण नहीं है। सब भारत-सरकार के प्रति ही उत्तरदायी है। देश अंग्रेज सिविलियनों से मुक्त हो गया है।

असैनिक सेवाओं के भेद—असैनिक सेवा निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त हैं—

१—अखिल भारतीय सेवाएँ। इनमें भारतीय प्रशासन सेवा और भारतीय पुलिस सेवा हैं। स्वतंत्रता के बाद 'इंडियन फारेन सर्विस' (भारतीय वैदेशिक सेवा) का संगठन और हुआ है। इन सेवाओं के आदमी देश भर में कहीं भी रखे जा सकते हैं।

२—संघीय सेवाएँ। इनमें रेलवे सेवा, भारतीय डाक व तार सेवा, भारतीय आयात-निर्यात सेवा, उच्चतम न्यायालय, भारतीय लोकसेवा आयोग आदि के कर्मचारी सम्मिलित हैं। ये पूर्णतया संघ-सरकार के अधीन हैं।

(३) राज्य-सेवाएँ। प्रत्येक राज्य में विविध असैनिक सेवाएँ हैं। इनमें विविध विभागों के पदाधिकारी होते हैं, यथा डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी सुपरिंटेन्डेंट पुलिस, जिला-स्कूल-इन्स्पेक्टर आदि। इनके नीचे सबार्डिनेट लोकसेवा वाले होते हैं, जैसे तहसीलदार, थानेदार, सरकारी स्कूलों के अध्यापक आदि। इनसे नीचे चपरासी आदि होते हैं।

कर्मचारियों सम्बन्धी नियम—संघ तथा राज्यों के कर्मचारियों की नियुक्ति आदि के नियम बनाने का अधिकार संसद तथा राज्यों के विधान-मंडलों को है। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल या राजप्रमुख को इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार उसी समय तक होगा, जब तक कि संसद या राज्यों के विधान-मंडल विधि द्वारा नियम न बना दें।

कोई भी व्यक्ति जो संघ की या राज्य की सेवा का सदस्य है, ऐसे किसी अधिकारी द्वारा अपने पद से नहीं हटाया जायगा, जो उसे नियुक्त करने वाले अधिकारी के नीचे है। पद से हटाये जाने से पहले उसे उसके विरुद्ध किये

हुए आक्षेपों का उत्तर देने का समुचित अवसर दिया जायगा। परन्तु यह अवसर इन दशाओं में नहीं दिया जायगा—(१) जब उक्त लोकसेवक को आचार के आधार पर दंड दिया गया हो। (२) जब पदच्युत करने वाला अधिकारी लिखित रूप से यह सूचित करदे कि उस व्यक्ति को उत्तर देने का अवसर मिलना व्यावहारिक नहीं है। (३) जब यथा-स्थिति राष्ट्रपति, राज्यपाल या राजप्रमुख को यह संतोष हो जाय कि राज्य की सुरक्षा के हित में उस व्यक्ति को ऐसा अवसर देना उचित नहीं है।

लोकसेवा आयोग, नियुक्ति और पद-निवृत्ति—पदाधिकारियों की नियुक्ति, उनकी योग्यता के अनुसार और निष्पक्ष रूप से की जाया करे, इस वास्ते संविधान में लोकसेवा आयोग या कमीशन की व्यवस्था की गयी है। संघ के लिए संघीय लोकसेवा आयोग, तथा प्रत्येक स्वायत्त राज्य के लिए एक राज्य-लोकसेवा आयोग होगा। यदि दो या अधिक राज्य अपने लिए मिल कर संयुक्त आयोग स्थापित करना चाहें तो उनकी विधान-सभाओं द्वारा इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार होने पर संसद विधि बना कर उनके लिए एक संयुक्त आयोग नियुक्त करने की व्यवस्था करेगी।

संघ के लोकसेवा आयोग तथा संयुक्त लोकसेवा आयोगों के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। राज्यों के लोकसेवा आयोगों के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल या राजप्रमुख के द्वारा होगी। प्रत्येक आयोग के सदस्यों में से आधे सदस्य ऐसे होंगे, जो भारत-सरकार अथवा राज्यों की सरकारों की अधीनता में कम से कम दस वर्ष किसी पद पर रहे हों। आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति छः वर्ष के लिए होगी, परन्तु किसी दशा में संघीय आयोग का सदस्य ६५ वर्ष की आयु, और संयुक्त तथा राज्य के आयोग के सदस्य ६० वर्ष की आयु होने के पश्चात् अपने पद पर नहीं रह सकेंगे। कोई सदस्य अपने सेवा-काल की समाप्ति के पश्चात् उसी पद पर पुनः नियुक्त नहीं किया जायगा। सदस्यों का वेतन उनके कार्यकाल में कम नहीं किया जा सकेगा।

लोकसेवा आयोग का कोई भी सदस्य स्वयं अपने पद से त्यागपत्र दे कर अलग हो सकता है; अथवा राष्ट्रपति उसे, उच्चतम न्यायालय द्वारा जाँच करवाने से दुराचारी या दुर्बल प्रमाणित होने पर, पदच्युत कर सकेगा। राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य को निम्नलिखित किसी आधार पर उसके पद से हटा सकेगा—(१) वह सदस्य न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया गया हो, (२) उसने अपने सेवा-काल में अपने पद का काम करने के अतिरिक्त कोई अन्य सवेतन काम किया हो, या (३) वह शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलता से पीड़ित हो।

आयोगों का कार्य और व्यय—संघीय और राज्यों के लोकसेवा आयोगों का प्रमुख कार्य सङ्घ तथा राज्य के सरकारी पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में उम्मेदवारों के लिए प्रतियोगिता-परीक्षाओं का संचालन व उनकी व्यवस्था करना होगा। सङ्घीय लोकसेवा आयोग का यह भी कर्तव्य होगा कि वह दो या अधिक राज्यों की प्रार्थना पर उनके लिए विशिष्ट योग्यता वाले उम्मेदवारों की नियुक्तियों के सम्बन्ध में योजनाएँ तैयार करे और उनके अनुसार कार्य-सम्पादन में योग दे।

सिविल (मुल्की) पदों और नौकरियों के सम्बन्ध में, सरकार सङ्घीय आयोग से, एवं राज्यों को सरकारें राज्यों के आयोगों से, निम्नलिखित विषयों में परामर्श लेंगी—नियुक्ति के तरीके, नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानान्तर के सिद्धान्त, अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही, पदाधिकारियों के दावे और अधिकार। अन्य नौकरियों के सम्बन्ध में, जिनमें अखिल भारतीय नौकरियाँ भी शामिल हैं, राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुख अपने-अपने क्षेत्र में नियम बना सकते हैं कि अमुक बातों में अथवा अमुक प्रकार की नौकरियों के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोग की राय लेनी आवश्यक नहीं है। ये नियम संसद या राज्य-विधान-मंडल के सामने रखे जायेंगे और वे इन्हें बदल सकते हैं, अथवा रद्द कर सकते हैं।

संघ या राज्य के पिछड़े समुदायों के नागरिकों के लिए निर्धारित सुरक्षित स्थानों तथा नियुक्तियों के सम्बन्ध में आयोगों से मन्त्रणा नहीं ली जायगी।

सङ्घीय कमीशन तथा राज्य-कमीशनों के कुल व्यय क्रमशः सङ्घ-सरकार और राज्य-सरकारों की संचित निधि से दिये जायेंगे; ये अनिवार्य मदों में हैं, अर्थात् इन पर संसद और राज्यों के विधान-मंडलों का मत नहीं लिया जायगा।

आयोगों का वार्षिक विवरण—सङ्घीय लोकसेवा आयोग राष्ट्रपति को अपने कार्य का वार्षिक विवरण देगा। राष्ट्रपति उस विवरण की एक प्रति और उसके साथ एक आवेदन-पत्र (जिसमें ऐसे मामलों की व्याख्या की जायगी, जिनमें आयोग की मंत्रणा स्वीकार नहीं की गयी) संसद के दोनों सदनों के संमुख प्रस्तुत करेगा। इसी भाँति संयुक्त आयोग अपना विवरण राष्ट्रपति को, और राज्य-आयोग राज्यपाल या राजप्रमुख को देंगे। इस प्रकार संसद एवं राज्यों के विधान-मंडल यह जान सकेंगे कि आयोग की सिफारिशों को सरकार कहाँ तक स्वीकार करती है, उसके कार्यों में कहाँ-कहाँ हस्तक्षेप करती है और कहाँ उसके परामर्श की उपेक्षा की गयी है।

आयोगों की सफलता—प्रत्येक आयोग के सदस्य उदार और विद्वान होने के साथ निष्पक्ष भी होने चाहिएँ। उन्हें लोकसेवा के लिए उम्मेदवारों को चुनते समय उनकी योग्यता, चरित्र और व्यवहार का ही ध्यान रखना चाहिए, ऊँची से ऊँची सिफारिशों को जरा भी महत्व न देना चाहिए। मन्त्रियों और अन्य उच्च पदाधिकारियों का भी कर्तव्य है कि वे आयोग के परामर्शों को यथाशक्ति मान्यता प्रदान करें और आयोग पर नियुक्ति के सम्बध में कभी भी दबाव न डालें।

सरकारी नौकरों का वेतन और सेवा-भाव—सरकारी नौकरी में सिर्फ वेतन की ही भावना रखना और सेवाभाव को मुख्य न समझना अनुचित है। फिर, भारतवर्ष में ऊँची नौकरियों का वेतन बहुत अधिक होना और उनके मुकाबले में नीचे कर्मचारियों को बहुत कम ही मिलना भी अनुचित है, सामाजिक अन्याय है। कितने ही अधिकारी अपनी वेतन से संतुष्ट न रह कर अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए अनुचित उपायों को काम में लाते हैं। कुछ लोग अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रिश्वत लेते है,

तो दूसरे लोभवश। जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं की तो फिर भी एक सीमा है, परन्तु लोभ की तो कोई सीमा ही नहीं। निदान, सरकारी नौकरों द्वारा रिश्वत (इसे डाली, भेंट, उपहार आदि नाम दिये जाते हैं) लिया जाना साधारण बात हो गयी है। सरकारी नौकर की कुछ-न-कुछ 'ऊपर की आमदनी' होनी चाहिए! कैसा पतन है! उच्च कोटि के नेताओं को अपने उदाहरण से त्याग और सेवा-भाव का वातावरण बढ़ाना चाहिए।

आवश्यकता है कि उच्च अधिकारियों के वेतन में काफी कमी की जाय। और, जो बचत हो, उसका दो प्रकार से उपयोग किया जाय—एक तो निम्न कर्मचारियों का वेतन बढ़ाकर उनके तथा उच्च अधिकारियों के वेतन की विषमता हटायी जाय; दूसरे, जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि के साधन जुटाकर देश की दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाय।

विशेष वक्तव्य—सरकारी नौकरों में—वे किसी भी पद पर हों—साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, या स्वार्थ-सिद्धि की भावना न होनी चाहिए। उन्हें राजनैतिक या अन्य प्रकार की दलबन्दी में न पड़ कर नैतिक सिद्धान्तों का ध्यान रखते हुए समाज तथा राज्य के प्रति अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। उनमें सेवा तथा सदाचार की यथेष्ट भावना होनी चाहिए। यह आवश्यकता है कि सभी नियुक्तियाँ तटस्थ रीति से, योग्यता और सेवा-भाव के आधार पर, पब्लिक सर्विस कमीशन (लोक सेवा आयोग) द्वारा हों। इस विषय में उपेक्षा होने से जनता को पक्षपात की आशंका होती है। इसका अवसर न आने देना चाहिए।

चौबीसवाँ अध्याय

सरकारी नौकरियां, (२) सैनिक

किसी भी देश की शक्ति को उसकी सैन्य शक्ति से नहीं आँका जाना चाहिए। सेना की संख्या कितनी ही अधिक हो, उसके हथियार और साधन कितने ही उत्कृष्ट कोटि के हों, लेकिन अगर जनता का सहयोग और शक्ति उसे प्राप्त नहीं है तो वह कभी सफल नहीं हो सकती, वह जन-हितकारी नहीं हो सकती, वह देश के प्रति अपने सच्चे कर्तव्य का पालन भी नहीं कर सकती।

—जनरल करिअप्पा

नागरिकों को साधारणतया असैनिक सेवकों से ही विशेष काम पड़ता है, तथापि सैनिक सेवकों के विषयों में भी उन्हें कुछ बातें जाननी चाहिएँ; खासकर इस लिए कि अब देश स्वतंत्र है, और इसकी रक्षा का दयित्व हम पर ही है।

सेना की आवश्यकता क्यों?—समाज-व्यवस्था में किसान, मजदूर, कारीगर, अध्यापक और कलाकार आदि की आवश्यकता तो स्पष्ट है, पर उसमें सेना का स्थान क्यों? यह संसार कैसा सुखी हो, यदि सब देशों के आदमी एक दूसरे से प्रेम और सहयोग का व्यवहार करें! लोभ, स्वार्थ या अहङ्कार वश कोई दूसरे पर आक्रमण न करे और इस प्रकार किसी को अपनी रक्षा की भी चिन्ता न रहे। पर यह तो कल्पना है, भविष्य की आशा है! वर्तमान वातावरण में, आक्रमण के लिए न सही, अपनी रक्षा की दृष्टि से सेना का महत्व सब के लिए है। गांधी जी जैसे मानव-प्रेमियों के विचार से हिंसक सैनिकों के बजाय शान्ति सेना की ही व्यवस्था होनी चाहिये (इस

विषय में खुलासा आगे के एक अध्याय में लिखा जायगा); जब तक इस विचारधारा को यथेष्ट बल न मिले, हिंसक सेना का ही बोलबाला रहेगा।

भारतीय सैनिक व्यवस्था—भारतीय सेना की व्यवस्था के लिए भारतीय संघ की मंत्रिपरिषद में एक रक्षा-मंत्री रहता है। उसके अतिरिक्त मंत्रिपरिषद की एक रक्षा-समिति है। इसका सभापति प्रधान मंत्री होता है और अन्य तीन सदस्य—उपप्रधान मंत्री, अर्थ मन्त्री, रक्षा मन्त्री हैं। यातायात मन्त्री भी अपनी व्यक्तिगत हैसियत से इसमें सम्मिलित हैं। देश की सैनिक नीति निर्धारित करने का कार्य इस समिति के हाथ में है परन्तु इसका निर्णय मन्त्रिपरिषद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है, और उसका निर्णय अन्तिम होगा।

रक्षा-सचिवालय के अधीन भारत की सेना के तीनों अङ्ग हैं—थल-सेना, जल-सेना और वायु-सेना। तीनों अंगों के अलग-अलग सेनापति हैं, जो अपने-अपने विभाग का संचालन करते हैं। प्रत्येक अंग का प्रधान कार्यालय देहली में स्थित है। इसके अंतर्गत, व्यवस्था की दृष्टि से और कई विभाग हैं, जो सैनिकों की भर्ती और उनके लिए शस्त्रास्त्र, अन्य आवश्यक वस्तुओं एवं खाद्यान्न आदि की व्यवस्था करते हैं।

सैनिकों की भर्ती, सैन्य संचालन, सैन्य विसर्जन आदि का कार्य एडजूटेंट जनरल का विभाग करता है। सेना सम्बन्धी निर्माण-कार्य के लिए सेना का इंजिनियरिंग विभाग अलग है। सैन्य दल की गति तथा उनके भोजन एवं निवास आदि की व्यवस्था 'क्वार्टर मास्टर जनरल' का विभाग करता है। सैनिक कार्यवाही के लिए सैन्य संचालन विभाग है।

थल सेना—भारत की थल सेना में इस समय तीन कमांड हैं। (१) पूर्वी कमांड (केन्द्र राँची) (२) पश्चिमी कमांड (केन्द्र दिल्ली) (३) दक्षिणी कमान्ड (केन्द्र पूना)। थल सेना का पूर्ण रूप से भारतीयकरण हो गया है; अब किसी भी कार्यवाहक पद पर विदेशी अफसर नहीं हैं। भर्ती के सम्बन्ध में सैनिक-असैनिक जातियों का भेद-भाव समाप्त कर दिया गया है।

जल सेना—विभाजन के कारण भारतीय नौसेना बहुत कमजोर हो गयी थी। उसे ठीक करने तथा उसका राष्ट्रीयकरण करने के लिए सरकार ने एक दस-वर्षीय कार्यक्रम स्वीकार किया है। विशेष ध्यान संगठन की ओर दिया जा रहा है। नौ-सैनिक अधिकारियों के सम्बन्ध में हमें अभी एक सीमा तक इंग्लैंड पर निर्भर रहना पड़ता है, परन्तु नाविकों और अन्य नौ-सैनिकों की सम्पूर्ण आवश्यकता यहाँ ही पूरी हो जाती है। बिजगापट्टम के नौ सैनिक कालिज की योजना अमल में आने पर भारतीयों को नौसैनिक ट्रेनिंग के लिए इंगलैंड भेजने की जरूरत नहीं रहेगी।

हवाई सेना—आधुनिक युग में स्थल सेना और नौ सेना की अपेक्षा हवाई सेना का महत्व बढ़ता जा रहा है। इसका प्रारम्भ १ अप्रेल १९३३ को हुआ था। १९४७ से भारतीय वायु सेना देश की हवाई प्रतिरक्षा करने की शिक्षा में उत्तरोत्तर प्रगति कर रही है। इस सेवा के लिए अब प्रशिक्षण की पूर्ण व्यवस्था भारत में ही हो गयी है।

शांतिकाल में भारतीय वायु सेना ने आसाम में बाढ़ तथा भूकम्प-ग्रस्त क्षेत्रों में अन्न पहुँचा कर महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सैनिक शिक्षा—देश की रक्षा का कार्य अच्छी तरह तभी किया जा सकता है, जब कि सेना के अफसरों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध हो। योग्य उम्मेदवारों के चुनाव के लिए 'सिलेक्शन बोर्ड' की स्थापना की गयी है, जो शिक्षा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यक परीक्षाओं के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षा भी लेते हैं। इससे यह लाभ होता है कि मनुष्य के चरित्र, धैर्य्य आदि का पता लग जाता है, जिसकी, सेना में भारी आवश्यकता होती है। इस दिशा में सेना, वायु सेना तथा नौ-सेना के शिक्षार्थियों को सम्मिलित रूप से प्रशिक्षण प्रदान करने का एक नया प्रयोग किया जा रहा है, जिससे कि इन सेवाओं में परस्पर सहयोग की भावना को प्रोत्साहन मिले। पिछले चार वर्षों से यहाँ प्रशिक्षण कार्य चल रहा है। तीनों सेवाओं के उच्च सैन्य अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है और एक तरह से देहरादून की एकडेमी द्वारा आरम्भ किया गया कार्य यहाँ पर पूर्णता को पहुँचाया जाता है।

दूसरी पंक्ति—अग्रगामी एवं प्रथम पंक्ति की प्रतिरक्षा सेना के साथ-साथ दूसरी पंक्ति कायम रखना भी अत्यन्त आवश्यक माना गया है, क्योंकि इससे युद्ध में हानि आदि होने पर द्वितीय पंक्ति सहायता के लिए तत्पर रहती है। भारत में प्रादेशिक सेना का उद्देश्य भी यही है। इसकी स्थापना (१९४९) के बाद अब तक इसमें पर्याप्त विकास तथा प्रगति हुई है। पहले जो प्रादेशिक सेना थी, उसमें केवल स्थल सेना के दस्ते रहते थे, लेकिन अब इसमें सेना की तीनों शाखाओं के दस्ते रहेंगे। इसमें दो प्रकार की इकाई (यूनिट) होंगी—प्रान्तीय और शहरी। प्रान्तीय इकाइयों की भर्ती देहाती क्षेत्रों से होगी। ट्रेनिंग प्राप्त कर लेने पर यह सेना न केवल नियमित सेना की सहायक के रूप में काम करेगी वरन् दूसरी रक्षा-पंक्ति के रूप में देश की समुद्रवर्ती तथा हवाई रक्षा व्यवस्था को भी संभालेगी, तथा संकट-काल में देश की शान्ति-रक्षा का कार्य स्वयं संभाल कर नियमित ('रेग्यूलर') सेना को अधिक महत्व के कार्यों के लिए मुक्त करेगी।

राष्ट्रीय सैनिक शिक्षा-दल (नेशनल केडेट कोर) देश के युवकों को सैन्य प्रशिक्षण से परिचित कराने और उनमें अनुशासन की भावना पैदा करने के दृष्टिकोण से आरम्भ किया गया था। आरम्भ से ही इसने स्कूल-कालेजों के छात्रों को बहुत आकर्षित किया है। इसमें एक नौ-सैनिक शाखा भी बढ़ा दी गयी है।

सेना और सामाजिक कार्य—विदेशी शासन के हटने से जनता और सैनिकों को एक-दूसरे से अलग करने वाली विदेशी सत्ता की खाँई पट गयी है। अब सेना का जनता से यथेष्ट सम्पर्क और सहयोग रहना चाहिए। जो सैनिक सड़कें, पुल आदि तैयार करने में कुशल हों, वे शान्ति-काल में देश के निर्माण-कार्य में योग दें; इसी प्रकार सैनिक चिकित्सक शान्ति के समय देश में स्वास्थ्य और चिकित्सा की उन्नति में सहायक हों। इससे देश का व्यय-भार बढ़े विना ही बहुत-सा लोकोपयोगी कार्य होता रहेगा। सेना इस दिशा में सहयोग दे रही है। गत वर्षों में बाढ़, भूकम्प, दुर्भिक्ष, टिड्डी दलों के आक्रमण आदि के अवसरों पर सेना ने पूर्ण तत्परता से सहायता

पहुँचायी और पीड़ित जनता को अपार कष्टों से मुक्त किया। इस मानव-हित के कार्य के अतिरिक्त सैन्य दलों ने अधिक अन्न उपजाने, वृक्ष लगाने आदि के कार्य में भी पर्याप्त भाग लिया।

विशेष वक्तव्य—स्मरण रहे कि सेना की शक्ति चाहे जितनी हो, उसकी सफलता जनता के सहयोग पर निर्भर है। राष्ट्र की वास्तविक शक्ति राष्ट्र की जनता है। जनता का नैतिक स्तर, आर्थिक और औद्योगिक स्वावलम्बन, किसी भी कीमत पर अपनी आजादी को न बेच डालने का दृढ़ संकल्प, हर हालत में अपनी आजादी की रक्षा करने और साथ ही दूसरों का शोषण न करने और उन्हें गुलाम न बनाने का निश्चय ही राष्ट्र की रक्षा करता है और उसे उन्नत और समृद्धिशाली बनाता है। ऐसी जनता का नैतिक बल पाकर ही सेना अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकती है। इसलिए जनता और सेना में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और सहयोग भाव बना रहना आवश्यक है।

पच्चीसवाँ अध्याय

राजभाषा और राजचिन्ह आदि

संविधान-निर्माण में राष्ट्र-भाषा का प्रश्न कितना टेढ़ा था! पर इस समस्या का भी हमने सफल और संतोषजनक समाधान कर लिया।

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

हमारा झंडा सब लोगों की स्वाधीनता का प्रतीक है, यह जहाँ कहीं भी जायगा, वहाँ यह उन देशों की जनता को भ्रातृत्व का सन्देश देगा, उन्हें यह बतायेगा कि भारत विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है, और वह स्वाधीनता प्राप्त करने वाले सब लोगों की सहायता करना चाहता है।

—जवाहरलाल नेहरू

राजभाषा सम्बन्धी समझौता—स्वाधीन भारत में राजभाषा क्या हो, इस विषय पर संविधान सभा में तीन पक्ष थेः—अंग्रेजी, हिन्दी और हिन्दुस्तानी। कई बार यह प्रश्न उपस्थित हुआ और स्थगित हुआ। अंग्रेजी के पक्ष में जनता का बहुत ही कम भाग था, परन्तु क्योंकि वह बहुत अर्से से राजभाषा रहती आयी थी, पढ़े-लिखे विद्वानों में से उसके पक्ष में काफी थे, और सरकारी विभागों और संस्थाओं में तो बहुधा उनका ही बहुमत होता है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के जो सज्जन हिन्दी कम जानते थे, वे भी अंग्रेजी को अधिक-से-अधिक समय तक राजभाषा बनाने के इच्छुक रहे। इधर, संविधान सभा में कुछ प्रमुख व्यक्ति, खासकर कांग्रेस-कार्यकर्ता और म० गांधी के अनुयायी हिन्दुस्तानी के समर्थक रहे। इससे कोई सर्वमान्य निर्णय करना बहुत कठिन हो गया। आखिर, किसी तरह समझौता किया गया—संविधान में हिन्दी और देवनागरी को मान्यता देते हुए कुछ उपबन्धों की रचना की गयी।

संघ की भाषा—संविधान के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी, और राजलिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का 'अंतर्राष्ट्रीय रूप'होगा (अर्थात् 1, 2, 3, 4, 5 आदि), किन्तु संविधान लागू होने के १५ वर्ष तक (२६ जनवरी १६६५ तक) अंग्रेजी भाषा संघ की राजभाषा के रूप में उन सब कार्यों के लिए प्रयुक्त की जायेगी, जिनके लिए संविधान के पूर्व प्रयुक्त की जाती थी। राष्ट्रपति को अधिकार है कि इस अवधि के अन्दर ही वह अंग्रेजी के साथ हिन्दी भाषा का, और भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ देवनागरी रूप का प्रयोग करने का, अधिकार प्रदान कर दे।

इसके अतिरिक्त संसद को अधिकार है कि वह १५ वर्ष पश्चात् भी विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा को, अथवा अंकों के देवनागरी रूप को संघ के कार्यों में प्रयुक्त करने की व्यवस्था करे।

राज्यों की भाषाएँ—प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल को अधिकार है कि वह अपने यहाँ प्रचलित एक या कई भाषाओं को या हिन्दी को अपनी राजकीय भाषा, अथवा कुछ विशेष कार्यों में प्रयोग की जाने वाली भाषा, स्वीकार करे। जब तक राज्य का विधान-मंडल ऐसा निश्चय नहीं करता, तब तक अंग्रेजी ही उन स्थानों पर प्रभुयुक्त होती रहेगी, जहाँ वह पहले प्रयुक्त होती थी।❀

संघ और राज्यों के बीच एवं राज्यों-राज्यों के बीच वही भाषा काम में लायी जायेगी, जो अब तक अधिकृत भाषा के रूप में प्रयोग में लायी जाती रही है। दो राज्य आपस में समझौते द्वारा यह तय कर सकते हैं कि उनके बीच हिन्दी राजकीय कार्यों के लिए प्रयोग में लायी जाय।

❀ बिहार सरकार ने यह घोषित किया है कि नवम्बर १६५७ तक उसका सारा सरकारी कार्य अंग्रेजी के बजाय हिन्दी में होने लगेगा। जरूरत है कि वह उस समय तक केन्द्र से भी सब लिखा-पढ़ी हिन्दी में ही करने लगे; तथा अन्य राज्य भी इसका अनुकरण करें।

यदि किसी राज्य के अल्पसंख्यक जो वहाँ की जनसंख्या का एक पर्याप्त भाग हों, यह मांग करें कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को समस्त राज्य में या उसके एक भाग में मान्यता प्रदान हो; तो वे राष्ट्रपति से ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं। यदि राष्ट्रपति आदेश दे तो उस राज्य को वह भाषा मान्य करनी होगी।

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा—जब तक संसद विधि बनाकर अन्य कोई व्यवस्था न करे तब तक उच्चतम न्यायालय और समस्त उच्च न्यायालयों की कार्यवाही, विधेयक, अथवा उन पर प्रस्तावित किये जाने वाले संशोधन, अधिनियम, आदेश, नियम, आदि की भाषा अंग्रेजी रहेगी।

राज्य का राज्यपाल अथवा राजप्रमुख राष्ट्रपति की अनुमति से हिन्दी भाषा का, या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का, प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों के लिए अधिकृत ठहरा सकेगा, परन्तु उच्च न्यायालय अपने निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश अंग्रेजी में ही देगा।

यदि किसी राज्य का विधान-मंडल अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को विधेयकों, अधिनियमों तथा अध्यादेशों में प्रयुक्त की जाने की आज्ञा प्रदान कर देता है तो उन सब का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में राजकीय सूची-पत्र में निकलवाना अनिवार्य होगा।

संविधान लागू करने के १५ वर्ष तक भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त उपबन्धों में संशोधन करने वाला कोई भी विधेयक संसद में, राष्ट्रपति की अनुमति के बगैर, प्रस्तावित न किया जा सकेगा। राष्ट्रपति भी यह अनुमति भाषा सम्बन्धी आयोग के परामर्श से ही प्रदान कर सकेगा।

राजभाषा के लिए आयोग और समिति—राष्ट्रपति इस संविधान के आरम्भ होने के पाँच वर्ष पश्चात्, और १० वर्ष पश्चात् ऐसे आयोग का सङ्गठन करेगा जो निम्नलिखित विषयों पर उसे परामर्श प्रदान करेंगे :—

१—संघ के सरकारी कार्यों में हिन्दी भाषा का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग;

२—संघ के समस्त या कुछ राजकीय कार्यों में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध;

३—उच्चतम न्यायालय, और उच्च न्यायालयों में तथा संसद और विधान-मण्डलों में प्रयोग की जाने वाली भाषा;

४—सङ्घ सरकार के राजकीय कार्यों में प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप;

५—संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा दो या अधिक राज्यों के बीच प्रयुक्त की जाने वाली भाषा सम्बन्धी कोई विषय, जिसे राष्ट्रपति निश्चय करे।

आयोग में एक सभापति तथा अन्य ऐसे सदस्य होंगे, जो निम्नलिखित भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हों :—आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, मलायलम, मराठी, उड़िया, पञ्जाबी, संस्कृत, तामिल, तेलगू, और उर्दू।

आयोग की सिफारिशों पर राष्ट्रपति को सम्मति देने के लिए तीस सदस्यों की एक संसद-समिति होगी, उसमें बीस तो लोकसभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य-परिषद के। ये सदस्य क्रमशः लोकसभा के सदस्यों तथा राज्य-परिषद के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे। इस समिति की सम्मति के आधार पर राष्ट्रपति ऐसे आदेश देगा, जिनसे राजकीय भाषा सम्बन्धी उपबन्धों में परिवर्तन हो।

विशेष निर्देश—प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि अपनी किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी को यथा-स्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भी भाषा में आवेदन-पत्र दे।

संविधान में इस बात का निर्देश किया गया है कि संघ हिन्दी भाषा का प्रचार बढ़ाये और उसका इस तरह विकास करे कि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब अंगों को जाहिर करने का साधन बन सके; और उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना जो-जो रूप, जो शैली और जो पदावली

(मुहावरे) हिन्दुस्तानी में और भारत की अन्य मान्य भाषाओं में काम में आते हैं, उनको अपनाते हुए तथा जहाँ आवश्यक हो, उसकी शब्दावली के लिए खासकर संस्कृत से और गौण रूप से दूसरी भाषाओं से शब्द लेकर उसे समृद्ध (मालामाल) करे।

हमारा उत्तरदायित्व—संविधान में हिन्दी को राजभाषा बनाने के साथ के जो शर्तें या बन्धन लगाये गये हैं, उनके सम्बन्ध में बहुत से हिन्दी-प्रेमियों को बड़ा असन्तोष है। देवनागरी लिपि में रोमन लिपि के अंकों का समावेश होना तो बड़ा ही अजीब और बेमेल है; और भी उपबन्ध अरुचिकर हैं। हमें इस विषय में जबानी शोरगुल न करके अपने कर्तव्य-कार्य पर ध्यान देना चाहिए :—

१—जो सज्जन वास्तव में हिन्दी-प्रेमी हैं, और देश का हित चाहते हैं, वे यथा-सम्भव हिन्दी की सेवा में समय और शक्ति लगायें, जिससे हिन्दी में सभी विषयों की बढ़िया-बढ़िया रचनाएँ मिल सकें और साहित्य के सब अंगों की पूर्ति हो।

२—दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा, और देवनागरी लिपि के प्रचार का जो कार्य गत वर्षों में हुआ है, उसकी गति और तेज की जानी चाहिए। प्रेम-पूर्वक ऐसा प्रयत्न और प्रचार होना चाहिए कि सब भारतीय भाषाएँ देवनागरी लिपि में ही लिखी जाया करें; इस प्रकार सारे भारतीय संघ की एक ही लिपि हो जाय।

३—अहिन्दी प्रान्तों में प्रचार करने के लिए कुछ स्वार्थ-त्यागी सज्जनों को जुट जाना चाहिए।

४—पारिभाषिक शब्दों के संग्रह और संकलन के लिए सरकार जो कार्य करे, उसमें क्रियात्मक सहयोग दिया जाना चाहिए।

५—संस्कृत से हमें बहुत से शब्द लेने ही हैं, परन्तु भाषा के विषय में, हमारे मन में कोई कट्टरता या साम्प्रदायिकता न हो। जिन शब्दों का अब तक हम उपयोग करते रहे हैं, जो हमने धीरे-धीरे पचाये और अपनाये हैं, उनके वहिष्कार की बात न सोचें, चाहे वे अपने मूल रूप में किसी भाषा के

हों। विशेष आवश्यकता होने पर हम कुछ विदेशी शब्दों को लेने में संकोच न करें; हाँ, उनका इस्तेमाल इस तरह करें जैसे कि वे हमारी भाषा के हों। हमारी भाषा यथा-सम्भव सरल हो।

६—प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य से हमारा सम्पर्क और आदान-प्रदान बढ़ना चाहिए।

७—हिन्दी को ऊँचे दर्जे की बनाने के लिए हमें स्वयं अपने आपको भी कुछ ऊँचा उठाना होगा। हमारा साहित्य हमारे तप, त्याग और सेवा का परिचायक हो।

राजचिन्ह; अशोक स्तम्भ

भारतीय जनतन्त्र का राज़चिन्ह सारनाथ के अशोक-स्तम्भ की, शेरों के निशान वाली, चोटी का प्रतिरूप है। २६ जनवरी १९५० से सरकारी इमारतों आदि पर इसने मुकट या ताज का स्थान ग्रहण कर लिया है।

इस चिन्ह के ऊपर के हिस्से में तीन सिंह हैं, और इसके केन्द्र में धर्मचक्र, दायें एक बैल, बायें एक घोड़ा तथा नीचे दोनों पहलुओं में धर्मचक्रों की रेखाएँ हैं। नीचे देवनागरी लिपि में 'सत्यमेव जयते' (सत्य की ही जीत होती है) आदर्श-वाक्य लिखा है। यह वाक्य मुंडक उपनिषद से लिया गया है। गाँधी जी का यह आधार-भूत सिद्धांत रहा है, और सभी धर्मों के अनुयायियों को यह मान्य है।

ईसा से लगभग सौ वर्ष पूर्व अशोक ने यह स्तम्भ सारनाथ में उस स्थान पर बनवाया था, जहाँ बुद्ध ने सर्वप्रथम अहिंसा और प्रेम का अपना सन्देश संसार को सुनाया था। प्राचीन सभ्यता और सहिष्णुता तथा गाँधी जी के उपदेशों को प्रोत्साहन देने का भारत ने जो संकल्प किया है, यह राज-चिन्ह उसी के अनुरूप है। धर्मचक्र, न्यायचक्र का प्रतीक है; यह राष्ट्र-ध्वज पर भी अंकित है।

जनतन्त्रीय पताका

भारत का झंडा भारत की स्वाधीनता का प्रतीक है। गाँधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिए भारत के अहिंसात्नक संग्राम की महान कथा इसके साथ जुड़ी हुई है।

१५ अगस्त १६४७ से 'यूनियन जैक' के स्थान पर जो तिरंगा झंडा सरकारी भवनों पर फहराया गया, वह २२ जुलाई १६४७ को संविधान-सभा द्वारा राष्ट्र-ध्वज के रूप में स्वीकार किया गया था। इसकी लम्बाई और चौड़ाई में ३ और २ का अनुपात है। इसमें गहरे केसरिया, श्वेत और हरे रंग की बराबर-बराबर पट्टियाँ हैं, और बीच की पट्टी में गहरे नीले रंग में एक चक्र बना हुआ है। कांग्रेस के झंडे में चर्खा रहता था; उसकी जगह चक्र करने का कारण यह था कि ध्वज का एक ओर का प्रतीक दूसरी ओर भी ठीक वैसे ही होना चाहिए।

चक्र, चर्खे जैसा ही है किन्तु इसमें तकुआ और माल नहीं है। चक्र को सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के सिंहांकित शीर्ष-भाग से लिया गया है। इसे लेने के कई कारण थे। कलात्मक होने के अतिरिक्त धर्म-चक्र, भारत की युगों पुरानी परम्परा और अमर संस्कृति का प्रतीक है; और महाराज अशोक के साथ, जिन्हें केवल भारत में ही नहीं किन्तु चीन, तिब्बत और अन्य एशियाई देशों में भी स्मरण किया जाता है, इसका सम्बन्ध है।

राष्ट्रपति का नवीन ध्वज

२६ जनवरी १६५० से सरकारी भवन के कंगूरे पर भारतीय जनतन्त्र के राष्ट्रपति का नवीन ध्वज फहराता है। सांकेतिक चिन्हों द्वारा यह खूब कलापूर्ण बना दिया गया है, और ये सांकेतिक चिन्ह भारत के गौरवमय अतीत एवं संस्कृति के विभिन्न युगों का निर्देश करते हैं।

यह ध्वज लाल और नीले रंग के चार आयतों में विभक्त है, जिसमें कर्णवत आमने-सामने के आयतों का रंग एक ही है। इन चार आयतों में से एक-एक में राजचिन्ह, हाथी, तुला, और पूर्ण घट सुनहरी रंग में अंकित होंगे। राजचिन्ह अर्थात् तीन सिंह सहित अशोक-स्तम्भ और पूर्ण घट सारनाथ (ईसा से एक शताब्दी पूर्व) से, हाथी अजन्ता के चित्रों (पाँचवीं शताब्दी) से और तुला लालकिला (सत्रहवीं शताब्दी) दिल्ली से लिया गया है। अशोक-

स्तम्भ चिन्ह एकता, समानता और भ्रातृत्व का, अजन्ता का हाथी सहिष्णुता और बल का, तुला न्याय और मितव्ययता का, तथा पूर्ण घट सुख-समृद्धि का द्योतक है।

इसी प्रकार प्रांतीय गवर्नरों और राजप्रमुखों के भी अलग-अलग ध्वज हैं। इनमें केसरिया भूमि पर राजचिन्ह, तथा राज्य का नाम देवनागरी लिपि में अङ्कित है।

विशेष वक्तव्य—भारत-सरकार ने अपने झंडे और राजचिन्ह में अशोक कालीन भारतीय संस्कृति के प्रतीकों को अपनाया है। परन्तु कोई सरकार केवल राष्ट्र-ध्वज या राजचिन्ह के बल पर नहीं बनती या पुष्ट होती। हम स्मरण रखें कि अशोक जिस राज्य का शासक था, उसका निर्माण करने वाला चाणक्य (कटिल्य) था, जो अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधान मंत्री होते हुए भी लँगोटीबन्द महात्मा की तरह एक झोपड़ी में रहा करता था। क्या भारत का प्रधान मन्त्री या राज्यों के मुख्य मन्त्री, अन्य मन्त्री तथा विविध उच्च पदाधिकारी चाणक्य को अपना आदर्श बना सकेंगे? स्वेच्छापूर्वक त्याग का मार्ग बहुत कठिन होता है, पर सेवा-धर्म निभाना आसान बात नहीं है; और हमें शासन को वास्तव में सेवा-धर्म ही तो समझना चाहिए।

छब्बीसवाँ अध्याय

संविधान की आलोचना

भारतीय स्वराज्य का अर्थ कुछ थोड़े पदाधिकारियों का राज्य नहीं, वह तो छत्तीस करोड़ जनता का राज्य होगा। उसमें राष्ट्रपति, गवर्नरों और मंत्रियों आदि को ऐसा सेवामय जोवन बिताना होगा कि वे जन-साधारण से घुलमिल जायँ, वे अपने वैभव और विलासिता को छोड़ कर लोकहित में लगे रहें। अगर हमारे संविधान से भूमिपुत्रों या किसानों और मजदूरों को यथेष्ट सुख, स्वाभिमान और सुविधाएँ नहीं मिलतीं तो संविधान का पांडित्य किस काम का !

—लेखक

पहले की कही हुई बातों का उल्लेख—संविधान की नीचे लिखी आलोचनाओं के सम्बन्ध में, पुस्तक में प्रसंगानुसार लिखा जा चुका है—

१—संविधान सभा का संगठन बहुत संकुचित प्रतिनिधित्व के आधार पर हुआ, वह बालिग मताधिकार के आधार पर होना चाहिए था। [देखिए, अध्याय ४]

२—यह संविधान बहुत बड़ा और जटिल है। [देखिए, अध्याय ५]

३—संविधान में कई मूल अधिकार एक हाथ से देकर, दूसरे से ले लिये गये हैं। [देखिए, अध्याय ७]

४—शासन को केन्द्रित किया गया है; राष्ट्रपति में तानाशाही प्रवृत्ति हो सकती है। [देखिए, अध्याय ५ और १०]

५—संविधान में राज्यों की आन्तरिक स्वतंत्रता पर आघात पहुँचाया गया है। [देखिए, अध्याय ५ और १८]

६—संविधान कठोर है, इसमें परिवर्तन आसानी से नहीं हो सकता।
[देखिए, अध्याय ५]

यहाँ संविधान की आलोचना सम्बन्धी अन्य बातों को लें।

संविधान अंग्रेजी भाषा में—सब से प्रथम यह बात सामने आती है कि संविधान बनाने के लिए स्वाधीन भारत को एक विदेशी भाषा से काम चलाना पड़ा। यह हमारी राष्ट्रीयता की कमी का एक कटु प्रमाण है। पर अब इसका अफसोस करते रहने के बजाय, हमें इस दिशा में अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए। इस विषय में पहले लिखा जा चुका है। ऐसी व्यवस्था होने की आवश्यकता है कि संविधान जल्दी-से-जल्दी हिन्दी में राजमान्य हो।

संविधान, केवल सन् १६३५ के अधिनियम का बदला हुआ रूप ?—अधिकांश संविधान-निर्माताओं के, अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा और विचारधारा वाले होने के कारण वर्तमान नये संविधान का रङ्ग-रूप, अधिकारियों की नियुक्ति, वेतन, अधिकार और कार्य-पद्धति, विधायी विषयों का विभाजन, और विधान-मंडलों की रचना आदि का स्थूल आधार सन् १६३५ का ही अधिनियम है। यह निर्विवाद है कि सन् ३५ के अधिनियम की रचना विदेशी (इंगलैंड की) पार्लिमेंट ने पराधीन भारत को यथा-सम्भव अपने अधीन बनाये रखने के लिए की थी; हाँ, उसमें उसे कुछ सीमित स्वराज्य की व्यवस्था करनी पड़ी थी। इसके विपरीत, भारत का नया संविधान स्वयं भारतीयों ने, स्वतंत्र भारत के लिए, स्वतंत्रता का उपयोग किये जाने के वास्ते बनाया है। सन् ३५ के अधिनियम की मुख्य बातें और नये संविधान की विशेषताएँ पहले बतायी जा चुकी हैं, उससे इन दोनों का महान अन्तर स्पष्ट है।

भारतीयता से रहित ?—कुछ आलोचकों का कथन है कि 'भारतीय संविधान भारतीयता से सर्वथा रहित है। भारतीय संविधान की आत्मा सन् १६३५ का अधिनियम है; और, उसके शरीर के लिए इङ्गलैंड, फ्रांस, अम-

रीका, कैनाडा आदि के संविधानों से मसाला जुटाया गया है।' परन्तु अन्य देशों के संविधानों से या अनुभवों से लाभ उठाना कोई दोष नहीं है, यह तो बुद्धिमानी की ही बात है। फिर, साधारण दृष्टि से लोकतंत्रात्मक संविधान, सांसद पद्धति, और निर्वाचन प्रणाली आदि विदेशी देन प्रतीत होती हैं, परन्तु प्राचीन भारत के इतिहास के विद्यार्थियों से यह छिपा नहीं कि यहाँ ये सब बातें किसी न किसी रूप में रही हैं, पीछे जाकर वे यहाँ लुप्त हो गयीं, और अन्य देशों ने उन्हें अपने ढंग से विकसित किया। अस्तु, कोई विचारधारा आरम्भ में किसी विशेष देश की हो सकती है, पर वह सदा उसी देश में सीमित नहीं रहती। अवसर पाकर वह दूर-दूर तक फैल जाती है, और इस बीच में वह अपने मूल स्थान से लुप्त भी हो सकती है। कोई बात केवल इसलिए बुरी नहीं कही जा सकती कि वह दूसरे देश से ली गयी है। हाँ, यह विचार किया जाना चाहिए कि वह हमारे देश के लिए कहाँ तक उपयुक्त है। वर्तमान लोकतंत्र का आधार चुनाव और दलबन्दी है, और इनमें आदमी कितने छल कपट, खुशामद, प्रलोभन, धौंस, रोब और पाशविक शक्ति से काम लेते हैं; मानवता का स्तर कितना गिरा देते हैं—यह कौन नहीं जानता! ऐसे चुनाव और दलबन्दी को आश्रय देने की दृष्टि से यह संविधान अवश्य ही नैतिकता रहित (या भारतीयता-रहित) कहा जा सकता है।

'गाँधीवाद' की उपेक्षा—भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की, उसका श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को देना हो, तो वह व्यक्ति गांधी जी थे। देश उन्हें राष्ट्र-पिता कहता है। वर्तमान सरकार अपने आपको गांधी जी के पथ पर चलने वाली कहती है। क्या हमारा संविधान गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुरूप है? यह ठीक है कि संविधान में गांधी जी की कुछ बातों को याद किया गया है—ग्रामोद्योग और पंचायत राज [नीति-निर्देशक तत्वों में], अस्पृश्यता-निवारण और धार्मिक स्वतंत्रता [मूल अधिकारों में], हिन्दू-मुस्लिम एकता या संयुक्त चुनाव [निर्वाचन में]। तथापि इसमें 'गांधीवाद' की आत्मा का—विकेन्द्रित व्यवस्था का—अभाव है, और अहिन्सा का आग्रह नहीं है। स्वयं म० गांधी को संविधान सभा से इस विषय में विशेष आशा न थी। उन्होंने एक सवाल के जवाब के रूप में लिखा था—

'विधान-सभा में मेरी इस (आजाद हिन्दुस्तान की) तसवीर को मुकम्मल बनाने के लिए बहुत-कुछ किया जा सकता है। लेकिन इसकी संभावना या इमकान होते हुए भी मैं उससे ज्यादा उम्मीद नहीं रखता क्योंकि स्टेट पेपर में किसी किस्म का बन्धन न होने से हर एक फिरके की रजामन्दी की जरूरत रहती है। सब फिरकों या दलों का ध्येय (मकसद) एक नहीं। कांग्रेसी स्वतंत्रता या आजादी का एक ही मतलब नहीं निकालते। मैं नहीं जानता कि उनमें से कितने अहिंसा पर और चरखे पर पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं, या यह मानते हैं कि गाँव ही हिन्दुस्तान की जिन्दगी का केन्द्र या मरकज हो सकता है। इसके खिलाफ मैं यह जानता हूँ कि बहुतेरे ऐसे हैं, जो चाहेंगे कि हिन्दुस्तान पहले दरजे की जंगी ताकत बने और सारे मुल्क की हुकूमत एक ताकतवर केन्द्र या मरकज के मातहत रहे। इन मुख्तलिफ झगड़ों के बीच अगर हिन्दुस्तान को पाक ख्याल की बुनियाद पर पाक कामों से दुनियाँ की रहनुमाई करनी है, तो मैं यकीन करता हूँ कि खुदा या ईश्वर इन अकलमन्दों की अकल पर परदा डालेगा और गरीब गाँवों को अपने विकास के लिए सही रास्ता ढूँढ़ निकालने की ताकत देगा।'

उच्च अधिकारियों के शाही वेतन—वर्तमान सभ्यता का एक बड़ा अभिशाप आर्थिक विषमता है। खेद है कि स्वतंत्र भारत के संविधान ने भी यहाँ के नागरिकों में आर्थिक समानता बढ़ाने की दिशा में कुछ अच्छा कदम नहीं उठाया। यहाँ 'समता' से हमारा मतलब व्यावहारिक समता से ही है, आदर्श काल्पनिक समता से नहीं। समाज में कुछ असमानता या विषमता रहने वाली ठहरी। पर विचारशीलों का कर्तव्य है कि उसकी सीमा का भरसक नियंत्रण करें। जैसा कि श्री किशोरीलाल मशरूवाला ने कहा है, 'नागरिकों में आर्थिक असमानता भले ही रहे, पर उस असमानता को न्यायसम्मत होना चाहिए। यह असमानता इतनी ज्यादा नहीं होनी चाहिए, जिससे दरजे और अवसर की समानता प्राप्त करना असम्भव हो जाय। दूसरे शब्दों में कहें तो देश के नागरिकों की ज्यादा-से-ज्यादा और कम-से-कम आय का फर्क एक उचित मर्यादा में रहना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हम समाजवाद की नरम से नरम दृष्टि से विचार करें तो दोनों में १० : १ या

१२ : १ के अनुपात से ज्यादा अन्तर न होना चाहिए, क्योंकि यदि इससे ज्यादा फर्क रहा तो नागरिकों के लिए दरजे और अवसर की समानता प्राप्त करना असम्भव हो जायगा।'

जब कि उच्च अधिकारियों को चार-चार पाँच-पाँच हजार रुपये मासिक मिलें, तो साधारण अधिकारी को कम-से-कम चार-सौ, पाँच सौ रुपये मासिक तो मिलें; और, यदि व्यावहारिक नहीं है तो उच्च अधिकारियों का इतना अधिक वेतन ठहराया जाना कैसे ठीक कहा जा सकता है! संविधान-सभा के विद्वान सदस्य इन ऊँची वेतनों को निर्धारित करते समय देश और जनता की आर्थिक स्थिति को भूल गये; यद्यपि कितने ही सदस्य उस कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे हैं, जिसने अधिकतम मासिक वेतन की सीमा ५००) रु० ठहरायी थी; हाँ, उस समय के ५००) की कीमत इस समय डेढ़-दो हजार रु० है। बात यह है कि अधिकांश सदस्य अंग्रेजी शिक्षा-संस्कृति में दीक्षित थे। वे उसी केन्द्रित और खर्चीली शासन-पद्धति की ओर आकर्षित थे जो अंग्रेजों ने यहाँ चला रखी थी। उन्होंने बात-बात में उनका अनुकरण किया। नतीजा यह हुआ कि विदेशी शासन हट जाने पर भी भारत के उच्च अधिकारियों और साधारण जनता में आर्थिक विषमता की बहुत गहरी खाई बनी हुई है। [संविधान में उच्च अधिकारियों का वेतन बहुत अधिक निर्धारित होने से दूसरे आदमियों को भी त्याग की प्रेरणा न होकर अपनी आय बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। संसद के सदस्यों के अपना वेतन और भत्ता आदि बढ़ाने की बात पहले कही जा चुकी है।

बहुत खर्चीला शासन, संविधान का भविष्य—संविधान के अनुसार शासन का जो ढाँचा खड़ा किया गया है, वह और नहीं तो आर्थिक दृष्टि से इतना भारी है कि अधिकतर भारतीय जनता के लिए असहनीय है। विधान-मंडलों के इतने सदस्यों का वेतन और भत्ता, मन्त्रियों और उपमन्त्रियों की तथा राज्यपालों और राजप्रमुखों की, तथा उत्तरोत्तर बढ़नेवाले उच्च अधिकारियों की शान-शौकत कब तक चलेगी। आदमी कब तक धैर्य रखेंगे! कौन-जाने, कब नये नेता रंग-मञ्च पर आ जायँ और नये संविधान का निर्माण करने को बाध्य हों!

जनता का कर्तव्य—सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक लक्ष्य की पूर्ति समय-समय पर बनने वाली विधियों या कानूनों से होती है, जिन्हें विधान-मण्डल बनाते हैं। इस प्रकार संसद तथा राज्य-विधान-मण्डलों के सदस्यों का, और उन सदस्यों को निर्वाचित करने वालों का उत्तरदायित्व कितना अधिक है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। स्मरण रहे कि इस समय बालिग मताधिकार की व्यवस्था है। इसलिए निर्वाचकों के उत्तर-दायित्व का अर्थ अब जनता का ही उत्तरदायित्व समझना चाहिए। अस्तु, भारत-सन्तान के सामने भारतीय संघ को वास्तव में महान् और विश्व-हित के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने का कार्य है।

विशेष वक्तव्य—हमने संविधान की आलोचना यह मान कर की है कि इसे पार्लिमेंटरी पद्धति को अपनाना था। परन्तु वास्तव में पार्लिमेंटरी पद्धति है ही ऐसी कि उसमें भारी व्यय तथा अन्य अनेक नैतिक दोष होने स्वाभाविक हैं। यदि इन बातों से बचना है तो हमें इस पद्धति का ही मोह छोड़ना पड़ेगा। वर्तमान काल में इस पद्धति का इतना चलन है कि प्रायः आदमियों को इसके दोष जान लेने पर भी इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं सूझता। विशेष दुर्भाग्य की बात तो यह है कि भारत ने भी स्वतंत्र होकर इसे ही अपनाया, उस भारत ने जिसे राष्ट्रपिता गाँधी ने विकेन्द्रित राज्य व्यवस्था की ओर ले जाने के लिए इतने वर्ष लगातार प्रयत्न किया। आवश्यकता थी कि भारतवासी गांधी जी के संदेश पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके सर्वोदय राज-व्यवस्था का अपने यहाँ प्रयोग करते और संसार के सामने उसका उदाहरण उपस्थित करते। इसका कुछ विशेष विचार अगले पृष्ठों में किया जायेगा।

सर्वोदय विचार

सर्वोदय विचार की आवश्यकता

हमें अपनी शासन-व्यवस्था (एवं अर्थ-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था आदि) में सर्वोदय दृष्टि रखनी चाहिए। सर्वोदय का अर्थ सीधा-सादा है—हम सब का हित या उदय चाहें। जैसे हम अपना सुख चाहते हैं, वैसे ही दूसरों का भी चाहें—जैसे हम यह नहीं चाहते कि दूसरे आदमी हमें छोटा या नीचे दर्जे का समझें, वैसे ही हम भी किसी को अपने से छोटा या नीचा न समझें। सर्वोदय व्यवस्था में 'शासकों' को त्याग, सेवा और सादगी का जीवन बिताना आवश्यक है। सब में समानता, भाईचारे, प्रेम और कर्त्तव्य-पालन भावना होनी चाहिए।

शासनपद्धति पर इस दृष्टि से प्रकाश डालने के लिए हम आगे अपनी पुस्तक 'सर्वोदय राज, क्यों और कैसे ?' का कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं। वह पूरी पुस्तक अलग छपी है। अब तो इस विषय पर और भी अधिक खुलासा विचार करने में सहायक होने के लिए हमारी 'राजव्यवस्था, सर्वोदय दृष्टि से' पुस्तक प्रस्तुत है। जो पाठक मानवता की भावना से प्रेरित हो इस विषय का चिन्तन-मनन करना चाहें, वे उसका अवलोकन करें। हमारी निश्चित धारणा कि सर्वोदय दृष्टि से व्यवहार करने में ही सब का भला है, और सब के भले में ही हमारा भला है। प्रत्येक व्यक्ति, संस्था या राज्य का हित दूसरों के हित के साथ सम्बद्ध है; इस बात को भूल कर कोई केवल अपने स्वार्थ और अधिकारों की बात सोचे तो यह उसकी अल्पज्ञता और अदूरदर्शिता है, जो अन्त में उसके लिए भी अहितकर होगी। इस प्रकार सर्वोदय दृष्टि की अनिवार्यता स्पष्ट है।

सत्ताईसवाँ अध्याय

स्वदेशी राज्य हुआ, स्वराज्य नहीं

अंग्रेजों के चले जाने से भारत को स्वराज्य नहीं मिल जाता है। हमें निरन्तर स्वराज्य के लिए कोशिश करनी होगी।......मेरे सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य है। धनिकों को जो जीवन की साधारण सुविधाएँ प्राप्त हैं, वे सब को मिलनी चाहिएँ। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि वह स्वराज्य पूर्ण स्वराज्य नहीं, जिसमें आपको ये सुविधाएँ न मिल सकें।

—गांधी जी

अंग्रेजों से छुटकारा हुआ—१५ अगस्त हमारी स्वाधीनता का दिन है। सन् १९४७ में उस दिन कई कारणों से, जिनमें हमारे प्रयत्नों का यथेष्ट भाग है, अंग्रेजी शासक यहाँ से चले गये। उनकी अधीनता से छुटकारा पाने के लिए हम बहुत समय से आन्दोलन कर रहे थे। पहले की बात छोड़ दें तो सन् १८५७ का संग्राम उनकी हुकूमत को यहाँ से हटाने के लिए ही लड़ा गया था। इसी के लिए अनेक आतंकवादियों ने हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर किये थे। इसी के लिए सन् १८८५ से कांग्रेस लगातार कोशिश कर रही थी। इसी के लिए राष्ट्रपिता गांधी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह और असहयोग, अहिन्सा और शान्ति के अनूठे उपायों का प्रयोग किया गया था। इसी के लिए सन् १९४२ में 'करो या मरो' का मन्त्र लेकर जन-क्रान्ति हुई थी। इसी के लिए नेता जी सुभाष बोस और आजाद हिन्द फौज ने ब्रिटिश सेनाओं से गजब का मोर्चा लिया था, और अन्त में नौसैनिकों ने अपने आश्चर्यजनक साहस का परिचय दिया था। इन बातों का खुलासा वर्णन हमारी 'भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन' पुस्तक में किया गया है।

हमारी अधूरी सफलता, अंग्रेजी शासनपद्धति की नकल—भारत स्वतंत्र होने के साथ ही खंडित हो गया। १५ अगस्त हमारी स्वतन्त्रता का दिन है, परन्तु साथ ही विभाजन का भी। इस दिन से दो स्वतंत्र सरकारों की स्थापना हो गयी—(१) भारत-सरकार देहली में, और (२) पाकिस्तान-सरकार कराँची में। एक भारतवर्ष के दो टुकड़े हो गये, इस प्रकार हमें यथेष्ट सफलता न मिली, यह साफ जाहिर है। हम यहाँ दूसरी बात कहना चाहते हैं।

अंग्रेजों के जाने पर हमारे नेता उनकी गद्दी पर बैठ गये, जिस ढङ्ग से अंग्रेज राज्य करते थे, उसी तरीके से हमारे आदमी हुकूमत करने लगे। यह कहा जा सकता है कि बड़े देश की शासनपद्धति एक दिन में नहीं बदली जा सकती। पर अब तो दिनों की बात नहीं, आठ वर्ष बीत गये। भारत का नया संविधान बन कर अमल में आने लगा, आम चुनाव भी हो गये और केन्द्रीय सरकार तथा विविध राज्यों की सरकारों का नया संगठन भी हो गया। इस प्रकार पहले जो यह आशा थी कि नया संविधान भारतीय परिस्थितियों के अनुसार यहाँ सच्चे स्वराज्य की स्थापना करेगा, वह अब पूरे तौर से समाप्त हो गयी। संविधान बनाने में जनता का काफी रुपया खर्च किया गया, जिन लोगों पर जनता को बड़ी श्रद्धा थी, उन्हें यह काम सौंपा गया। समय भी काफी लगा तो भी जो शासनपद्धति निश्चित की गयी, वह अंग्रेजी शासनपद्धति की नकल है, उसमें कोई बुनियादी अन्तर नहीं। शायद अंग्रेजी शिक्षा और संस्कारों में दीक्षित हमारे नेता कुछ और बात सोच ही नहीं सकते थे।

स्वदेशी राज्य की स्थापना—अस्तु, विदेशी राज्य की जगह स्वदेशी राज्य हो गया। अब राष्ट्रपति स्वदेशी है; प्रधान मन्त्री स्वदेशी, कमांडरन चीफ या जंगीलाट भी स्वदेशी है। इसी प्रकार विविध राज्यों में राज्यपाल (या राजप्रमुख) और मुख्य मन्त्री सभी पदों पर स्वदेशी नियुक्त हैं, और इन सब की नियुक्ति, अधिकार और कार्य-क्षेत्र आदि के नियम बनानेवाली संसद (पार्लिमेंट) और विधान-सभाओं में भी सब स्वदेशी ही स्वदेशी हैं। विदेशी

अधिकारी हमें सहन नहीं। उन्हें रखना भी होता है तो हम अपने बनाये नियम कायदों के अनुसार रखते हैं। इस प्रकार हमने विदेशी राज्य को हटाकर पूरा, यथा-सम्भव पूरा, स्वदेशी राज्य स्थापित कर लिया है।

स्वदेशी नौकरशाही—यह कहा जा सकता है कि विदेशी नौकरशाही को हटाकर हमने स्वदेशी नौकरशाही की स्थापना कर दी है। ऐसा कहने में हम 'स्वदेशी' शब्द के महत्व को कम करना नहीं चाहते। हमारे वर्तमान शासकों में जनता के लिए सहानुभूति है, दर्द है, तड़प है। वे समय-समय पर देश के उत्थान के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते हैं, कुछ लोग दिन-रात इतने काम में लगे रहते हैं कि उन्हें सोने या आराम करने को भी काफी समय नहीं मिलता। कुछ अधिकारी साधारण गरीब किसान मजदूर आदि से मिलने में संकोच नहीं करते। कोई-कोई तो अपने निजी वेतन से शहीदों के परिवारों या दूसरे जरूरतमन्दों की सहायता करते हैं; हमारे कलाकारों और साहित्य-कारों का मान करते हैं। इन बातों की प्रशंसा कौन नहीं करेगा! परन्तु इससे वस्तु-स्थिति में विशेष अन्तर नहीं आता। शासकों की व्यक्तिगत उदारता का परिमाण कुल मिलाकर समुद्र में बूँद के ही बराबर समझना चाहिए। हमें किसी खास पदाधिकारी के सम्बन्ध में नहीं कहना है। हमारा आक्षेप तो उस ढाँचे या पद्धति से ही है, जिसके ये पदाधिकारी अङ्ग बने हुए हैं, और जिसके कारण देश, कोल्हू के बैल की तरह कोई असली प्रगति नहीं कर पाता; हाँ, दिखाने के लिए तो कुछ न कुछ काम हर समय होता ही रहता है, कुछ हलचल, कुछ उधेड़-बुन, कुछ निर्माण या परिवर्तन आदि होकर पाठकों के पास उसकी बढ़िया-बढ़िया रंग-बिरंगी रिपोर्टें पहुँचती रहती हैं।

वास्तव में केन्द्रीकरण-मूलक पद्धति में नौकरशाही का विशाल जाल फैलना स्वाभाविक ही है। दोनों का अनिवार्य सम्बन्ध है। केन्द्रित व्यवस्था का आधार या जीवन-प्राण ही नौकरशाही है, क्योंकि जब व्यवस्था केन्द्र की ओर से होगी, तो उसका संचालक—चाहे वह कितना ही योग्य, सहृदय, उदार विचारों वाला क्यों न हो—स्वयं क्या-क्या कर सकता है! उसे तो सब

इन्तजाम अपने सहायकों द्वारा ही कराना होगा। वह उन्हें विविध विभागों का काम सौंप देगा; और, विविध विभागों के अध्यक्ष काम लेंगे, कर्मचारियों और उपकर्मचारियों द्वारा। ये कर्मचारी तो कानूनी तौर से भी प्रायः जनता के प्रतिनिधि नहीं होते; फिर, इनका जनता से प्रत्यक्ष सम्पर्क रहना तो निरी कपोल-कल्पना है। ये बहुधा जड़ यन्त्र की तरह अपने अफसरों की आज्ञा पालन करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। इस प्रकार स्वदेशी राज्य में, जब तक स्वराज्य न हो, पार्लिमेंटरी पद्धति या जनतंत्र का ढोंग चाहे जितना हो, वह अपने नग्न रूप में है केवल नौकरशाही पद्धति ही।

स्वराज्य का अर्थ—स्पष्ट है कि स्वदेशी राज्य होना और बात है, और स्वराज्य दूसरी बात। स्वराज्य का अर्थ है देश का उत्पादन और व्यवस्था की जिम्मेदारी कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में न होकर जनता के हाथ में आ जाय। इस प्रकार हमारी सब संस्थाओं का उद्देश्य आर्थिक व्यवस्था विकेन्द्रित करना तथा अहिंसक प्रजातन्त्रीय समाज स्थापित करना, होना चाहिए, जिससे शक्ति का श्रोत कुछ खास औद्योगिक या व्यापारिक नगरों तथा दिल्ली और अन्य राजधानियों में सीमित न होकर गाँव-गाँव में और घर-घर में फैला हुआ हो; प्रत्येक किसान और मजदूर का, ईमानदारी से कुछ करनेवाले प्रत्येक भारत-संतान का, उसमें भाग हो। वह स्वराज्य ही क्या, जिसमें लोगों को अपनी रोजमर्रा की जरूरत के लिए दिल्ली की ओर निगाह लगाये बैठना हो, या अपने राज्य की राजधानी से प्रकाशित होने वाली विज्ञप्तियों की इन्तजार करनी पड़े। स्वराज्य तो देश के सब आदमियों में बराबर बँटा हुआ होना चाहिए। भारत का अर्थ केवल देहली और दूसरी राजधानियाँ नहीं, वह तो थोड़े से नगरों के साथ लाखों गाँव का देश है; भारत में स्वराज्य का अर्थ है, छत्तीस करोड़ आदमियों का राज्य।

क्या हमारे प्रतिनिधि शासन कर रहे हैं?—यह कहा जा सकता कि 'भारत में यहाँ के नागरिकों का राज्य है; उनके ही चुने हुए प्रतिनिधि शासन-कार्य कर रहे हैं, और क्योंकि प्रत्येक बालिग आदमी को मताधिकार है,

इसलिए स्वराज्य गाँव-गाँव तक पहुंच गया है। कोई व्यक्ति जो विधान-सभा का सदस्य या मन्त्री आदि होना चाहता है, वह गाँवों की उपेक्षा नहीं कर सकता। कोई गाँव वाला—किसान हो या मजदूर आदि—किसी भी सरकारी पद से वंचित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रपति तक बन सकता है।' ये बातें बड़ी जोरदार मालूम होती हैं। पर गम्भीरता से विचार करें तो इनमें कोई दम नहीं। चुनाव पद्धति ऐसी है कि इसमें केवल चतुर चालाक, धनवान और विशेष चलते हुए आदमी को ही सफलता मिलती है, साधारण आदमियों के लिए इसका दरवाजा कानून से खुला होने पर व्यवहार में बन्द ही है। इन बातों का खुलासा विचार आगे किया जायगा।

कल्पना करो कि कोई आदमी चुनाव के लिए मत माँगने के वास्ते एक बार मेरी झोपड़ी तक आ गया (अनेक बार तो एजंट ही यह काम कर देते हैं), पर चुनाव से पहले मेरा उसका कोई सम्पर्क नहीं था। वह अपने आपको बड़ा आदमी मानता था, और अब चुनाव में सफल हो जाने पर भी उसका रहन सहन और ठाठबाट ऐसा रहेगा कि मेरी उसके सामने कोई गिनती ही नहीं है—तो मुझे इस बात से क्या संतोष हो सकता है कि वह मेरे मत से विजयी हुआ है ! कानूनी या राजनैतिक बात छोड़ दें तो सीधा प्रश्न यह है कि क्या एक भूखे-नंगे आदमी का सच्चा प्रतिनिधि कोई लखपति, कोई मिल-मालिक, या ऐसा आदमी हो सकता है, जिसे चुनाव में सफल हो जाने पर सम्भव है हजारों रुपये मासिक का वेतन और भत्ता मिलने लगे।

हमारा सच्चा प्रतिनिधि कैसा आदमी हो सकता है ?— भारतवर्ष में गांधी जी को राष्ट्रपिता कहा गया है। विदेशी राज्य को हटाने के लिए हमने उनका बताया रास्ता अपनाया था, पर स्वाधीन हो जाने पर राज-काज चलाने के लिए हम उनके तरीकों को नहीं अपना रहे हैं। वर्तमान सरकार अपने आप को गांधी जी की अनुयायी मानती है। पर गरीब भारत के प्रतिनिधि होने की जैसी क्षमता उनमें थी, वह आज के शासकों में कहाँ है ! कहाँ उच्च पदाधिकारियों के ठाठ-बाट, शान-शौकत और आडम्बर-युक्त रहनसहन और कहाँ गांधी जी की सादगी और संयम। गांधी जी ब्रिटिश

सम्राट् के प्रतिनिधि वायसराय के ही नहीं, स्वयं सम्राट् के महल में ऊँची धोत
पहने, 'अर्द्ध नग्न' अवस्था में गये थे कारण, वे अपने आपको गरीब भार
का प्रतिनिधि मानते थे। उनके विचार से भारत के राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्र
को भारत के साधारण नागरिक से अधिक ऐश्वर्य का जीवन नहीं बितान
चाहिए। अफसोस! हमारे अधिकांश शासकों को ये बातें अव्यावहारि
प्रतीत होती हैं। इससे स्पष्ट है, कानून के अनुसार हमारे प्रतिनिधि माने जा
पर भी, वे हमारे जीवन या हमारी स्थिति का प्रतिनिधित्व नहीं करते, भले ह
वे गोरे न होकर होकर काले हों, अंग्रेज न होकर हिन्दुस्तानी हों।

समाज के लिए पार्लिमेंटरी पद्धति का मोह छोड़न होगा—आदमी समय-समय पर आलोचना करते हैं, कि प्रधान मंत्री ऐस
होना चाहिए, राष्ट्रपति को ऐसा व्यवहार करना चाहिए, राज्यपालों य
मंत्रियों के अधिकारों में यह कमी, और यह वृद्धि होनी चाहिएँ। ये बातें सब
ऊपरी हैं। इनसे समस्या का हल नहीं होगा। बात किसी एक या अधिव
अधिकारियों को बदलने की, या उनके अधिकार घटाने-बढ़ाने की नहीं है
शासन का ढांचा ही बदलना होगा। शासनपद्धति सम्बन्धी वर्तमान दृष्टिको
को छोड़ना होगा। खासकर पार्लिमेंटरी पद्धति का मोह छोड़ना होगा। ह
की बात है कि लोगों का ध्यान इस ओर जा रहा है। भारतीय लोकसभा वे
स्पीकर श्री मावलंकर का कथन है कि 'संसार में कहीं भी पार्लिमेंटरी शासन
पद्धति का भविष्य उज्ज्वल नहीं है।' इसी बात पर तो गाँधी जी जन्म भ
जोर देते रहे। पर, अफसोस! उनके निकट सम्पर्क में रहने वाले सर्वश्र
मावलंकर, राजेन्द्रबाबू और नेहरू आदि भी इस शिक्षा को ग्रहण न क
पाये। आखिर, भारत का नया संविधान बनाने की बहुत-कुछ जिम्मेवार
इन्हीं पर है। अंग्रेजी शिक्षापद्धति का कैसा चमत्कार है कि इन लोगों प
अपने नये गुरू, राष्ट्रपिता गाँधी का रंग बहुत ही कम चढ़ा। इसी का य
नतीजा है कि जो स्वदेशी राज हुआ है, उसकी रगरग से इङ्गलैंड क
पार्लिमेंटरी पद्धति की छाप है। इस पर खुलासा आगे लिखा जायगा।

विशेष वक्तव्य—क्या हम अब भी शासन की इस पार्लिमेंटरी पद्धति की जीर्ण-शीर्ण और कष्टदायक पोषाक से चिपटे रहेंगे? यह इतनी तंग और फटी-पुरानी है कि इसे जहाँ-तहाँ से सी देने और कहीं-कहीं पेबन्द या थेगली लगा देने से काम नहीं चलेगा। मानव के लिए नये वस्त्र का निर्माण करना है, जिससे उसके अंगों को ताजी हवा और रोशनी काफी मिले, और हर घड़ी उसका दम न घुटता रहे। भारत को ग्राम-प्रधान संस्कृति, और पंचायती विकेन्द्रित व्यवस्था के आधार पर ही वास्तविक स्वराज्य मिल सकता है; पश्चिम के अंधानुकरण में हमारा हित नहीं—पार्लिमेंटरी पद्धति स्वयं पश्चिम के लिए भी अच्छी नहीं।

अट्ठाइसवाँ अध्याय

नयी दृष्टि की आवश्यकता

प्रजातन्त्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इस तन्त्र में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए।

—गांधी जी

हम भारत में स्वदेशी राज्य से ही संतुष्ट नहीं, हम स्वराज्य स्थापित करने की बात कहते हैं तो पहले हमें यह विचार करना चाहिए कि इस राज व्यवस्था में—जो लोकतंत्र या प्रजातन्त्र के नाम से प्रचलित है—क्या दोष हैं।

वर्तमान 'लोकतंत्र', लोकतंत्र नहीं—पाश्चात्य देशों में आज जो लोकतंत्र, या प्रजातंत्र प्रचलित है, और जिसका अनुकरण भारत में भी किया जा रहा है, वह वास्तव में लोकतंत्र नहीं कहा जाना चाहिए। 'लोकतंत्र' का अर्थ होता है जनता का राज्य। शासन-सूत्र-संचालन जनता के हाथ में हो; जनता अपने इस अधिकार का उपयोग अपने प्रतिनिधियों द्वारा करे; शासन-कार्य जनता की इच्छानुसार हो, उसकी मर्जी के खिलाफ कोई कार्य न हो। इस में जनता का आशय समस्त जनता से है, उसके किसी विशेष भाग से नहीं, चाहे वह भाग कितना ही बड़ा या महत्वपूर्ण हो। इससे स्पष्ट है कि लोकतंत्र का आदर्श और उद्देश्य बहुत पवित्र और ऊँचा है। परन्तु वर्तमान लोकतंत्र में यह उद्देश्य पूरा नहीं होता। इङ्गलैंड, फ्रांस, अमरीका आदि देश लोकतंत्री कहे जाते हैं, लेकिन जानकारों से यह छिपा नहीं कि वहाँ सर्वसाधा-रण जनता का राजनैतिक विषयों पर कुछ विशेष नियंत्रण नहीं। सारी व्यवस्था ऐसी होती है कि पूंजीपतियों की ही चलती है। जिस दल को

उनके पैसे और प्रभाव का सहयोग मिलता है, उसके ही अधिक व्यक्ति निर्वाचन में विजयी होते हैं, और मंत्री आदि के उच्च पद प्राप्त करते हैं। ऐसी दशा में विधान-सभाओं में पूँजीपतियों के ही स्वार्थ का अधिक ध्यान रखा जाना स्वाभाविक है।

'बहुमत' का शासन—यह सर्वमान्य है कि वर्तमान लोकतंत्र पद्धति में शासन समस्त जनता का न होकर बहुमत दल का होता है। अब इस बहु-मत के रूप को जरा ध्यान में ले आया जाय। यदि राज्य में दो दल हैं, तो बहुमत का अर्थ ४९ प्रतिशत को छोड़कर केवल ५१ प्रतिशत की हुकूमत हो सकती है। और अगर तीन दल हों और तीनों एक-दूसरे के मुकाबले के हों अर्थात् कल्पना करो उसमें से दो दल तैंतीस-तैंतीस प्रतिशत व्यक्तियों के और एक दल ३४ व्यक्तियों का हो तो वर्तमान विचारधारा के अनुसार ३४ प्रति-शत व्यक्तियों के बहुमत दल वाला शासन लोकतंत्री कहा जायगा, जब कि ६६ प्रतिशत व्यक्ति शासन-सत्ता से वंचित रहेंगे। इस प्रकार अकसर ऐसा होता है कि जिसे हम बहुमत दल का शासन होने से लोकतंत्री शासन कहते हैं, वह वास्तव में अल्प मत का ही शासन होता है।

निर्वाचनपद्धति के दोष—वर्तमान लोकतंत्र का आधार निर्वाचन है, और उसमें पैसे की कितनी जरूरत होती है, पैसे के बल पर उसे व्यवहार में किस तरह धनतंत्र कर दिया जाता है, यह गम्भीरता से सोचने का विषय है। चुनाव सम्बन्धी भारी खर्च का कुछ अनुमान इस बात से हो सकता है कि भारत में, सन् १९५१ के आम चुनावों में व्यवस्था सम्बन्धी सरकारी व्यय के अतिरिक्त, सरकारी तौर पर स्वायत्त राज्यों की विधान-सभाओं के चुनाव में उम्मेदवारों को पाँच हजार से लेकर आठ हजार रुपये तक और लोकसभा के चुनाव में उम्मेदवारों को पच्चीस हजार रुपये तक खर्च करने की इजाजत थी। कितने ही व्यक्तियों ने तो इससे भी अधिक खर्च किया होगा। अस्तु, यह स्पष्ट है कि साधारण आर्थिक स्थिति वाले योग्य और ईमानदार पुरुषों के लिए चुनाव में सफल होने का अवसर नहीं होता। कितने ही आदमी तो चुनाव को एक ऐसा रोजगार समझते हैं, कि इसमें लगाया हुआ रुपया पीछे (चुनाव

में जीत जाने पर) ब्याज सहित वसूल कर लिया जायगा। इसलिए वे उधार लेकर भी इस काम में रुपया लगाने का साहस करते हैं। इससे चुनाव-कार्य की गन्दगी, बदनीयती और बेईमानी की भावना स्पष्ट है।

फिर, बड़े-बड़े राज्यों की विधान-सभाओं में एक-एक निर्वाचक-संघ में लाखों मतदाता होते हैं, उन्हें जिन उम्मेदवारों के लिए मत देना होता है, उनके विषय में उनकी सही जानकारी प्रायः कुछ भी नहीं होती। मतदाताओं के सामने केवल उम्मेदवारों के दलों के नाम और उनके लुभावने घोषणा-पत्र होते हैं जिनकी प्रतिज्ञाओं की रुपये में आठ आना क्या, कुछ दशाओं में एक आना भी पूरी होने की कोई सम्भावना नहीं होती। चुनाव के समय प्रत्येक उम्मेदवार के एजंट जिन झूठी-सच्ची बातों का प्रचार करते हैं और जिन अनैतिक उपायों या हथकंडों से काम लेते हैं, उनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। बहुधा साम्प्रदायिकता, कलह और द्वेष आदि का ऐसा दूषित वातावरण बन जाता है कि उसका बुरा असर महीनों और कुछ दशाओं में तो वर्षों बना रहता है।

और यह चुनाव क्या है ? किसी धनवान या प्रभावशाली आदमी का नारों, व्याख्यानों, इश्तहारों और माइक्रोफोन या रेडियो आदि से ऐसा प्रचार और प्रदर्शन कराना कि साधारण जनता को उसी की याद रहे, दूसरे सब उम्मेदवारों की बात भूल कर वह उसी के पक्ष में मत दे और उसको विजयी बनाने में सहायक हो। वर्तमान चुनावों में भोली-भाली जनता ही मूर्ख नहीं बनती; अनेक पढ़े-लिखे आदमी भी उम्मेदवारों के चकमे के आ जाते हैं। चुनाव-आंदोलन के शोरगुल और नारों के बीच अकसर कम योग्य व्यक्ति चुन लिये जाते हैं और अधिक योग्य व्यक्ति रह जाते हैं।

चुनाव से पहले, उम्मेदवार कितनी नम्रता और शिष्टाचार तथा सहृदयता दिखाते हैं ! मत मांगने के लिए वे गरीब से गरीब, मैले और फटे-पुराने कपड़े वालों की गन्दी और टूटी-फूटी झोपड़ी में जाने में भी संकोच नहीं करते। वे मजदूरों, किसानों और मेहतरों—हर किसी से मिन्नतें करते हैं। जहाँ चुनाव समाप्त हुआ, उनका कपट-भेष उतर जाता है, वे सीधे मुँह अपने निर्धन भाइयों से बात नहीं करते। ये चुनाव हैं, हमारे लोकतंत्र के आधार !

दलबन्दी और नैतिक पतन—वर्तमान लोकतंत्र का दलबन्दी के साथ अटूट सम्बन्ध है। विरोधी दल तो अनिवार्य ही माना जाता है। लोकतंत्री व्यवस्था में दलों के महत्व का अनुमान इस बात से हो सकता है कि इंगलैंड आदि कुछ देशों में इसके नेता को सरकार द्वारा वेतन दिया जाता है।

दलबन्दी से नैतिक पतन अनिवार्य है। अपने-अपने दल को मजबूत बनाने के लिए तरह-तरह की चालें चली जाती हैं। दूसरे दल के आदमी को अपने दल में मिलाने के लिए साम-दाम-दंड-भेद सभी भले-बुरे उपायों से काम लिया जाता है। दल के प्रत्येक सदस्य के लिए यह जरूरी होता है कि वह अपने दल के नेता की हाँ में हाँ मिलाये। उसे अपने दल द्वारा उपस्थित प्रस्ताव तथा संशोधन आदि का समर्थन करना होता है, चाहे उसकी आत्मा ऐसा करना उचित न भी समझे। इस प्रकार जब विरोधी दल किसी सरकारी प्रस्ताव का विरोध करता है तो उसके सब सदस्य बिना कुछ सोचे-विचारे इस विरोध में उसका साथ देते हैं—अर्थात् यह जानते हुए भी कि विरोध करना अनुचित है और जो बातें विरोध में कही जा रही हैं, वे सत्य या तर्क की कसौटी पर ठीक नहीं उतरतीं। [इसी प्रकार सरकार अर्थात् बहुमत दल भी अनेक बार विरोधी दल की बातों की उपेक्षा करता है, और उसके प्रस्तावों को यथा-सम्भव पास नहीं होने देता, चाहे वे प्रस्ताव बहुत ही उपयोगी क्यों न हों।]

कुछ दल तो ऐसे होते हैं कि उनके सामने राज्य के उत्थान के लिए कोई खास कार्यक्रम नहीं होता, वे क्षुद्र साम्प्रदायिक या अन्य आधार पर बन जाते हैं और अपनी तथा दूसरों की शक्ति और समय नष्ट किया करते है। अस्तु, दलों के निर्माण में, इनकी शक्ति बनाये रखने तथा बढ़ाने में, और इनकी कार्य प्रणाली में पद-पद पर व्यक्तियों का नैतिक तथा चारित्रिक ह्रास होता है। जिस लोकतंत्र शासन में, ऐसी दलबन्दी अनिवार्य मानी जाती है, उसका दूषित होना स्वयं सिद्ध है।

हानिकारक वाद-विवाद—वर्तमान लोकतंत्र में (केन्द्रीय) संसद तथा राज्यों की एक-एक विधान-सभा में सैकड़ों सदस्य होते हैं। अनेक आदमी

बोलने की इच्छा रखते हैं। फिर, यदि कोई सदस्य वहाँ भाषण नहीं करता (या प्रश्न नहीं पूछता) तो वह निर्वाचकों की निगाह में गिर जाता है। वे कहने लगते हैं कि ऐसे आदमी को चुनने से कोई लाभ नहीं, जो वहाँ जाकर चुपचाप बैठा रहता है। इस लिए सभी सदस्यों को—और कुछ नहीं तो विधान-सभा में अपनी उपयोगिता सिद्ध करने और अपना अस्तित्व प्रकट करने के लिए—बोलने और सवाल पूछने की प्रेरणा होती है। प्रायः सदस्य अपने विषय का यथेष्ट अध्ययन और मनन करने का कष्ट नहीं उठाते और अपने भाषण में अनावश्यक या अप्रासंगिक व्यंगात्मक, निन्दा-स्तुति या हँसी-मसखरी आदि की बातें कहा करते हैं। इस पर उन्हें अध्यक्ष द्वारा रोका जाता है। तो भी कुछ सदस्यों की ऐसी हरकतें बार बार होती हैं। इससे विधान-सभा का—सहस्रों सदस्यों का—थोड़ा-थोड़ा करके भी बहुत सा समय नष्ट हो जाता है।

सदस्यों के अनावश्यक भाषण और प्रश्न जनता के लिए कितने महंगे पड़ते हैं, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि एक वक्तव्य में भारतीय संसद का खर्च ८०) रु० प्रति मिनट बताया गया था। यदि एक दिन में सब सदस्यों के वाद-विवाद आदि में नष्ट हुआ समय एक घंटा भी हो तो भारतीय करदाताओं का भार उस एक दिन के लिए ही लगभग पाँच हजार रु० बढ़ जाता है। यह तो अकेली संसद की बात हुई। भारत के विविध राज्यों के ३२ विधान-मंडल हैं। इनका भी विचार कीजिए; और, साल भर में होने वाले सब अधिवेशनों का हिसाब लगाइये। कितना अपव्यय होता है!

भयंकर व्यय-भार और आर्थिक विषमता—लोकतंत्र में (केन्द्रीय) संसद और राज्यों के विधान-मंडल होते हैं, इनमें से प्रत्येक के सैकड़ों सदस्य होते हैं, जिनको नियमित वेतन और भत्ता आदि दिया जाता है। अनेक मंत्री, उपमंत्री, सचिव आदि कितने ही कर्मचारी रहते हैं। फिर राष्ट्रपति तथा विविध राज्यपाल और अन्य अधिकारी तथा उनके सेवक आदि होते हैं। इन्हें वेतन और भत्ता आदि मिलने के अतिरिक्त उच्च पदाधिकारियों की शान

शौकत, ठाठबाट और सुविधाओं आदि में खूब खर्च होता है। इस प्रकार लोकतन्त्र के साज श्रृङ्गार में होने वाले कुल खर्च का क्या पूछना! आचार्य कृपलानी ने (श्री गुलजारीलाल नन्दा के एक पत्र का उत्तर देते हुए) लिखा था कि उत्तर प्रदेश में मन्त्रियों का वेतन १५०० रु० माहवारी की जगह १२०० रु० कर दिया है, पर यह कर-मुक्त है। यदि इसमें आय-कर और जोड़ दें तो वेतन १४५० रु०, हो जाता है। इसमें बंगले का किराया ३०० रु०, फर्नीचर का किराया ५० रु० मरम्मत खर्च ५० रु० से १०० रु० तक, पानी का खर्च ५० रु०, मालियों का खर्च १५० रु०, एक सी० आई० डी० और दो अन्य व्यक्तियों का खर्च २०० रु०, मोटर बदलने का औसत खर्च ६०० रु०, ड्रायवर, पेट्रोल आदि २५० रु० मासिक और खर्च होता है। इस प्रकार जहाँ एक मन्त्री का वेतन १२०० मिलता है, कुल रकम मिला कर तो ३००० रु० से ऊपर बैठती है। इसकी तुलना में हमारे औसत नागरिक को इसका दसवाँ हिस्सा भी तो नहीं मिलता! कितनी विषमता!

अधिकारियों की भरमार—मन्त्रियों के वेतन और भत्ते आदि का खर्च तो बहुत अधिक है ही, इसके साथ ही इनकी संख्या भी बेहद बढ़ी हुई है। केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद में मन्त्रियों-उपमन्त्रियों आदि की संख्या बढ़ते-बढ़ते तीन दर्जन तक पहुंच गयी। राज्यों की बात लीजिए। बिहार में जो काम सन् १६४० से पहले चार मिनिस्टर कर लेते थे और सन् ४० के बाद से सन् ४६ तक जिसे दो अंग्रेज सलाहकार चलाते रहे, और सन् ४६ के बाद जिसके लिए नौ मिनिस्टर काफी हुए, वह काम अब वहाँ तेरह मिनिस्टर नहीं कर पा रहे हैं, कुछ डिप्टी मिनिस्टर भी नियुक्त किये गये हैं; पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी रहे अलग। यही हाल अन्य अधिकांश राज्यों का है।

अधिक मन्त्रियों आदि की नियुक्ति का रहस्य यह है कि मन्त्रियों की संख्या काम के अनुपात से न होकर दलबन्दी और विविध दलों पर प्रभाव रखने वालों के अनुपात से होती है।

सर्वोदय दृष्टि—स्पष्ट है कि वर्तमान प्रचलित लोकतन्त्र बहुत दूषित है, इसे वास्तव में लोकतंत्र नहीं कहना चाहिए। पर शब्द चल रहा है। यह बहुत कम सोचा जाता है कि इसके ठीक अर्थ का इसके वर्तमान व्यावहारिक

रूप से मेल नहीं बैठता। लोकतंत्र की जो हमारी कल्पना है, उसमें सर्वोदय दृष्टि होनी चाहिए। उसकी रूपरेखा आगे दी जायगी। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें कुछ व्यक्तियों या समूहों का स्वार्थ सिद्ध न होकर सब का हित हो; गरीब-अमीर का, शासक-शासित का, ऊँच-नीच का भेद-भाव न हो। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सुख, सुविधाओं और हर प्रकार के विकास का समान अवसर मिले। केवल भौतिक उन्नति का ही लक्ष्य न रखकर मानसिक, नैतिक तथा आत्मिक उन्नति की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाय। आदमी के सामने सेवा और त्याग का आदर्श रहे और वह सबके हित में ही अपना हित समझे। निर्वाचन को महत्व न देने वाली ऐसी शासन-व्यवस्था को आधुनिक राज-शास्त्री लोकतन्त्र कहना पसन्द न करें तो न सही, वह सर्वोदयी राज व्यवस्था तो है ही। गांधी जी ने अपनी आखिरी वसीयत में लोकसेवक संघ की जो योजना उपस्थित की थी, उसमें चुनाव को बहुत कम जगह दी थी। उन्होंने शासक का स्थान सेवक को दिया, जिसका चरित्र, व्यवहार, और त्याग ही उसकी मुख्य योग्यता हो। गांधी जी ने यह माना और घोषणा की कि सच्चा लोकराज संयम, सेवा और सादगी के आधार पर ही स्थापित हो सकता है। यह कुछ थोड़े से शहरियों या चलते-पुर्जे बुद्धिजीवियों के लिए न होकर सर्वसाधारण के लिए होगा, इसमें गाँवों की जनता का यथेष्ट ध्यान रखा जायगा और गाँव वाले ही उसका संचालन करेंगे।

विशेष वक्तव्य—ऐसी अवस्था में क्या यह आवश्यक नहीं है कि वर्तमान पश्चिमी ढंग के लोकतंत्र का अंधानुकरण न कर प्रत्येक देश के आदमी गम्भीरता और स्वतन्त्रता से विचार करें कि हमारी राजव्यवस्था कैसी होनी चाहिए। सर्वोदय के महान आचार्य म० गांधी के देश भारत का तो खास तौर से यह कर्त्तव्य है कि वह इस दिशा में आगे बढ़े और संसार के सामने सर्वोदय राजव्यवस्था का क्रियात्मक उदाहरण उपस्थित करे। अगले पृष्ठों में हम इस की मुख्य-मुख्य बातों पर प्रकाश डालेंगे; विस्तार-पूर्वक विचार तो हमारी 'राज-व्यवस्था, सर्वोदय दृष्टि से' पुस्तक में किया गया है।

उन्नीसवाँ अध्याय

सर्वोदय में राज्य के कार्य

'सरकार निमित्त मात्र होती है। उसका काम यह नहीं है कि गाँव को हर चीज बाहर से ला दे। सब गाँवों का सम्बन्ध बना रखने के लिए सरकार है; उसका काम हरेक गाँव को स्वावलम्बी बनने में मदद करने का है।'

—विनोबा

अब अन्य बातोंके विषय में विचार करने से पहले हम यह जान लें कि मनुष्यों को किन कारणों से या किन परिस्थितियों में शासन या हुकूमत की जरूरत होती है।

सरकार की आवश्यकता क्यों होती है? अराजवाद का आदर्श—सरकार की आवश्यकता सिर्फ इसलिए होती है कि आदमी में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि दुर्भावनाएँ हैं, और समाज की सुव्यवस्था के लिए इनका नियंत्रण होना चाहिए। आदमी अभी बहुत अपूर्ण है, अविकसित है। इसलिए मौजूदा हालत में समाज को अनिवार्य रूप से राज्य की आवश्यकता है। उसके लिए राज्य-रहित होना तभी ठीक होगा, जब आदमी अपने ऊपर यथेष्ट नियंत्रण रखनेवाला और अपने सब सामाजिक कर्तव्यों को स्वेच्छापूर्वक, बिना किसी कानूनी दबाव के, पूरा, करनेवाला हो। राज्य-रहित समाज में हिन्सा या दमन का कोई स्थान नहीं, वह पूर्ण रूप से अहिन्सक होगा। अस्तु, राज्य की आवश्यकता मनुष्य की वर्तमान अपूर्ण या अविकसित अवस्था में है। उसके विकास का आशय यह है कि वह स्वस्थ, स्वावलम्बी, श्रमी, परस्पर सहयोगी, और ऐसे पुरुषार्थ और संस्कारों वाला हो कि न तो वह किसी से दबे और न किसी को दबाये। मनुष्य के

ऐसा बन जाने पर उसे सामाजिक जीवन भली भाँति बिताने के लिए किसी दंड-भय की, नियंत्रक शक्ति या सरकार की जरूरत न रहेगी, प्रत्येक व्यक्ति स्वयमेव अपना और समाज का कार्य अच्छी तरह करता रहेगा। सामूहिक कार्यों को करने के लिए, कार्यकर्ताओं के आवश्यकतानुसार संगठन होंगे, पर उनमें ऊँच-नीच का या शासक और शासित का वर्गभेद न होगा। इस प्रकार समाज के लिए राज्य-रहित रहना अर्थात् अराजवाद एक आदर्श है, उसकी ओर बढ़ते रहने का, वहाँ तक पहुँचने का, प्रयत्न होते रहना चाहिए।

वर्तमान अवस्था में सरकार हमारे जीवन-व्यवहार पर कितना अधिकार जमाये हुए है, यह स्पष्ट ही है। हमारे भोजन-वस्त्र, खानपान, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, लेन देन, रीति-रिवाज, क्रय-विक्रय, पारस्परिक सम्बन्ध आदि-सबमें सरकार का दखल है। विवाह-शादी जैसे सामाजिक कार्य और दान-पुण्य जैसे धार्मिक कार्यों का भी सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह स्थिति स्वतंत्र प्रकृति वाले मनुष्य के लिए दम घोंटने की-सी है, उसे उन्मुक्त वातावरण में सांस नहीं लेने देती।

आवश्यकता यह है कि सरकार का कार्य-क्षेत्र बहुत सीमित रहे; मनुष्य पर रोजमर्रा के साधारण जीवन में कम-से-कम प्रतिबन्ध रहें; वह अपने नजदीक के तथा जाने-पहचाने आदमियों की स्थानीय संस्थाओं से शासित हो, कुछ खास इने-गिने कार्यों के लिए ही उस पर प्रादेशिक या केन्द्रीय नियंत्रण हो। जनता अपनी मुख्य आवश्यकताओं को यथा-सम्भव सरकार की सहायता या सहयोग के बिना ही पूरा करे; और ऐसे कार्य, जिनके लिए लोगों को सरकार के आश्रित होना पड़े, बहुत ही परिमित हों।

स्वायत्त समाज का चित्र—इस प्रकार, राज्य में समाज अपनी साधारण रोजमर्रा की सभी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में स्वावलम्बी होगा। उसका चित्र बहुत-कुछ गाँधी जी के शब्दों में इस तरह का होगा—

"वह एक स्वतंत्र प्रजासत्तात्मक अथवा लोकराज होगा। अपनी जीवन विषयक प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह गाँव, अपने

पड़ोसी गाँव के ऊपर भी अवलंबित नहीं रहेगा। लेकिन प्राथमिक आवश्यकताओं के बारे में इतना आग्रह रखकर भी दूसरी अनेक वस्तुओं के लिए वह आस-पास के गाँवों पर अवश्य अवलम्बित रहेगा। यह परावलम्बन होगा। लेकिन यह अवलम्बन अपरिहार्य और आवश्यक वस्तुओं के बारे में ही होगा। उदाहरण के लिए प्रत्येक गाँव को अपने लिए धान्य पैदा करना ही चाहिए, कपड़े के लिए पर्याप्त कपास भी। प्रत्येक गाँव में पशु चराने के लिए चरागाह होना ही चाहिए। छोटे बच्चों और प्रौढ़ों के लिए क्रीड़ांगण और मनोरंजन के साधन भी होने चाहिएँ। इसके बाद यदि फालतू जमीन बचे, तो जिन्हें निर्यात के लिए व्यापारी और उपयोगी फसलें पैदा करने में हर्ज नहीं है। लेकिन गाँजा, तमाखू, अफीम जैसी फसलें पैदा करने की इजाजत नहीं रहेगी।

"गाँव में नाट्यगृह, शालागृह और सार्वजनिक सभागृह रहेगा। साफ पानी के लिए खास कुएँ और तालाब रखे जायेंगे। नयी तालीम सात साल के लिए सबको अनिवार्य होगी। गाँव की सब प्रवृत्तियाँ सहकारी तौर पर चलायी जायेंगी। किसी तरह का जातिभेद वा छुआछूत का भाव वहाँ नहीं रहेगा। अपनी न्यायपूर्ण माँगें प्राप्त करने के लिए अहिंसा पर अधिष्ठित सत्याग्रह और असहकार के मार्ग का लोग अवलंबन करेंगे। गाँव में एक ग्रामरक्षक दल भी होगा। उसमें सैनिकों का चुनाव, रजिस्टर के अनुसार क्रमशः किया जायगा। गाँव का शासन पाँच लोगों की ग्राम-पंचायत चलायेगी। पंचायत का चुनाव गाँव के बालिग स्त्री-पुरुष मतदाता प्रतिवर्ष नियमानुसार करेंगे। पंचायत को शासन चलाने के लिए आवश्यक सब अधिकार होंगे। आज न्यायालय से जिस तरह सजाएँ दी जाती हैं, उस तरह की सजाएँ यहाँ नहीं होंगी। इसलिए अपने एक वर्ष के काम की अवधि में विधि, न्याय और शासन तीनों के अधिकार पंचायत को होंगे। इस तरह चाहे जो गाँव स्वतंत्र प्रजासत्तात्मक हो सकेगा। व्यक्ति-स्वातंत्र्य के ऊपर जिसका आधार है, ऐसी सम्पूर्ण लोकशाही वहाँ होगी। अपने मन के अनुसार राज्य-व्यवस्था को आकार देने के लिए वहाँ प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्र होगा। व्यक्ति और उसकी बनायी हुई सरकार दोनों को अहिंसा का

कानून एकसा लागू होगा। ऐसे व्यक्ति और सरकार समय आने पर सारे संसार के विरुद्ध भी खड़े रह सकेंगे, क्योंकि खुद की और अपने गाँव की इज्जत की रक्षा के लिए हथेली पर सिर लेकर वहाँ का प्रत्येक ग्रामवासी हमेशा तैयार रहेगा।"

अब हम जनता के लिए होने वाले कुछ कार्यों के सम्बन्ध में जरा ब्योरे-वार विचार करते हैं। पहले शिक्षा का विषय लें।

शिक्षा—यह स्मरण रखना आवश्क है कि बुनियादी शिक्षा हमारी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा मानव विकास में सहायक होनी चाहिए। आज का शिक्षित व्यक्ति स्वावलम्बी जीवन बिताने में असमर्थ तथा निरंतर बढ़ने वाली आवश्यकताओं से चिन्चित रहता है। वह सेवा-व्रति न होकर परावलम्बी और समाज पर भार होता है, और अपने 'ज्ञान' का उपयोग दूसरों के शोषण में करता हैं। जरूरत है कि शिक्षा केवल मानसिक व्यायाम या दिमागी ऐयाशी न हो। ज्ञान रचनात्मक प्रवृत्तियों द्वारा दिया जाय, जीवनोपयोगी विषयों की ही शिक्षा दी जाय, और उसमें उन आवश्यक दस्तकारियों की सहायता ली जाय, जिन्हें सीख कर गांव और नगर के आद-मियों के जीवन में स्वावलम्बन का उदय हो। इसके अतिरिक्त उनमें सह-कारिता, लोकसेवा, सदाचार की भावना हो। उनमें लोभ-लालच या स्वार्थ या असंतोष का रोग घर किये हुए न हो और वे अपने जीवन का ध्येय ऊँचा रखने वाले हों। पंचायतें श्रम को प्रतिष्ठा दें और अहिन्सा, अपरिग्रह और मानवता को प्रोत्साहन दें। ऐसा होने पर ही शिक्षा सार्थक होगी, और वह फी सदी कुछ थोड़े से लोगों तक परिमित न रह कर उसका प्रकाश गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचेगा, और इसके लिए सार्वजनिक कोष पर भी बहुत भार न पड़ेगा।

स्वास्थ्य और सफाई—इस समय इने-गिने बड़े शहरों में बड़े अस्प-ताल, छोटे शहरों और कस्बों में छोटे अस्पताल, और कुछ गाँवों में नाममात्र के शफाखाने है, और असंख्य गाँवों में स्वास्थ्य और चिकित्सा की कोई व्यवस्था ही नहीं है। यह स्पष्ट ही है कि वर्तमान ढङ्ग के अस्पतालों और शफाखानों के बल पर सर्वसाधारण के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं की जा सकती।

प्रत्येक गाँव में इनकी यथेष्ट व्यवस्था करने के लिए जितना धन चाहिए, उसका भार किसी भी सरकार के वास्ते असह्य ही होगा। इस लिए लोगों को अपना स्वास्थ्य स्वयं ठीक रखने और बीमार न पड़ने की, शिक्षा दी जानी चाहिए। रोज़-रोज बीमार पड़ना असमानजनक है। संयोग से बीमार पड़ जाने वालों की चिकित्सा की यथेष्ट व्यवस्था होनी चाहिए। चिकित्सा संस्थाओं के संचालक और कार्यकर्ता आज-कल की तरह लोभी या पेशेवर न होकर सेवा-भाव से प्रेरित हों, जिनके हृदय में प्रेम और वात्सल्य की निर्मल धारा बहती हो, जो प्राकृतिक चिकित्सा और प्राकृतिक जीवन-पद्धति का जनता में प्रचार करते हुए उसे निरोग रखने के लिए कटिबद्ध हों। ऐसी व्यवस्था होने से साधारण खर्च से ही पंचायतें, और प्रादेशिक सरकार इस विषय में अपना कर्तव्य पूरा कर सकती हैं।

स्वास्थ्य-सुधार के लिए सफाई की आवश्यकता स्पष्ट ही है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के शरीर की सफाई के अतिरिक्त घर-बार, गली-मोहल्लों, सड़कों तथा बस्ती के आसपास की सफाई सम्मिलित है। इस समय शहरों और कस्बों में भी सफाई बहुत कम है, गांवों की तो बात ही क्या! कूड़े-करकट और मल-मूत्र गोबर और हड्डियों आदि के रूप में बहुमूल्य सम्पत्ति नष्ट हो रही है, और इससे स्वास्थ्य को जो क्षति पहुँचती है, वह रही अलग। प्रत्येक गांव या नगर में पंचायतों द्वारा इन चीजों के खाद बनाये जाने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे खाद्य पदार्थों की पैदावार में वृद्धि हो और जनता का स्वास्थ्य भी सुधरे। गांवों में पशुओं के चराने की व्यवस्था की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना चाहिए; अभी तक तो अनेक स्थानों में आदमियों के लिए भी पीने के पानी का ठीक प्रबन्ध नहीं, पशुओं की तो बात ही क्या! पञ्चायतें इस कार्य को जनता के सहयोग से कुशलता-पूर्वक करें।

अपराध-निवारण—पहले कहा जा चुका है कि सर्वोदय व्यवस्था में बुनियादी तालीम से हरेक आदमी अपनी आजीविका स्वयं प्राप्त करने योग्य होगा तथा उसकी नैतिक भावना इतनी ऊंची होगी कि वह दूसरों का शोषण करने या मुफ्त में खाने-पीने आदि को बुरा समझेगा। समाज में आर्थिक विषमता न होगी। किसी को सोने-चाँदी के जेवर या सिक्के आदि संग्रह करने

की न रुचि होगी और न जरूरत ही। घरों में खासकर अन्न-वस्त्र आदि चीजें ही रहेंगी, और इनके लिए किसी को चोरी करने का आकर्षण या आवश्यकता न रहेगी। ऐसी दशा में अपराधों के विशेष होने की सम्भावना नहीं है। तथापि अहतयात के तौर पर पुलिस या रक्षक दल रहेगा, जो स्थानीय पंचायतों की अधीनता में काम करेगा, पुलिस अपराधियों को गिरफ्तार करेगी, पर उन्हें दण्ड दिलाने या उनसे बदला लेने के लिए नहीं, बल्कि उन्हें अच्छा नागरिक बनाने में मदद देने के लिए। उसके पास हथियार रहेंगे, पर केवल हत्या करने पर तुले हुए पागलों से तथा जंगली या हिन्सक जानवरों से रक्षा करने के लिए। अपराधियों के सुधार के लिए जेल और हवालात आदि न होकर सुधार-गृह होंगे, जिनमें सहृदय मनोवैज्ञानिक अपने-अपने क्षेत्र के अन्य सज्जनों के सहयोग से का कार्य करेंगे।

रक्षा-कार्य—आजकल राज्य के कार्यों में रक्षा-कार्य का बोलवाला है। दूसरे महायुद्ध ने दिखा दिया कि वैज्ञानिक और आर्थिक शक्ति वाले देश युद्ध-कार्य में कहाँ तक बढ़ गये हैं। कितने ही देशों ने युद्ध के अधिक विकसित साधनों से काम लिया और मरने-मारने में किसी तरह कमी नहीं की। फिर भी वे देश अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा न कर पाये। यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों ने एक-एक दिन में करोड़ों रुपये खर्च कर दिये, फूँक दिये। कोई गरीब देश हिन्सक कार्य में इतना धन कैसे खर्च करे; यदि दूसरे से उधार लेकर खर्च करता है तो वह, चाहे अनजाने ही क्यों न हो, अपने लिए गुलामी का पट्टा खरीदता है। हम युद्ध में करोड़ों रुपये की सम्पत्ति और लाखों आदमियों के प्राण गवायें तो भी विजय-प्राप्ति की कोई गारन्टी नहीं। हमारी हिन्सा विपक्षी की हिन्सा बढ़ाने का ही काम करेगी। वास्तविक रक्षा तभी होगी, जब हम जीवन का मोह छोड़ कर वीरता पूर्वक मरने के लिए तैयार रहेंगे। ऐसे वीरों के विशाल देश को कोई शक्ति कहाँ तक नष्ट करेगी या कर सकेगी?

सर्वोदय व्यवस्था में गाँवों के आत्म-रक्षा कार्य में भी स्वावलम्बी होने की बात पहले कही जा चुकी है। इस कार्य के लिए आदमियों को सत्याग्रह करने और अपने प्राण न्यौछावर करने की शिक्षा मिली हुई होगी। ये

सत्याग्रही या अहिन्सक सैनिक शान्ति के समय सामूहिक सफाई, शिक्षा, उत्पादन आदि का रचनात्मक कार्य करेंगे। ये अपने त्याग और सेवा-भाव से ऐसा वातावरण बनायेंगे कि एक गाँव या नगर का दूसरे गाँव या नगर से, एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश से, और देश का पड़ोसी देशों से प्रेम और सहयोग हो।

स्मरण रहे कि सर्वोदय अर्थव्यवस्था स्वयं ही रक्षा कार्य में बड़ी सहायक होती है। आजकल औद्योगिक देशों में एक-दूसरे से संघर्ष रहने का एक मुख्य कारण यह होता है कि प्रत्येक अपना तैयार माल दूसरे देशों में खपाना चाहता है। बाजार हथियाने मे बड़ी-बड़ी शक्तियों में होड़ लगी रहती है। सर्वोदय अर्थव्यवस्था में हम अपना तैयार माल किसी दूसरे देश पर लादना नहीं चाहते, इससे हमारा किसी से झगड़ा नहीं रहता। साथ ही स्वावलम्बी होने के कारण हम दूसरे राज्यों को यह मौका भी नहीं देते कि वें हमारे यहाँ बाजार पाने के लिए आपस में लड़ें-झगड़ें। इस प्रकार हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति की नीति स्थापित करने में सहायक होते हैं। जब हम न दूसरों का शोषण करते हैं, और न अपना शोषण होने देते हैं, तो हमारे ऊपर किसी की गिद्ध-दृष्टि क्यों होगी!

फिर भी संयोग से यदि कोई मनचली शक्ति हम पर आक्रमण कर ही बैठे तो हमारे शान्ति-सैनिक युद्ध की ज्वाला को शान्त करने के लिए कोई कसर न रखेंगे। इनकी शक्ति इनकी संख्या पर निर्भर न रह कर इनमें से प्रत्येक के आत्मिक बल के अनुसार होगी। ऐसी सेनाओं की तैयारी एक दम नहीं हो सकती, इन्हें काफी समय की ट्रेनिंग या प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, और यह कार्य धैर्य-पूर्वक किया जाना चाहिए।

यह तो स्पष्ट ही है कि वर्तमान अणु बम और हाइड्रोजन बम के युग में बड़े-बड़े शहरों की घनी बस्तियों और केन्द्रित उद्योगों वाले कलकारखानों वाले देश को जल्दी ही तहस-नहस किया जा सकता है। परन्तु यदि जनता गांवों में बिखरी हुई हो और उद्योग-धंधे विकेन्द्रित हों—जैसा कि सर्वोदय अर्थव्यवस्था में होता है—तो उन्हें सहज ही नष्ट नहीं किया जा सकता।

विशेष वक्तव्य—यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि युद्ध का उपाय हिन्सा नहीं है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का आधार अहिन्सा ही हो सकती है। अहिन्सा, जीवन के सभी क्षेत्रों में होनी चाहिए। इसका अर्थ है, आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिक विकेन्द्रीकरण, राजनैतिक क्षेत्र में शासन का विकेन्द्रीकरण, सामाजिक क्षेत्र में ऊँच-नीच के भेद का निवारण, और शिक्षा के क्षेत्र में शारीरिक और बौद्धिक समतौल। अहिंसक समाज की रचना के लिए सत्याग्रह और असहयोग अनिवार्य हैं। आक्रमणकारियों के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव न रखते हुए और उन्हें कोई कष्ट न पहुँचाते हुए उनके आक्रमण का डट कर विरोध करना चाहिए और किसी भी भय या प्रलोभन से उनसे सहयोग नहीं करना चाहिए। किसी भी दशा में हमें उनकी कुल्हाड़ी का बेंटा या दस्ता नहीं बनना है—जब तक हम इस नियम को पालन करते रहेंगे, आक्रमणकारियों की निराशा और हमारी सफलता निश्चित है।

तीसवाँ अध्याय

सर्वोदय में राज्य-व्यवस्था

आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गांव में पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता या ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गाँव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा—अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके, यहाँ तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी हिफाजत या रक्षा करते हुए मर मिटने के लायक बन जाय। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाय; या उनकी राजी खुशी से दी हुई मदद न ली जाय। ख्याल यह है कि सब आजाद होंगे और सब एक दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे।

—गाँधी जी

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि सर्वोदय में जो अहिन्सक राज्य होता है, उसका कार्य-क्षेत्र क्या होता है, वह क्या-क्या कार्य किस-किस प्रकार करता है। अब हम उसकी व्यवस्था या संगठन का विचार करते हैं।

सरकार का संगठन—इस समय शासन-व्यवस्था ऐसी है कि शक्ति और अधिकार ऊपर से नीचे को आते हैं। आदर्श गणतंत्र में अधिकारों का मूल स्रोत सर्वसाधारण को माना जायगा। जनता की स्थानीय संस्थाएँ स्वावलम्बी होंगी। अपने-अपने क्षेत्र का बहुत-सा कार्य वे स्वयं निपटायेंगी, वे कुछ थोड़े से विषय प्रादेशिक सरकारों को सौंपेंगी और प्रादेशिक सरकारें कुछ खास-खास विषयों के अधिकार केन्द्रीय सरकार को देंगी। इस तरह शासन के ज्यादा-से-ज्यादा अधिकार जनता की नीचे की

इकाइयों—ग्राम-पंचायतों और नगर-पंचायतों—को प्राप्त होंगे। ऊपर के संगठनों के अधिकार सिर्फ वे ही होंगे जो नीचे की इकाइयाँ देना जरूरी समझें। इस तरह पंचायतें अपने-अपने क्षेत्र में यथेष्ट अधिकार-सम्पन्न रहेंगी। वे अपने से बड़े क्षेत्र का ध्यान रखते हुए प्रादेशिक इकाइयों का, और प्रादेशिक इकाइयाँ केन्द्रीय संगठन का निर्माण करेंगी। ऊपर की इकाइयों के अधिकार तथा शासन-विषय क्रमशः कम होंगे और केन्द्र का तो कुछ खास निर्धारित विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों में कोई हस्तक्षेप ही न होगा।

निर्वाचन पद्धति—निर्वाचन की वर्तमान पद्धति के दोष पहले बताये जा चुके हैं। सर्वोदय व्यवस्था में चुनाव तो होगा, पर यह दूषित पद्धति नहीं रहेगी। शासन की प्रारम्भिक इकाइयों अर्थात् ग्राम-पंचायतों और नगर पंचायतों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर, प्रत्यक्ष रूप में होगा। पर मतदाता के लिए यह आवश्यक होगा कि वह शरीर-श्रम से निर्वाह करनेवाला या काफी घंटे राष्ट्र की सेवा करनेवाला हो। ग्राम-पंचायतों और नगर-पञ्चायतों के सदस्य प्रादेशिक विधान-सभाओं का चुनाव करेंगे और विधान-सभाओं के सदस्य केन्द्रीय संसद (पार्लिमेंट) के सदस्यों का चुनाव करेंगे। इस प्रकार विधान-सभाओं और संसद का चुनाव परोक्ष रूप से होगा। यह बात बहुत से आदमियों को प्रतिगामिता-सूचक यानी पीछे की ओर लौटानेवाली, प्रतीत होगी। परन्तु निर्वाचन पद्धति के दोषों का गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर विधान-सभाओं और संसद के प्रत्यक्ष चुनाव छोड़ने ही पड़ेंगे। प्रत्यक्ष चुनाव केवल स्थानीय-संस्थाओं तक परिमित रहेगा, जहाँ आदमी यह जानते हैं कि कौन व्यक्ति कैसे चरित्र और विचार वाला है, उसमें त्याग, श्रम, और सेवाभावना तथा निष्पक्षता कितनी है।

इस प्रकार सर्वोदय व्यवस्था में निर्वाचन पद्धति का उपयोग बहुत सरल और सीमित होगा। कोई व्यक्ति स्वयं उम्मेदवार बनने के लिए लालायित न होगा; दूसरे के बहुत आग्रह पर ही वह उम्मेदवार बनना स्वीकार करेगा। और, उम्मेदवार बनने पर वह किसी से मतों की भिक्षा मांगने नहीं जायगा, और न अपने मित्रों या एजन्टों आदि से यह भिक्षा-वृत्ति करायेगा।

सर्वोदय व्यवस्था में निर्वाचक उसी सज्जन को अपना मत देंगे, जिसने सामाजिक जीवन में ईमानदारी, परिश्रमशीलता, निष्पक्षता और लोक-हितैषिता का सबसे अधिक परिचय दिया हो, तथा जो लोभ, तृष्णा और परिग्रह से मुक्त हो। इस तरह विधान-संस्थाओं के सदस्यों का जीवन लोकसेवियों का जीवन होगा। उनके रहनसहन में सादगी होगी, वे साधारण पारिश्रमिक से संतुष्ट होंगे।

शासन-संस्थाएँ; ग्राम-पञ्चायतें—ऊपर इन संस्थाओं का उल्लेख हुआ है—(१) ग्राम-पंचायतें (२) नगर-पंचायतें, (३) प्रादेशिक विधान-सभाएँ, (४) केन्द्रीय संसद। संस्थाओं के ये नाम आजकल की भाषा के अनुसार हैं। सर्वोदय व्यवस्था में इनके स्वरूप और संगठन तथा अधिकार में, इस समय की अपेक्षा कितना अंतर होगा, यह पहले बताया जा चुका है। उसकी दृष्टि से इनके नामों में भी परिवर्तन हो सकता है। अस्तु, पहले ग्राम-पंचायतों की बात लें।

कितने ग्राम-क्षेत्र की एक इकाई मानी जाय, यह गाँव की आबादी, एक गाँव से दूसरे गाँव की दूरी, और खेती तथा उद्योगों की स्थिति आदि पर निर्भर है। यदि बस्ती घनी और अधिक है तो इकाई कम गाँवों की, यहाँ तक कि एक गाँव की भी हो सकती है। अगर आबादी थोड़ी-थोड़ी है तो इकाई में कई गाँवों को ले सकते हैं। अगर गाँव का एक दूसरे से फासला बहुत है तो आबादी कम होने पर भी थोड़े ही गाँव लेने होंगे। इसी प्रकार जिन पास-पास के गाँवों में आदमियों की खेती या ग्रामोद्योग परस्पर सम्बन्धित है, उन्हें एक सीमा तक एक ही इकाई में लिया जाना ठीक होगा। निदान, पंचायत सुविधापूर्वक कार्य कर सके, पंच लोग अपने पदों के निवासियों से अच्छी तरह परिचित हों, उनकी आवश्यकताओं, अभावों, विचारों तथा भावनाओं का यथेष्ट ज्ञान रखते हों, उतने-उतने क्षेत्र की एक ग्राम-पंचायत होनी चाहिए। उसका लक्ष्य ग्राम-स्वावलम्बन होना चाहिए।

ग्राम-पंचायतों का काम अपने-अपने क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, रक्षा, सफाई, खेती, ग्रामोउद्योग आदि सम्बन्धी जनता की मूल आवश्यक-

ताओं की पूर्ति की व्यवस्था करना होगा। ये गाँव की सड़क, कुएँ, तालाब, खाद, वाचनालय, पाठशाला और व्यायामशाला आदि का आयोजन करेंगी। इन्हें सांस्कृतिक और चारित्रिक विकास की ओर भी यथेष्ट ध्यान देना होगा, जिससे गाँव वाले एक दूसरे के साथ समुचित सहयोग की भावना रखते हुए ग्रामोत्थान में भाग लें।

नगर-पञ्चायतें—ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में जो बातें ऊपर कही गयी हैं, वे नगर-पंचायतों के संगठन में भी ध्यान रखने की हैं। वर्तमान दशा में कुछ नगर (जैसे भारत में कलकत्ता, कानपुर, बम्बई आदि) इतने बड़े क्षेत्र और आबादी वाले हो गये हैं, कि वहाँ के अनेक आदमियों का एक दूसरे से विशेष सम्पर्क नहीं रहता। पंचायत-निर्माण की दृष्टि से ऐसे बड़े नगरों को कई-कई स्थानीय इकाइयों में विभाजित करना, और एक-एक इकाई के लिए एक उपनगर-पञ्चायत तथा सब उपनगर-पञ्चायतों द्वारा एक सम्मिलित नगर-पंचायत बनाया जाना उचित होगा। प्रत्येक नगर-पञ्चायत का काम अपने-अपने क्षेत्र में जनता की प्रमुख आवश्यकताओं की व्यवस्था करने के साथ यह देखना होगा कि नगर में कोई ऐसा उद्योग-धंधा न हो, जो गाँवों के शोषण के आधार पर संचालित हो। नगर में होने वाला उत्पादन गांव के उत्पादन का पूरक और समन्वयकारक ही होना चाहिए। नगरों के आदमी शिक्षा आदि में अपने ग्रामीण भाइयों से आगे बढ़े हुए हों तो उन पर सेवा-कार्य का उत्तरदायित्व अधिक है। उन्हें किसी प्रकार अपने ग्रामीण भाइयों की अल्पज्ञता से अनुचित लाभ न उठा कर उनको अपने धरातल पर लाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। गाँव और नगर वालों के भेद-भाव सूचक खाई को पाटना नगर-पञ्चायत को एक आवश्यक कर्तव्य है।

प्रादेशिक विधान-सभाएँ—ग्राम-पञ्चायतों और नगर-पञ्चायतों के सम्बन्ध में पहले लिखा गया है। प्रादेशिक विधान सभाओं का चुनाव इनके सदस्यों द्वारा अर्थात् परोक्ष रीति से ही होगा। इनका काम ग्राम और नगर पञ्चायतों को आवश्यक परामर्श देना, उनके आपसी सम्पर्क बढ़ाने में योग देना, तथा उनके लिए भूमि तथा विकेन्द्रित उद्योग-धन्धों आदि के सम्बन्ध में ऐसी

नीति निर्धारित करना है, जिससे समस्त प्रदेश में एकता और सहयोग की भावना बढ़े। ये ऐसी शिक्षा तथा ऐसे अनुसंधान आदि की व्यवस्था करेंगी, जिससे गाँवों और नगरों के निवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सांस्कृतिक उन्नति की सुविधा हो। ये भिन्न-भिन्न गाँवों और नगरों में यातायात के लिए सड़कें बनवाने का भी प्रबंध करेंगी। कुछ विशेष दशाओं में यदि सिंचाई के लिए नहरें, नल-कूप और बड़े-बड़े बांध आदि बनवाना आवश्यक प्रतीत हुआ तो उसके सम्बन्ध में भी ये ही निश्चय करेंगी।

संसद—प्रत्येक देश में एक संस्था प्रादेशिक विधान-सभाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली होनी चाहिए, जिसे संसद या पार्लिमेंट कहते हैं। इसका उद्देश्य विविध प्रादेशिक कानूनों और व्यवहारों में समन्वय स्थापित करना होगा। पहले कहा जा चुका है कि जनता की रोजमर्रा की आवश्यकताओं का सब सामान स्थानीय और विकेन्द्रित उद्योगों द्वारा ही तैयार किया जायेगा। इस प्रकार केन्द्रित उत्पादन केवल सैनिक उद्योगों, बिजली आदि शक्ति की उत्पत्ति, खानों, जंगलों, और भारी यंत्रों या बड़े कारखानों तक ही सीमित रहेगा। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में माल ढोने के साधनोंकी उपयोगिता का कम रहना स्पष्ट ही है। विदेशी व्यापार का परिमाण भी बहुत कम रहने वाला ठहरा, इसलिए भी रेलों, जहाजों आदि का महत्व बहुत सीमित रहेगा।

न्याय-संस्थाएँ—यह याद रखना आवश्यक है कि न्याय सम्बन्धी स्थानीय कार्य अधिकांश में पंचायती अदालतों द्वारा ही हो जायगा, और जब तक किसी नैतिक विषय की अवहेलना या कानून का दुरुपयोग न हो, उनका फैसला अन्तिम माना जायगा। कुछ विशेष इने-गिने मामलों की ही अपील हो सकेगी; उसके लिए तथा प्रादेशिक मामलों के लिए राज्य के न्यायालय होंगे। वकील अपनी आजीविका के लिए फीस या मेहनताने पर निर्भर न रह कर शरीर-श्रम से अपना निर्वाह करेंगे और जनता को न्याय दिलाने का काम निःशुल्क-सेवा-भाव से करेंगे, अथवा कुछ खास और थोड़ी सी दशाओं में

उन्हें राज्य से कुछ पारिश्रमिक मिल जायगा। इस प्रकार न्याय-कार्य विकेन्द्रित होने के साथ निष्पक्ष, सरल, सस्ता और जल्दी होने वाला होगा। अपराधी सिद्ध होनेवाले व्यक्तियों के लिए 'सुधार-गृहों' की व्यवस्था होगी, जो स्वावलम्बी और कारखानों के रूप में होंगे।

सरकारी नौकर, उनकी योग्यता और वेतन—शासन-कार्य में सरकारी नौकरों की योग्यता का महत्व स्पष्ट है। सर्वोदय व्यवस्था में योग्यता का अर्थ कुछ परीक्षाओं का पास करना और जैसे-तैसे प्रसिद्धि प्राप्त करना ही न होगा। इस प्रकार किसी आदमी की, उत्तरदायी पद पर नियुक्ति सीधे या एकदम नहीं होगी। केन्द्रीय क्षेत्र में ऐसे ही व्यक्ति नियुक्त किये जायँगे, जिन्होंने प्रादेशिक क्षेत्र में लोक सेवा, त्याग और कार्यकुशलता का परिचय दिया हो। इसी प्रकार प्रादेशिक क्षेत्र में नियुक्त होनेवाले व्यक्ति, स्थानीय क्षेत्र में इन गुणों का परिचय देने वाले सज्जन होंगे। सब कर्मचारियों को वेतन सार्वजनिक कोष से दिया जायगा—ग्राम-सेवकों को पञ्चायती कोष से, प्रादेशिक और केन्द्रीय कार्यकर्ताओं को उन-उन सरकारों द्वारा। वेतन अधिकांश में जिंस के रूप में होगा, अर्थात् कार्यकर्ताओं तथा उनके परिवार आदि के लिए आवश्यक भोजन-वस्त्र और मकान की व्यवस्था की जायगी। शिक्षा और चिकित्सा सार्वजनिक संस्थाओं में हो ही जायगी। उन्हें अपनी निजी फुटकर आवश्यकताओं के लिए—जो बहुत कम ही होंगी—विशेष द्रव्य की जरूरत न होगी। वे अल्प पारिश्रमिक से ही संतुष्ट होंगे। इस प्रकार कोई व्यक्ति खासकर वेतन और भत्ते आदि के लोभ से सरकारी पदों की ओर आकर्षित न होगा। उन्हें उनके सेवा-कार्य के लिए सरकार और जनता में आदर-प्रतिष्ठा मिलेगी, पर वे उसके पीछे नहीं पड़ेंगे।

जनता से सम्पर्क, मानवता का विकास—पहले कहा गया है कि सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए वे लोग ही प्राथमिकता पायेंगे, जिन्होंने जनता की अधिक से अधिक सेवा का परिचय दिया है। इस प्रकार सरकारी पद पर आरूढ़ होकर भी उन्हें जनता से सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। उनका रहनसहन, बर्ताव-व्यवहार ऐसा न हो कि उनमें और सर्वसाधारण में कृत्रिम

भेद-भाव पैदा करदे। उनमें गरीबों, किसानों और मजदूरों के घर जाने और उनके साथ बैठने-उठने तथा उनके विचार और आवश्यकताएँ जानने में किसी प्रकार का संकोच न होना चाहिए। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि वे सरकारी पद प्राप्त करने से पूर्व जनता में घुले-मिले थे, और इस पद से अवकाश पाने पर भी उन्हें फिर जनता का ही होकर रहना है; फिर, इस बीच के समय में वे जनता से दूर-दूर क्यों रहें। सर्वोदय व्यवस्था से सरकारी कर्मचारी लोकसेवा के भावों से ओत-प्रोत होंगे, वे अपने व्यवहार में उदारता, सहृदयता, त्याग और प्रेम का अधिकाधिक परिचय देंगे। वे जनता से यथेष्ट सम्पर्क रखेंगे और इसके प्रत्यक्ष प्रमाण-स्वरूप वे शरीर-श्रम को आदर देने वाले ही नहीं, स्वयं शरीर-श्रम करने वाले होंगे। इस प्रकार वे सरकारी नौकरी को अपने विकास का साधन बनाएँगे।

बापू के सपने का रामराज्य; श्री मश्रूवाला के शब्दों में—

पहले कहा गया है कि म० गांधी ने समय-समय पर स्वराज्य या रामराज्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। उनके सामने राष्ट्र के समग्र जीवन का प्रश्न था; उसमें राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक या सामाजिक समस्याओं का जुदा-जुदा रूप न था। इस प्रकार गांधी-साहित्य एक महान् समुद्र है; श्री किशोरीलाल मश्रूवाला ने उसका मंथन करके बतलाया है कि उनके ख्याल से बापू के रामराज्य में हिन्दुस्तान का नक्शा कुछ नीचे लिखे ढङ्ग का हो सकता है।

(१) उसमें कुल हिन्दुस्तान के रहनेवालों में, हम एक ही कौम या राष्ट्र हैं—ऐसा पक्का निश्चय होगा, चाहे फिर देश को पूरी तरह खुदमुख्तियार या कुछ बातों में खुदमुख्तियार प्रदेशों में बाँट दिया जाये या राजनीतिक और इन्तजाम के खयाल से और भी ज्यादा हिस्से क्यों न कर दिये जायें।

(२) उसमें हिन्दू, मुसलमान वगैरह सब तरह की सामाजिक जमातों में एक दूसरे पर पूरा विश्वास होगा और पूरी शान्ति रहेगी। कोई जाति किसी दूसरी जाति पर हावी होने या उसे मार भगाने की कोशिश नहीं करेगी और न जीवन के अनेक पहलुओं में से एक के प्रति रियायत और दूसरे के प्रति

ज्यादती करेगी। हिन्दू, मुस्लिम या सिख राज्य इत्यादि कायम करने की कोई कल्पना ही नहीं होगी, और न यही कोशिश होगी कि हिन्दू, मुस्लिम या कोई दूसरी जातीय संस्कृति सब में प्रधान समझी जाये।

हिन्दुस्तान पूरा-पूरा उसके हर एक बच्चे का राज्य माना जायेगा, चाहे वह किसी भी धर्म, दर्जे, खयाल या जाति आदि का क्यों न हो।

(३) राष्ट्र की सलामती उस उसूल पर नहीं मानी जायगी, जिसका नाम है, "हथियारों से कायम की हुई शान्ति", बल्कि चाहे बाहरी हमला हो या भीतरी दंगा हो, उसका और किसी भी अन्याय का मुकाबला अहिंसात्मक साधनों से किया जायगा, लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हमारे समाज का नैतिक गठन मजबूत हो। हमारी विदेश नीति अ-साम्राज्यवादी और अशोषक, दूसरे मुल्कों का शोषण न करने की हो; हमारी भीतरी राजकीय सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था शोषणहीन और समान दृष्टि के समाज की हो और हमारा दूसरे राज्यों और उनके लोगों के साथ मित्रभाव का सम्बन्ध हो।

(४) उसमें अलग-अलग भाषा बोलने वाले लोगों में कोई ईर्ष्या या अलगपन का भाव नहीं होगा। इसलिए अलग-अलग भाषा बोलने वाले हिन्दुस्तानियों में यह तनातनी नहीं होगी कि अमुक सरहदी इलाका हमारा है और हमें ही मिलना चाहिए।

(५) उसमें विकेन्द्रीकरण, भाषावार प्रदेश और अलग-अलग इकाइयों को ज्यादा से ज्यादा खुदमुख्तियारी देने पर इस वजह से जोर दिया जायगा कि आम जनता अपना रोजाना काम-काज आसानी के साथ चला सके और उसे ऊपरी अधिकारियों का बहुत ज्यादा मुँह न ताकना पड़े, न हर एक बात पर उनका अंकुश मालूम हो, और न उन्हीं के हुक्मों को उठाना पड़े। ये छोटी खुदमुख्तियार इकाइयाँ बनाने का मक्सद यही है कि जनता अपने स्वतंत्र निर्णय और जिम्मेदारी से अपनी रोजाना जरूरतों और आदर्शों को पूरा करने के लिए जितना ज्यादा काम कर सके, करे, ताकि बहुत ज्यादा केन्द्रीकरण के जो लाजमी नतीजे हैं, उनसे—जैसे काम में देरी, दफ्तरी काम का बहुत बढ़ावा और अमलदारशाही आदि से—कारबार बच जाये। इस विकेन्द्री-

करण से हर नागरिक यह महसूस करे कि अपने देश के रोजाना कारबार में किसी न किसी दायरे में उसका खुद का भी कुछ हिस्सा है; यह नहीं, कि वह तो महज एक वोट डाल देनेवाला है, जो हर चौथे-पाँचवें साल बिना सोचे-समझे अपना वोट डाल देता है, और उसके बाद एक निर्जीव चीज बन जाता है, जिस पर एक कारोबारी यंत्र चाहे जैसा नियंत्रण चलाता रहता है। लेकिन विकेन्द्रीकरण के माने यह भी नहीं है कि हम अपने कुनबे अलग-अलग बनाकर एक दूसरे के बीच दीवारें खड़ी कर लें, और न यही उसके माने हैं कि केन्द्र की या अपने जैसी या अपने से ऊपर रही इकाइयों के मामलों में और संगठन में हम कम दिलचस्पी लेने लगें और वे कमजोर पड़ जायें।

(६) बापू के रामराज्य के समाज में ऊँचे और नीचे वर्ण, छूत और अछूत जातियाँ, हुकूमत चलानेवाला और उसे माननेवाला वर्ग, मालिक और गुलाम, कछ बहुत मालदार लोग और कुछ एकदम दरिद्र या इस तरह के कोई दूसरे जबरदस्त या अन्याययुक्त भेद नहीं हो सकते। वह ऐसा समाज होगा, जिसमें सब तरह के मेहनत के काम और रोजगारों—जो ईमानदारी से किये जाते हों और समाज को जिनसे फायदा पहुँचता हो—की इज्जत एकसी मानी जाती है और कोई काम या पेशा ऐसा नहीं माना जाता, जिसे कितना ही पढ़ा-लिखा, मालदार या बड़े खानदान का आदमी भी करने में शर्म समझे।

(७) बापू के रामराज्य में कला-कौशल, विज्ञान और उद्योग के क्षेत्रों में लोगो के आरोग्य, नीति और जीवन के ऊँचे गुणों को कायम रखने पर बहुत ज्यादा महत्व दिया जायेगा, उनके द्वारा लोगों के दिमाग, व्यक्तित्व और परोप-कारी भावनाओं का विकास करने और युद्ध तथा हिंसा का अन्त लाने का उद्देश्य रख जायेगा। लोग मनुष्य और दूसरे जीवों और सम्पत्ति को आदर की नजर से देखेंगे और उसे मनमाने ढंग से बरबाद नहीं करेंगे। सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता का नाप इस तरह से नहीं निकाला जायगा कि आदमी की जरूरतें, ऐश-आराम की चीजें कितनी हद तक बढ़ी हुई हैं और व्यापार, लेन-देन, शाही महल वगैरह कितने लम्बे-चौड़े हैं, बल्कि इस पर से कि कला-कौशल, विज्ञान और उद्योगों का विकास इस तरह हो कि

बेकारी का सवाल हल हो जाये। इस विकास का मकसद यह नहीं होगा कि किसी चीज के बनाने में लगे हुए कामगारों की तादाद घटाकर उसे सस्ता कर दिया जाये, या उसके बनाने के लिए तरह-तरह के जरूरी कामों को छोटे-छोटे हिस्सों में तोड़ दिया जाये, जिसका नतीजा यह हो कि कामगार कठपुतली की तरह एक-एक तेजी-से काम करनेवाला यन्त्र बन जाये, जिसकी वजह से दिन भर के काम के बाद थक कर वह लस्त-पस्त हो जाये और उसका दिमाग भी किसी काम का न रहे, और इसलिए उसे उत्तेजना दिलानेवाले नाच-तमाशे, शराब आदि के बिना चैन ही न पड़े।

(८) बापू के राज्य में शायद यह जरूरत पड़ जाये कि बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली जैसे कई बड़े-बड़े शहर सैकड़ों छोटी-छोटी बस्तियों में बाँट दिये जायें। उनके सपने में तो कई मञ्जिलवाली खचाखच भरी इमारतों और आबादियों के लिए ज्यादा गुंजाइश नहीं है, न उसमें आप बहुत ऐश की जिन्दगी तथा दौलत और भोगविलास का साम्राज्य पायेंगे। बल्कि वह एक ऐसा चित्र है, जिसमें हरे-भरे खेत, छोटे-छोटे साफ-सुथरे मकान हैं, जिनमें मर्द, औरत और बच्चे सभी रोजाना सात-आठ घन्टे मेहनत करते हैं और अपने काम में रस लेते हैं। चाहे खेत का मजदूर हो, चाहे स्कूल का बच्चा हो, और चाहे प्रजातन्त्र का राष्ट्रपति हो, सभी के स्नायु मजबूत और दिमाग ताजा हैं।

(९) बापू के रामराज्य में आप सारे देश में दवाखानों, अस्पतालों, दवाई बेचने वालों, और बेकारों और अनाथों के लिए आश्रमों और अन्नसत्रों का जाल फैला हुआ नहीं पायेंगे; क्योंकि उसमें ज्यादा बीमारी, भुखमरी और बेरोजगारी होगी ही नहीं; बूढ़ों और अपंगों की देखभाल गाँव के लोग ही, आम तौर से घरों में कर लेंगे, बल्कि हमें दीखेगा कि उसमें चारों तरफ आरोग्य और सफाई है, गन्दगी का नाम नहीं। लोग अच्छी, पौष्टिक खुराक खाते हैं और साफ पानी पीते हैं, मामूली गड़बड़ों और हरकतों का इलाज सादे तरीकों से कर लेते हैं। कुदरती इलाज के ढङ्गों की और छोटी-मोटी घरेलू दवाइयों की आम जानकारी होगी।

(१०) तालीम हर जगह होगी, लेकिन स्कूल जैसे आज हैं, उससे कहीं ज्यादा अलग किस्म के होंगे। उसका मुख्य और आकर्षक मकान वह होगा, जहाँ सब मिल कर उद्योग करते हैं। उसके बाद देखने लायक उसके साफ रसोई-घर और भोजनालय के मकान होंगे, (जो सभा-भवन का भी काम करेंगे)। इसके बाद पुस्तकालय, अध्ययन-मन्दिर और पढ़ाई के क्लास के मकान होंगे।

आने वाले दर्शक लोगों को उसके पाखाने, पेशाबघर और स्नानघर भी दिखलाये जायेंगे। पढ़ाई के कमरे जगह-जगह पर बिखरे हुए होंगे। कहीं उद्योग-भवन के एक हिस्से में पढ़ाई हो रही होगी, तो कहीं रसोई में, पुस्तकालय में, कोठार में, पाखानों में, खाद के गढ़ों के पास खेतों में और कहीं पेड़ों की छाया में भी। आप को शायद एक नदी, तालाब या कुएँ के पास भी कोई दर्जा पढ़ता दीख जायेगा, जिसके लड़के पढ़ते होंगे और और खेलते भी होंगे। चीजें साफ सुन्दर होंगी। लेकिन उन लोगों के लिए वहाँ बहुत गुंजाइश नहीं होगी, जो निरे काहिल और भले लगने वाले फुर्तीले चमकदार कपड़े पहिने विद्वान् हैं, जो डरे हुए हैं और दूसरों से बढ़े-चढ़े समझे जाते हैं।

हमारा-कर्तव्य—क्या हम देश में इस प्रकार का राज्य चाहते हैं ? यदि हम वास्तव में इसे चाहते हैं तो सरकार के भरोसे न बैठे रहकर हमें सोचना चाहिए कि कितना काम स्वयं हमारे करने का है। उस काम को करने में हमें तन-मन से लग जाना चाहिए, उसके लिए हमें अपने स्वभाव, आदतों और रहनसहन में जो परिवर्तन करना जरूरी मालूम हो, उसे करने में कोई संकोच न होना चाहिए। हम अपने उपदेशों और भाषणों से नहीं, अपने जीवित उदाहरणों से दूसरों के शिक्षक या प्रेरक बनें। तभी ऐसे राज्य की स्थापना होने की दिशा में प्रगति होगी, जैसा सर्वोदय व्यवस्था में होने की आशा है।

बहुमत का यह अर्थ नहीं कि वह एक व्यक्ति की भी राय को, यदि वह ठीक है, दबा दे। एक व्यक्ति की राय को, यदि वह ठीक है, बहुतों की राय की अपेक्षा अधिक महत्व देना चाहिए।

[२८-६-४४ का वक्तव्य]

पंचायती राज्य

हमारी समझ में लीग ने तारीफ के लायक काम नहीं किया तो हम कहें कि उसने तारीफ के लायक काम नहीं किया। इसी तरह अगर कांग्रेस ने तारीफ के लायक काम नहीं किया तो हम कांग्रेस वालों से भी कहें कि आपका काम तारीफ के लायक नहीं है। जब ऐसा होगा तभी वह पञ्चायती राज बनेगा। अगर एक गिरोह अपने मन से चलता रहे तो वह पंचायत का राज नहीं हुआ।

[प्रार्थना-प्रवचन, ३ जून १६४७]

'सत्याग्रही राज्य में गाँव का प्रबन्ध करने वाली पंचायत के पाँच मेम्बर होंगे, जिनका चुनाव प्रतिवर्ष गाँव के वयस्क नर-नारियों द्वारा होगा। पंचायत सम्मिलित व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका होगी।

['हरिजन' २६-७-४०]

सरकारी नौकर

अगर किसी को इन सरकारी अफसरों के खिलाफ कोई शिकायत है तो उसका इलाज यह है कि वे हुकूमत के पास चले जायँ या अखबारों में छपवायें। यदि किसी अफसर ने रिश्वत खा ली है या वह निकम्मा है तो उसके खिलाफ कार्रवाई की जाय। जो लोग रिश्वत लेते हैं, वे अपने और अपने मुल्क के साथ गुनाह करते हैं......स्वराज्य से पहले तो सरकारी अफसर हमारे नौकर नहीं, बल्कि हाकिम बनकर बैठ गये थे। वे अंग्रेजी हुकूमत के प्रति वफादार थे और यदि उस वक्त रिश्वत खाते थे तो अंग्रेजी हुकूमत का गुनाह करते थे। मगर आज भी यदि वे ऐसा करें तो हिन्दुस्तान के साथ गुनाह करते हैं।

[प्रार्थना प्रवचन, १६ अक्तूबर, १६४७]

प्रधान मंत्री किसान होगा

हमारे प्रधान मन्त्री जवाहरलाल जी विद्वान हैं, इतिहासकार हैं और बड़े लेखक हैं, मगर वे खेतों के बारे में क्या समझें? हमारे देश में ८० प्रतिशत से ज्यादा जनता किसान है। सच्चे प्रजातन्त्र में हमारे यहाँ किसानों का राज्य होना चाहिए। उन्हें बैरिस्टर बनाने की जरूरत नहीं। अच्छे किसान बनना, उपज बढ़ाना, जमीन को कैसे ताजा रखना, यह सब जानना उनका काम होना चाहिए। ऐसे योग्य किसान होंगे, तो मैं जवाहरलाल जी से कहूँगा कि आप इनके मन्त्री बन जाइये। हमारा किसान-मन्त्री महलों में नहीं रहेगा, वह तो मिट्टी के घर में रहेगा। दिन भर खेतों में काम करेगा। तभी योग्य किसानों का राजा हो सकता है।

अगर मेरी चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा प्रधान-मन्त्री किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योंकि वह यहाँ का राजा है। मुझे बचपन से सिखाया था—हे किसान तू बादशाह है। किसान जमीन से अन्न पैदा न करें, तो हम क्या खायेंगे? हिन्दुस्तान का सचा राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं।

अगर योग्य किसानों को मन्त्रिमण्डल में लेने और प्रधानमन्त्री का पद भी देने की हिम्मत किसी पार्टी में हो, तो वह अपने घोषणा-पत्र में ऐसा जाहिर करे। यह सही दिशा में एक सुन्दर पहला कदम होगा। उसके बाद कोई मन्त्री महलों में न रहेगा, किसी मन्त्री और सरकारी अधिकारियों को ऊँची तनख्वाहें न दी जायंगी, बड़े-बड़े खर्चीले तथा बरबादी भरे सरकारी महकमे नहीं रहेंगे। [प्रार्थना प्रवचन]

यदि साधारण जीवन में अ २५ रु० की मासिक आय से सन्तुष्ट है तो उसे अपने मन्त्री बनने पर २५० रु० की आशा करने का कोई अधिकार नहीं है। ['हरिजन', ३-६-३८]

पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी

कांग्रेस ने यह कह दिया कि मंत्रियों के नीचे पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी भी होने चाहिएँ और वे सिविल सर्विस के लोग नहीं, बल्कि बाहर कांग्रेस से

या जो लोग काँग्रेस से अच्छा सम्बन्ध रखते हैं, उनमें से पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी बनाये जायँ। मुफ्त तो कोई बनता नहीं है, सब को दरमाहा देने को चाहिए। आज अगर करोड़ों रुपये की हुकूमत हमारे हाथ में नहीं आती तो हम कहाँ से दरमाहा दे सकते थे और कहाँ से देते! आज वह अगर हमारे हाथ में आ गयी है तो हम डेढ़-दो हजार रुपया दें, मकान दें, यह दें, वह दें और पीछे पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी बना दें! मुझको तो यह सब चुभता है; चाहे वह पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी प्रधान मन्त्री का हो, गृह-मंत्री का हो या किसी का भी हो, और इसके लिए पार्लिमेंट उनको मजबूर करे, पार्लिमेंट तो क्या कांग्रेस-पार्टी कहो। कांग्रेस-पार्टी का तो शब्द भी मुझको अच्छा नहीं लगता है। कांग्रेस तो सब लोगों की है।

[प्रार्थना प्रवचन, १६ दिसम्बर, १६४०]

हिन्दुस्तानी गवर्नर

१—हिन्दुस्तानी गवर्नर को चाहिए कि वह खुद पूरे संयम का पालन करे और अपने आस-पास संयम का वातावरण खड़ा करे। इसके बिना शराबबन्दी के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

२—उसे अपने में और अपने आस-पास हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का वातावरण पैदा करना चाहिए, जो हिन्दुस्तान के करोड़ों गूंगों के साथ उसकी एकता की जाहिरा निशानी हो, मेहनत करके रोटी कमाने की जरूरत का और संगठित हिंसा के खिलाफ—जिस पर आज का समाज टिका हुआ मालूम होता है—संगठित अहिंसा का, जीता-जागता प्रतीक हो।

३—अगर गवर्नर को अच्छी तरह काम करना है, तो उसे लोगों की निगाहों से बचे हुए, फिर भी सबकी पहुँच के लायक, छोटे से मकान में रहना चाहिए। ब्रिटिश गवर्नर स्वभाव से ब्रिटिश ताकत को दिखाता था। उसके और उसके लोगों के लिए सुरक्षित महल बनाया गया था—ऐसा महल जिसमें वह और उसके साम्राज्य को टिकाये रखने वाले उसके सेवक रह सकें। हिन्दुस्तानी गवर्नर राजा नवाबों और दुनिया के राजदूतों का स्वागत करने के लिए थोड़ी शान-शौकत वाली इमारतें रख सकता है। गवर्नर के

मेहमान बनने वाले लोगों को उसके व्यक्तित्व और उसके आस पास के वातावरण से "ईवन अण्टु दिस लास्ट" (सर्वोदय)—सब के साथ समान बरताव—की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके लिए देशी या विदेशी महंगे फर्नीचर की जरूरत नहीं। 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिए। यह सिर्फ उसके दरवाजे की ही शोभा न बढ़ाये, बल्कि उसके रोज के जीवन में भी दिखायी दे।

४—उसके लिए न तो किसी रूप में छुआछूत हो सकती है और न जाति, धर्म या रंग का भेद। हिन्दुस्तान का नागरिक होने के नाते उसे सारी दुनिया का नागरिक होना चाहिए। हम पढ़ते हैं कि खलीफा उमर इसी तरह सादगी से रहते थे, हालांकि उनके कदमों पर लाखों-करोड़ों की दौलत लोटती रहती थी। इसी तरह पुराने जमाने में राजा जनक रहते थे। इसी सादगी से ईटन के स्वामी, जैसा कि मैंने उन्हें देखा था, अपने भवन में ब्रिटिश द्वीपों के लार्ड और नवाबों के लड़कों के बीच रहा करते थे। तब क्या करोड़ों भूखों के देश हिन्दुस्तान के गवर्नर इतनी सादगी से नहीं रहेंगे?

५—वह जिस प्रान्त का गवर्नर होगा, उसकी भाषा और हिन्दुस्तानी बोलेगा, जो हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा है और नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है। वह न तो संस्कृत शब्दों से भरी हुई हिन्दी है और न फारसी शब्दों से लदी हुई उर्दू।

['हरिजन सेवक', २४-८-४८]

राष्ट्रपति

भारतीय प्रजातंत्र का प्रेसीडेन्ट एक भंगी की लड़की बनेगी, यदि कोई पाक और बहादुर लड़की मुझे मिल गयी। प्रेसीडेन्ट बहुत पढ़ा-लिखा ही हो और उसे कई भाषाओं का ज्ञान हो, यह कोई जरूरी नहीं है। किसी बड़े विद्वान् ब्राह्मण या किसी क्षत्रिय को प्रेसीडेन्ट बना कर हम दुनिया को अपना घमंड दिखाना नहीं चाहते।

एक हरिजन लड़की को उस पद पर बिठा कर हम अपना आत्मिक बल दिखाना चाहते हैं। हमें संसार को यह बताना है कि यहाँ न कोई उच्च है, न नीच है। परन्तु वह लड़की दिल की और शरीर की साफ होनी

चाहिए। उसमें किसी प्रकार का मैल न हो।......आखिर, कोई हिन्दुस्तान की बागडोर तो उसे संभालनी है नहीं। उसका एक सचिव-मंडल रहेगा और वह जैसी सलाह देता जायेगा, उसी के अनुसार वह काम करेगी। उसे केवल अपने दस्तखत ही करने होंगे।......यदि मेरी कल्पना की लड़की प्रसीडेन्ट बनी तो मैं भी खादिम (सेवक) बन कर उसका काम करूँगा और सरकार से अपने खाने तक के लिए भी पैसा नहीं माँगूगा। जवाहरलाल जी, सरदार पटेल और राजेन्द्र बाबू आदि को भी मैं उसके सचिव-मंडल में भेज कर उसके नौकर बना दूँगा।

['प्रार्थना प्रवचन', २७ जून, १९४७]

लोक राज्य और सरकारी खर्च

आज अगर करोड़ों रुपये हमारे हाथ में आ गये हैं तो करोड़ों ही हम खर्च कर डालें, ऐसा नहीं है। करोड़ में से एक-एक कौड़ी लेकर ही हम आहिस्ता-आहिस्ता और फूँक-फूँक कर चलें। एक कौड़ी हम खर्च तो करें; लेकिन वह हिन्दुस्तान की झोपड़ियों में जाती है कि नहीं, मेरे लिए तो यही हिसाब काफी रहता है। जो करोड़ों रुपये हिन्दुस्तान की झोपड़ियों में से खिंच-कर आते हैं, उनमें से कितना हम उनको वापिस भेज सकते हैं? जो सच्चा पंचायती राज्य या लोकराज्य होता है, उसे लोगों के पास से पैसा तो लेना पड़ता है लेकिन उसका दाम दस गुना उनके घरों में चला जाना चाहिए। जैसा कि मैं तालीम के लिए लोगों से पैसा लेता हूँ तो मैं ऐसी तालीम उनके लड़कों को दूँ और इस तरह से खर्च का अन्दाजा करूँ कि जिससे दस गुना पैसा उनको वापिस मिल जाये। मान लीजिये, मैं देहातों में सफाई का काम करूँ, लोगों के लिए सड़कें और रास्ते बनवाता हूँ तो देहात के लोग यही सोचेंगे कि जो पैसा हम देते हैं, वह हमारे-ऊपर ही खर्च होता है। नतीजा यह होगा कि आज मिलिटरी के पीछे हम जो इतने दीवाने बन गये हैं, तब उतने नहीं रहेंगे। हमारे दिल में पीछे यही विचार पैदा होगा कि मिलिटरी पर तो कम-से-कम खर्च करें और आप लोगों पर ज्यादा-से-ज्यादा।

[प्रार्थना प्रवचन, २९ नवम्बर, १९४७]

कर

सभी स्वस्थ टैक्सों को टेक्स देने वाले के पास, आवश्यक सेवाओं के रूप में दस गुना होकर लौटना चाहिए। [ह०, ३१-७-३७]

श्रम के रूप में टैक्स देना राष्ट्र को शक्ति देता है। जहाँ मनुष्य स्वेच्छा से समाज-सेवा के लिए श्रम करते हैं, जहाँ धन-विनिमय अनावश्यक हो जाता है। टैक्स एकत्रित करने और हिसाब रखने का श्रम बच जाता है, और परिणाम बराबर ही अच्छे होते हैं। [ह०, २५-३-३६]

अपराध

सब प्रकार के अपराध एक रोग हैं और उनके साथ रोग का सा बर्ताव होना चाहिए। [ह०, २७-४-४०]

(अपराध रोग) वर्तमान सामाजिक संगठन का, परिस्थिति का परिणाम है। [ह०, ५-५-४६]

न्याय

(वकील और जज) चचेरे भाई हैं। वकीलों का धंधा ऐसा है, जो उन्हें अनीति सिखलाता है......वकील तो आम तौर पर झगड़ों को दबाने के बजाय और बढ़ाने की सलाह देंगे। वकीलों का स्वार्थ झगड़े बढ़ाने में ही है।

जिन्हें अपनी सत्ता कायम रखनी हो वे अदालतों की मारफत ही तो लोगों को अपने वश में करते हैं। अगर लोग आपस में ही निपटलें तो तीसरा आदमी उन पर अपनी सत्ता कायम नहीं रख सकता।

यह कौन कह सकता है कि तीसरे आदमी का फैसला हमेशा ठीक ही होता है। सच्ची बात क्या है; यह तो दोनों पक्ष वाले ही जानते हैं। यह तो हमारा भोलापन और अज्ञान है जो हम यह मान लेते हैं कि हमारे पैसे लेकर वह तीसरा आदमी हमारा इन्साफ करता है। [हिन्द स्वराज्य]

पुलिस

मेरी धारणा की पुलिस आज की पुलिस से नितान्त भिन्न प्रकार की होगी। उसके सदस्य अहिन्सा में विश्वास करने वाले होंगे। वह जनता के स्वामी नहीं, सेवक होंगे। जनता की स्वाभाविक प्रवृत्ति उनको प्रत्येक प्रकार

की सहायता देने की होगी और पारस्परिक सहयोग द्वारा वह सुगमता से दंगों की—जिनकी संख्या लगातार घटती रहेगी—व्यवस्था कर सकेंगे। पुलिस के पास हथियार होंगे, किन्तु उनका प्रयोग यदि कभी हुआ भी तो बहुत कम होगा। वास्तव में पुलिस के सिपाही सुधारक होंगे और उनका पुलिस सम्बन्धी कार्य लुटेरों और डाकुओं तक सीमित होगा।

[ह०, १-९-४०]

सेना

सच्चे जनतंत्र को किसी भी प्रयोजन के लिए सेना पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। सैनिक सहायता पर निर्भर रहने वाला राज्य नाममात्र का जनतंत्र हो जायगा। सैनिक शक्ति मस्तिष्क के स्वतन्त्र विकास में बाधा डालती है वह मनुष्य की आत्मा का विनाश करती है।

[ह०, ६-६-४६]

मुझे विश्वास है कि अगर हिन्दुस्तान ने अपनी अहिंसक शक्ति नहीं बढ़ायी तो न तो उसने अपने लिए कुछ पाया और न दुनिया के लिए। हिन्दुस्तान का फौजीकरण होगा तो वह बरबाद होगा और दुनिया भी बरबाद होगी। [प्रार्थना प्रवचन, ४-१२-४७]

× × ×

विशेष वक्तव्य—महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शक उपदेश-रत्नों का अंत नहीं। परन्तु हमें कुछ ही बातों से संतोष करना है। यद्यपि महात्मा जी अपने जीवन-काल में बार-बार यह चेतावनी देते रहे थे कि मेरे वाक्यों को 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' न समझा जाय, सर्वोदय व्यवस्था के लिए उनसे यथेष्ठ लाभ उठाया जा सकता है, और उठाया जाना चाहिए।